मलधारि आचार्यश्रीहेमचन्द्रसूरिविरचितम्

भवभावनाप्रकरणम्

अज्ञातकृत-अवचूरिसहितम्

मलधारि आचार्यश्रीहेमचन्द्रसूरिकृतम्

भवभावनाप्रकरणम्

अज्ञातकृत-अवचूरिसहितम्

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र

ग्रंथनाम : भवभावनाप्रकरणम् (अवचूरि सहित)

विषय : उपदेश

कर्ता : मलधारि आचार्यश्रीहेमचन्द्रसूरि

अवचूरिकर्ता : अज्ञात

प्रधानसम्पादक : मुनि वैराग्यरतिविजयगणि

प्रकाशक : श्रुतभवन संशोधन केन्द्र, पुणे (शुभाभिलाषा ट्रस्ट, अहमदाबाद)

आवृत्ति : प्रथमा, वि.सं.२०७० (ई.२०१४)

पत्र : १२ + २३५

~: प्राप्तिस्थान :~

पूना : **श्रुतभवन संशोधन केन्द्र**
४७-४८, अचल फार्म, आगममंदिर से आगे,
सच्चाइ माता मंदिर के पास, कात्रज, पुणे-४११०४६
Mo. 7744005728 (9-00am to 5-00pm)
www.shrutbhavan.org
Email : shrutbhavan@gmail.com

अहमदाबाद : **श्रुतभवन (अहमदाबाद शाखा)**
C/o. उमंग शाह
बी-४२४, तीर्थराज कॉम्पलेक्स,
वी. एस. हॉस्पिटल के सामने मादलपुर, अहमदाबाद.
मो. ०९८२५१२८४८६

प्रकाशकीय

अवचूरि सहित भवभावनाप्रकरण श्री संघ के करकमल में समर्पित करते हुए हमें आनन्द की अनुभूति हो रही है। श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के सन्निष्ठ समर्पित सहकारिगण की कडी महेनत और लगन से यह दुर्गम कार्य सम्पन्न हुआ है। इस अवसर पर श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के संशोधन प्रकल्प हेतु गुप्तदान करने वाले दाता एवं श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के साथ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुडे हुए सभी महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। इस ग्रन्थ के प्रकाशन का अलभ्यलाभ **श्री रंजनविजयजी जैन पुस्तकालय, मालवाडा, राज.** ने प्राप्त किया है। आपकी अनुमोदनीय श्रुतभक्ति के लिये हम आपके आभारी है। श्रुतभवन संचालन समिति (शुभाभिलाषा ट्रस्ट) ने प्राचीन शास्त्रों के शुद्ध संपादन को प्रकाशित करने का उत्तरदायित्व हमें देकर हमारा गौरव बढाया अतः हम उनके हमेशा ऋणी रहेंगे। श्रुतभवन संशोधन केन्द्र, पुणे की समस्त गतिविधियों के मुख्य आधारस्तंभ मांगरोळ (गुजरात) निवासी **श्री चंद्रकलाबेन सुंदरलाल शेठ परिवार** एवं **भाईश्री (ईन्टरनेशनल जैन फाऊन्डेशन, मुंबई)** परिवार के हम सदैव ऋणी है।

- भरत शाह
मानद अध्यक्ष

श्री जित-हीर बुद्धि-तिलक शांतिचन्द्रसूरिजी समुदायवर्ती,

सम्यग्ज्ञानपिपासु स्व.परम पूज्य

आचार्यदेव श्रीमद् विजयरत्नशेखरसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न

मरुधररत्न परम पूज्य

आचार्यदेव श्रीमद् विजयरत्नाकरसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न

उपाध्याय श्री रत्नत्रयविजयजी गणिवर की पावन प्रेरणा से

श्री रंजनविजयजी जैन पुस्तकालय, मालवाडा,

जिला-जालोर-३४३०३९ (राजस्थान)

आपकी श्रुतभक्ति की हार्दिक अनुमोदना

कृतज्ञता

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के उपक्रम में शास्त्र संशोधन का विराट प्रकल्प प्रवर्तमान है। इस प्रकल्प में दो कार्य होते हैं।

१) अद्यावधि अमुद्रित शास्त्र का सम्पादन एवं प्रकाशन।

२) मुद्रित शास्त्र का समीक्षित पुनःसम्पादन।

इस कार्य में हमें गच्छाधिपति पदारूढ आदि आचार्यभगवंतों की प्रेरणा और आशीर्वाद प्राप्त हुए हैं।

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय पुण्यपालसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयधर्मधुरन्धरसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयनित्यानन्दसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयजयघोषसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् दोलतसागरसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय राजयशसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् कलाप्रभसागरसूरीश्वरजी म.सा., (अंचलगच्छ)

परम पूज्य उपाध्यायश्री मणिप्रभसागरजी म.सा (खरतरगच्छ)

हमारे कार्य को शुद्ध और सटीक करने के लिये हमारा निरंतर मार्गदर्शन करते हैं-

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय मुनिचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय शीलचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.,

परम पूज्य उपाध्यायश्रीभुवनचन्द्रजी म.सा.,(पार्श्वचन्द्र गच्छ)

परम पूज्य पंन्यास प्रवरश्री अजयसागरजी म.सा.,

परम पूज्य पंन्यास प्रवरश्री पुण्डरीकरत्नविजयजी म.सा.

हम उन संस्था एवं विद्वानों के भी आभारी है जो हमारा मार्गदर्शन और सहाय्य करते हैं-

पू.आ.श्री कैलाससागरसू. ज्ञानमंदिर, श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा।

श्री लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अमदावाद।

भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन संस्था, पुणे

पद्मश्री कुमारपाळ देसाई, श्री जितेन्द्र बी.शाह, श्री बाबुभाई सरेमलजी

संपादकीय

मलधारगच्छीय आचार्यदेव श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी रचित भवभावनाप्रकरण वैराग्यप्रधान उपदेशग्रन्थ है। अनित्यादि बारह भावना इसकी प्रतिपाद्य वस्तु है। इस ग्रन्थ में संसारभावना का विस्तार से वर्णन किया है अतः इसका नाम भवभावना है[१]। ग्रन्थान्तर में बारह भावनाओं में अंतिम भावना धर्मसाधक अर्हंतों के गुण की भावना है[२]। परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में उसके स्थान पर जिनशासन के गुण की भावना है[२]। मूलकर्ता आचार्यदेवने ही स्वोपज्ञ वृत्ति की भी रचना की है। वृत्ति में विषय संबंधित दृष्टान्त पद्यमय प्राकृत भाषा में है, केवल भवभावना के विषय में बलिराजा का दृष्टान्त संस्कृत भाषा में है। इस दृष्टान्त की शैली उपमितभवप्रपञ्चकथा की याद कराती है। आचार्यदेव श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म.का इतिवृत्त प्रसिद्ध है। आप शरीर के प्रति अतीव निःस्पृह थे, हमेशा मलिन वस्त्र धारण करते थे अतः आपको सिद्धराज जयसिंह ने मलधारी विशेषण से विभूषित किया था। इसी कारण आगे आपका गच्छ मलधारगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अद्यावधि इस ग्रन्थ पर स्वोपज्ञ वृत्ति से अतिरिक्त कोई व्याख्या आदि ज्ञात नहीं थे। पूना स्थित भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन संस्था में प्रस्तुत ग्रन्थ की अवचूरि की पाण्डुलिपि (हस्तप्रत) के विषय में जानकारी प्राप्त हुई। इस प्रत की विशेषता को पहचानकर श्रुतस्थविर परम पूज्य प्रवर्तक श्री जम्बूविजयजी म.सा. ने इसकी सूक्ष्मचित्रपट्टिकाकृति (माइक्रोफिल्म कोपी) करवाई थी। [वस्तुतः संशोधन हेतु हमने इस सूक्ष्मचित्रपट्टिकाकृति (माइक्रोफिल्म कोपी) का ही उपयोग किया है।] भाण्डारकर प्राच्य-विद्या संशोधन संस्था के अलावा अन्यत्र कहीं अवचूरि की पाण्डुलिपि (हस्तप्रत) के विषय में जानकारी प्राप्त नहीं हुई। प्रायः अवचूरि की यह एकमात्र पाण्डुलिपि है। संस्था

---

१ **धम्मस्स साहगा अरिहा** (नवतत्त्व)

२ **उत्तमे य गुणे जिणसासणम्मि।**(भ.भा.१०)

की उदारता से एक प्राचीन कृति प्रकाश में आ रही है अतः उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। संस्था में पाण्डुलिपि का क्रमांक-१८८७-९१/१२२६-११९ है। इस पाण्डुलिपि के २१ पत्र है। पत्र की लंबाई एवं चौडाई है। प्रत्येक पत्र पर १९ पंक्तियाँ है एवं प्रत्येक पंक्ति में ६०वर्ण हैं। यह पाण्डुलिपि वि.सं. १५२५ वर्ष में वैशाख शुदि १५ मंगलवार के दिन सम्भवतः बडोदा शहर में लिखी गई है।[१] इस पाण्डुलिपि के अक्षरमरोड विशिष्ट है। पाण्डुलिपि १६वी शताब्दी में कागज पर लिखी गई है फिर भी इसकी लेखनशैली पर ताडपत्रीय लेखनशैली का गहरा असर दिखता है। विशेषतः संयुक्ताक्षर के मरोड अध्ययन करने योग्य है। यहां दिखाई देनेवाले अक्षरमरोड अन्यत्र, खास कर कागज की पाण्डुलिपि में, उपलब्ध नहीं होते। लिपिशास्त्र के प्रारम्भिक अभ्यास हेतु यह पाण्डुलिपि उपयोगी बन सकती है। भाषा की दृष्टि से यह पाण्डुलिपि शुद्ध है। इसके लेखक (स्क्राइब) संस्कृत भाषा के और विषय के अच्छे जानकार लगते है।

रचनाशैली

अवचूरि के रचनाकार अज्ञात है। रचनाशैली द्वारा अवचूरि की रचना का मुख्य आशय भवभावना के विषय को संक्षेप में एवं सरलता से प्रस्तुत करना प्रतीत होता है। स्वोपज्ञ वृत्ति में सभी दृष्टान्त पद्यमय प्राकृत भाषा में विस्तार से प्रस्तुत किये है। अवचूरि में उन्हीं दृष्टान्तों को सरल और गद्य संस्कृत में प्रस्तुत किया है। अतः प्राकृत से अनभिज्ञ भी अवचूरि की सहायता लेकर भवभावना का अवगाहन कर सकते हैं। गाथा की व्याख्या करते समय अवचूरिकार ने मूलवृत्तिकार का ही अनुसरण किया है। अवचूरि का ग्रन्थमान १३५० श्लोक है।

संपादनपद्धति

अवचूरि की एक ही पाण्डुलिपि है और अवचूरि मूलवृत्ति का ही अनुसरण करती है, अतः संदिग्ध पाठों का निर्णय मूलवृत्ति के आधार पर किया है। क्वचित् पतित पाठ की पूर्ति मूलवृत्ति के आधार पर की है। सम्पादन हेतु सहायक सामग्री के रूप में

---

१ देखिये लेखक प्रशस्ति-संवत् १५२५ वर्षे वैशाख शुदि १५ भूमे॥ अद्येह बाडोद्राग्रामे लिखि। प्रशस्ति में बाडोद्रा को ग्राम कहा है, अतः वह अन्य भी हो सकता है।

तीन मुद्रित प्रताकार आवृत्तियों का उपयोग किया है।

१) इसे मु.अ. संज्ञा दी है।

२) इसे मु.ब. संज्ञा दी है।

३) इसे मु.क. संज्ञा दी है।

प्रथम दो के सम्पादक पूज्य आचार्यदेव श्री आनन्दसागरसू.म.सा. है। मु.ब.में मूल एवं संस्कृत छाया है। मु.अ.प्रत अनेक परिशिष्टों से समृद्ध है। तृतीय मुद्रित के संशोधक पू.आ.श्री विजय मुक्तिचंद्रसू.म.सा. और पू.आ.श्री विजय मुनिचंद्रसू.म.सा. है। यह आवृत्ति पू. आगम प्रभाकर मुनि प्रवरश्री पुण्यविजयजी म.सा. के द्वारा संशोधित जेसलमेर की ताडपत्रीय प्रत के आधार पर तैयार की गई प्रेसकापी से तैयार की गई है। इन तीनों आवृत्तियों की उपयुक्त सामग्री का यहां उपयोग किया है। इस के लिये पूज्य आचार्यदेवों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। मूल गाथाओं के संपादन के लिये हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान भंडार, पाटण की ताडपत्रीय प्रत (क्र.पातासंपा ६७-२) का उपयोग किया है।

प्रस्तुत सम्पादन भवभावना के भावार्थ को समझने में सहायक होगा ऐसे विश्वास के साथ विद्वत्पुरुषों को प्रार्थना करते हैं कि सम्पादन में रह गई त्रुटियों को सुधारकर हमें सूचित करने का अनुग्रह करें।

- सम्पादकगण

अनुक्रमः

विषयः	गाथाङ्कः	पत्राङ्कः
मङ्गलम्	१	१
द्वादशभावनानामानि	६-१०	३
अनित्यभावना १	११-२५	४
अशरणभावना २	२६-५४	७
एकत्वभावना ३	५५-७०	१६
अन्यत्वभावना ४	७१-८१	२०
भवभावना		
नरकभवः	८२-१७८	२३
तिर्यग्भवः	१७९-२४९	५०
मनुजभवः	२५०-३२५	७१
सुरभवः	३२६-४०३	९१
अशुचित्वभावना ६	४०४-४२५	११२
लोकस्वभावभावना ७	४२६-४३०	११८
आश्रवभावना ८	४३१-४४२	१२०
संवरभावना ९	४४३-४५०	१३०
निर्जराभावना १०	४५१-४५६	१३२
गुणरत्नभावना ११	४५७-४६३	१३४
बोधिभावना १२	४६४-५००	१३६

भावनाफलम्	५०१-५२४	१४६
कर्तृनामनिर्देशः	५२५	१५१
ग्रन्थमहिमा	५२६	१५१
भावनोपदेशः	५२७-५३०	१५१
ग्रन्थस्थैर्यम्	५३१	१५२
प्रथमं परिशिष्टम्–मूलगाथाक्रमः		१५३
द्वितीयं परिशिष्टम्–मूलगाथार्धाकारादिक्रमः		१९१
तृतीयं परिशिष्टम्–उद्धरणस्थलसङ्केतः		२२८
चतुर्थं परिशिष्टम्–कथानिर्देशः		२२९
पञ्चमं परिशिष्टम्–विशेषनामकोशः		२३०
षष्ठं परिशिष्टम्–देशीशब्दसूचिः		२३४

मलधारि हेमचन्द्रसूरिकृता

॥भवभावना॥

॥अज्ञातकृत-अवचूरिसहिता॥

[मङ्गलाचरणम्]

[मू] णमिऊण णमिरसुरवरमणिमउडफुरंतकिरणकब्बुरिअं।
बहुपुन्नंकुरनियरंकियं व सिरिवीरपयकमलं॥१॥

[नत्वा नम्रसुरवरमणिमुकुटस्फुटत्किरणकर्बुरितम्।
बहुपुण्याङ्कुरनिकराङ्कितमिव श्रीवीरपदकमलम्॥१॥]

[मू] सिद्धंतसिंधुसंगयसुजुत्तिसुत्तीण संगहेऊणं।
मुत्ताहलमालं पिव, रएमि भवभावणं विमलं॥२॥

[सिद्धान्तसिन्धुसङ्गतसुयुक्तिशुक्तिभ्यः सङ्गृह्य।
मुक्ताफलमालामिव रचयामि भवभावनां विमलाम्॥२॥]

[अव] द्वाभ्यां गाथाभ्यां सम्बन्धः। विभूषितं मण्डितमिति यावत्। बहु यत्पुण्यं तस्यातिबहुत्वादेव मध्यं पूरयित्वा शेषस्य तत्रावकाशमलभमानस्येव स्फुटित्वा = बहिर्निर्गत्य येऽङ्कुरास्तेषां निकरः = सङ्घातः तेन वाङ्कितम् = मण्डितमित्येव[१] शब्दस्य योजना द्रष्टव्या॥१॥

सिद्धान्त एव सिन्धुः = समुद्रः, तत्सङ्गताः = तदाश्रिताः, याः सुयुक्तयः = शोभनाः प्रमाणाबाधितत्वेन विशिष्टा जीवादितत्त्वप्रतिष्ठाप्र[२]हेतूक्तिरूपा युक्तयो यासु ताः सुयुक्तयः प्रज्ञप्तिप्रज्ञापना-जीवाभिगमादिकाः शास्त्रपद्धतयस्ता एव मुक्ताफलाधारभूतशुक्तयस्ताभ्यः। इदमुक्तं भवति–यथा कश्चित् समुद्रसङ्गतशुक्तिमुक्ताफलानि सङ्गृह्य विमलां तन्मालां रचयति एवं महत्[३] सिद्धान्ताश्रितविचित्रशास्त्रपद्धतिभ्यः अर्थान् सङ्गृह्य विमलां शास्त्रभवभावनां शास्त्रपद्धतिं रचयामि। एतेनेदमाख्यातं भवति–नेह शास्त्रे स्वमनीषिकयाक्षरमपि भणिष्यते किन्त्वागमानुसारेणैव वक्ष्यते सर्वमिति॥२॥

---

१. **'इत्येवं इव'** इति वृत्तौ।, २. **'ष्ठाप्तिहे'** इति वृत्तौ।, ३. **'वमहमपि सि'** इति वृत्तौ।

[मू] संवेअमुवगयाणं, भावंताणं भवण्णवसरूवं।
कमपत्तकेवलाणं, जायइ तं चेव पच्चक्खं॥३॥

[संवेगमुपगतानां भावयतां भवार्णवस्वरूपम्।
क्रमप्राप्तकेवलानां जायते तदेव प्रत्यक्षम्॥३॥]

[अव] इदमुक्तं भवति–तीव्रसंवेगापन्नानां दुरन्तानन्तदुःखात्मकं भवस्वरूपं भावयतां प्रतिक्षणं तत्र निर्वेदः समुत्पद्यते, संवेगः प्रकर्षमुपगच्छति। ततश्चेत्थं भाव्यमाने भवस्वरूपे प्रतिसमयं प्रकर्षमश्नुवाने शुभध्यानाग्नौ दह्यमाने अतिगहनघातिकर्ममहावने क्रमशः समालोकितलोकालोकस्वरूपं केवलज्ञानमाविर्भवति। ततः पूर्वप्रभवभावनायां यत्सिद्धान्तपरतन्त्रतयैव दृष्टम्, न साक्षात्, एवं भवस्वरूपं समुत्पन्नकेवलानां साक्षात् प्रत्यक्षं भवति, तदनन्तरं च मोक्ष इत्येवं केवलज्ञान[१]फलत्वात्सर्वदैव भवभावनायां यत्नो विधेय इति भावः॥३॥

[मू] संसारभावणाचालणीइ सोहिज्जमाणभवमग्गे।
पावंति भव्वजीवा, नट्ठं व विवेयवररयणं॥४॥

[संसारभावनाचालन्या शोध्यमानभवमार्गे।
प्राप्नुवन्ति भव्यजीवाः नष्टमिव विवेकवररत्नम्॥४॥]

[मू] संसारसरूवं चिय, परिभावंतेहिं मुक्कसंगेहिं।
सिरिनेमिजिणाईहिं, वि तह विहिअं धीरपुरिसेहिं॥५॥

[संसारस्वरूपं चैव परिभावयद्भिर्मुक्तसङ्गैः।
श्रीनेमिजिनादिभिरपि तथा विहितं धीरपुरुषैः॥५॥]

[अव] भवस्वरूपमेव च परिभावयद्भिः श्रीमन्नेमिजिनादिभिरपि मुनीश्वरैः धीरपुरुषैस्तथा = तेन शास्त्रलोकप्रसिद्धेन प्रकारेण विहितं तं प्रव्रज्यामहाभारोद्वहनादिकं सदनुष्ठानमिति गम्यते। इदमुक्तं भवति–अनित्यरूपतया निःसारोऽयं संसारो दुःखहेतवश्चेह योषिदादिभावा इत्यादिरूपेण भवस्वरूपं परिभावयद्भिः श्रीनेमिजिनादिरपि तत्सदनुष्ठानं विहितम्। श्रीनेमिचरित्रमत्र ज्ञेयम्।

---

१. 'च भवोपग्राहिकर्मक्षय इत्येवं मोक्षावाप्तिफलत्वात् स' इति वृत्तौ।

२. छाया-धनधनवत्यौ[अ] सौधर्मे [आ] चित्रगतिः खेचरः च रत्नवती३। माहेन्द्रे अपराजित [इ] प्रीतिमती[ई] आरणे[उ] ततः॥१॥ शङ्खः यशोमती भार्या[ऊ] ततः अपराजिते विमाने [ऋ]। नेमिराजमत्यौ अपि च नवमभवे द्वावपि वन्दे॥२॥

धणधणवइ[१] सोहम्मे[२] चित्तगई खेअरो अ रयणवई[३]।
माहिंदे अपराजिअ[४] पीइमई[५] आरणे[६] तत्तो॥१॥
संखो जसमइ भज्जा[७] तत्तो अवराईए विमाणम्मि[८]।
नेमिरायमई वि अ नवमभवे दोवि वंदामि॥२॥

(हेम.मल.वृत्ति)

इत्यादि प्रसिद्धत्वान्न लिखितम्।

[द्वादशभावनानामानि]

[मू] भवभावणनिस्सेणिं, मोत्तुं च न सिद्धिमंदिरारुहणं।
भवदुहनिव्विण्णाण, वि जायइ जंतूण कइया वि॥६॥

[भवभावनानिःश्रेणिं मुक्त्वा च न सिद्धिमन्दिरारोहणम्।
भवदुःखनिर्विण्णानामपि जायते जन्तूनां कदाचिदपि॥६॥]

[मू] तम्हा घरपरियणसयणसंगयं सयलदुक्खसंजणयं।
मोत्तुं अट्टज्झाणं, भावेज्ज सया भवसरूवं॥७॥

[तस्माद् गृहपरिजनस्वजनसङ्गजं सकलदुःखसञ्जनकम्।
मुक्त्वार्तध्यानं भावयेत् सदा भवस्वरूपम्॥७॥]

[मू] भवभावणा य एसा, पढिज्जए बारसण्ह मज्झम्मि।
ताओ य भावणाओ, बारस एयाओ अणुकमसो॥॥८॥

[भवभावना च एषा पठ्यते द्वादशानां मध्ये।
ताश्च भावना द्वादश एता अनुक्रमशः॥८॥]

[मू] पढमं अणिच्चभावं[१], असरणयं[२] एगयं च[३] अन्नत्तं[४]।
संसार[५]मसुहयं[६] चिय, विविहं लोगस्सहावं च[७]॥९॥

[प्रथममनित्यभावमशरणकमेकतां चान्यत्वम्।
संसारमशुभकमेव विविधं लोकस्वभावं च॥९॥]

[मू] कम्मस्स आसवं[८] संवरं[९] च निज्जरण[१०]मुत्तमे य गुणे।
जिणसासणम्मि[११] बोहिं, च दुल्लहं चिंतए मइमं[१२]॥१०॥

[कर्मणः आश्रवं संवरं च निर्जरणमुत्तमाँश्च गुणान्।
जिनशासने बोधिं च दुर्लभां चिन्तयेत् मतिमान्॥१०॥]

[अव] एतासु द्वादशभावनासु मध्ये पञ्चमस्थाने संसारभावना सम्पठ्यते। सा चेह विस्तरतोऽभिधास्यते। तत्प्रसङ्गतः सङ्क्षेपेणैव शेषा अपि इति गाथात्रयार्थः॥८॥९॥१०॥

[प्रथमा अनित्यत्वभावना]

अनित्यत्वभावनां तावदाह-

[मू] सव्वप्पणा अणिच्चो, नरलोओ ताव चिट्ठउ असारो।
जीयं देहो लच्छी, सुरलोयम्मि वि अणिच्चाइं॥११॥

[सर्वात्मनानित्यो नरलोकस्तावत् तिष्ठत्वसारः।
जीवितं देहो लक्ष्मीः सुरलोकेऽप्यनित्यानि॥११॥]

[अव] नरलोकस्तावत् सर्वात्मना नगनगरग्रामभवनादिभिः सर्वप्रकारैरनित्य इति प्रत्यक्षसिद्धत्वात् तिष्ठतु। ये तु सुरलोका लोके शाश्वततया प्रसिद्धास्तत्रापि भवनादिभावानां कथञ्चिच्छाश्वतत्वेऽपि जीवितान्यनित्यान्येव। जीवितदेहयोः सुचिरमपि स्थित्वा कदाचित् सर्वनाशेन विनाशात्, लक्ष्म्या अपि महर्द्धिकैरपरैः तदपह्नियमाणत्वादिति॥११

[मू] नइपुलिणवालुयाए, जह विरइयअलियकरितुरंगेहिं।
घररज्जकप्पणाहि य, बाला कीलंति तुट्ठमणा॥१२॥

[नदीपुलिनवालुकादौ यथा विरचितालीककरितुरङ्गैः।
गृहराज्यकल्पनाभिश्च बालाः क्रीडन्ति तुष्टमनसः॥१२॥]

[मू] तो सयमवि अन्नेण व, भग्गे एयम्मि अहव एमेव।
अन्नोऽन्नदिसिं सव्वे, वयंति तह चेव संसारे॥१३॥

[ततः स्वयमपि अन्येन वा भग्ने एतस्मिन्नथवा एवमेव।
अन्यान्यदिशं सर्वे व्रजन्ति तथैव संसारे॥१३॥]

[मू] घररज्जविहवसयणाइएसु रमिऊण पंच दियहाइं।
वच्चंति कहिं पि वि नियकम्मपलयानिलुक्खित्ता॥१४॥

[गृहराज्यविभवस्वजनादिकेषु रत्वा पञ्च दिवसान्।
व्रजन्ति कुत्रापि निजककर्मप्रलयानिलोत्क्षिप्ताः॥१४॥]

[अव] यथा नदीपुलिनवालुकादौ तथाविधतत्कार्यासाधकत्वेनालीकविरचितकरितुरङ्गमादिभिर्गृह- राज्यादिभिस्तुष्टमनसः क्रीडन्ति। ततः स्वयमेव यदृच्छयान्येन केनचिदेतस्मिन् करितुरङ्गादिके भग्नेऽभग्नेऽप्येवमेव स्वेच्छयान्यान्यदिक्षु ते सर्वेऽपि व्रजन्ति। एवं संसारेऽपि सुरनरचक्रवर्त्यादयः प्राणिनो गृहराज्यविभवभार्या-

स्वजनादिषु स्वां(रन्त्वा =) रतिं बद्ध्वा पञ्च दिनानि ततो निजकर्मैव प्रलय-कालानिलास्तेनोत्क्षिप्ताः शुष्कपत्रतृणादिवत् क्वापि नरकादौ व्रजन्त्यदृश्या भवन्ति, यथा तेषां नामापि न ज्ञायते पश्चात्। पल्योपमसागरोपमापेक्षया मनुष्यभवस्याः (अवस्थाया) अपि तुच्छत्वख्यापनार्थं पञ्चदिनग्रहणम्॥१४॥

[मू] अहवा जह सुमिणयपावियम्मि रज्जाइइट्ठवत्थुम्मि।
खणमेगं हरिसिज्जंति, पाणिणो पुण विसीयंती॥१५॥

[अथवा यथा स्वप्नप्राप्ते राज्यादीष्टवस्तुनि।
क्षणमेकं हृष्यन्ति प्राणिनः पुनर्विषीदन्ति॥१५॥]

[अव] 'मदीयमन्दिरे तेजस्स्फुरद्रत्नराशयः, द्वारे तु महास्तम्भार्गलिताः प्रवरकरिणः, मेदुराः = सुजात्यतुरगाः, विहितश्च मे राज्याभिषेको महाविस्तरेण' इत्यादिप्रकारेण यथा स्वप्नेऽभीष्टवस्तुप्राप्तौ क्षणमेकं हृष्यन्ति जन्तवः, निद्रापगमे तन्मध्यादग्रतः किमप्यदृष्ट्वा विषीदन्ति॥१५॥

[मू] कइवयदिणलद्धेहिं, तहेव रज्जाइएहिं तूसंति।
विगएहि तेहि वि पुणो, जीवा दीणत्तणमुवेंति॥१६॥

[कतिपयदिनलब्धैस्तथैव राज्यादिकैस्तुष्यन्ति।
विगतैः तैरपि पुनर्जीवा दीनत्वमुपयन्ति॥१६॥]

[अव] एवं साक्षात् कतिपयदिनलब्धराज्यादिष्वपि भावनीयम्॥१६॥

अथेन्द्रजालादिसादृश्येन सर्वसमुदायानामनित्यतामाह–रूप्य.-

[मू] रुप्पकणयाइ वत्थुं, जह दीसइ इंदयालविज्जाए।
खणदिट्ठनट्ठरूवं, तह जाणसु विहवमाईयं॥१७॥

[रूप्यकनकादि वस्तु यथा दृश्यते इन्द्रजालविद्यया।
क्षणदृष्टनष्टरूपं तथा जानीहि विभवादिकम्॥१७॥]

[मू] संझब्भरायसुरचावविब्भमे घडणविहडणसरूवे।
विहवाइवत्थुनिवहे, किं मुज्झसि जीव ! जाणंतो ?॥१८॥

[सन्ध्याभ्ररागसुरचापविभ्रमे घटनविघटनस्वरूपे।
विभवादिवस्तुनिवहे किं मुह्यसि जीव ! जानानः ?॥१८॥]

[मू] पासायसालसमलंकियाइं जइ नियसि कत्थइ थिराइं।
गंधव्वपुरवराइं, तो तुह रिद्धी वि होज्ज थिरा॥१९॥

[प्रासादशालसमलङ्कृतानि यदि पश्यसि कुत्रचित् स्थिराणि।
गन्धर्वपुरवराणि ततस्तवर्द्धिरपि भवेत् स्थिरा॥१९॥]

[मू] धणसयणबलुम्मत्तो, निरत्थयं अप्प ! गव्विओ भमसि।
जं पंचदिणाणुवरिं, न तुमं न धणं न ते सयणा॥२०॥

[धनस्वजनबलोन्मत्तो निरर्थकमात्मन् ! गर्वितो भ्रमसि।
यत् पञ्चदिनानामुपरि न त्वं न धनं न ते स्वजनाः॥२०॥]

[अव] एवं सर्ववस्तुव्यापकमनित्यत्वम्॥२०॥

[मू] कालेण अणंतेणं, अणंतबलचक्किवासुदेवा वि।
पुहईएँ अइक्कंता, कोऽसि तुमं ? को य तुह विहवो ?॥२१॥

[कालेनानन्तेनानन्तबलचक्रिवासुदेवा अपि।
पृथिव्यामतितिक्रान्ताः कोऽसि त्वम् ? कश्च तव विभवः ?॥२१॥]

[मू] भवणाइ उववणाइं, सयणासणजाणवाहणाईणि।
निच्चाइं न कस्सइ न, वि य कोइ परिरक्खिओ तेहि॥२२॥

[भवनान्युपवनानि शयनासनयानवाहनादीनि।
नित्यानि न कस्यचिद् नापि च कश्चित् परिरक्षितस्तैः॥२२॥]

[मू] मायापिईहिं सह[१] वड्ढिएहिं मित्तेहिं पुत्तदारेहिं।
एगयओ सहवासो, पीई पणओ वि य अणिच्चो॥२३॥

[मातापितृभ्यां सहवर्धितैर्मित्रैः पुत्रदारैः।
एकतः सहवासः प्रीतिः प्रणयोऽपि च अनित्यः॥२३॥]

[अव] मात्रादिभिरतिवल्लभैः सह प्रीतिरनित्येति दर्शयति–**माया.।**॥२३॥

[अव] उक्तशेषाणामप्यर्थानामनित्यतामाह–**बल.**

[मू] बलरूवरिद्धिजोव्वणपहुत्तणं सुभगया अरोयत्तं।
इट्ठेहि य संजोगो, असासयं जीवियव्वं च॥२४॥

[बलरूपर्द्धियौवनप्रभुत्वं सुभगतारोगत्वम्।
इष्टैश्च संयोगोऽशाश्वतं जीवितव्यं च॥२४॥]

---

१. **सय** इति पा. प्रतौ।

[मू] इय जं जं संसारे, रमणिज्जं जाणिऊण तमणिच्चं।
निच्चम्मि उज्जमेज्जसु, धम्मे च्चिय बलिनरिंदो व्व॥२५॥

[इति यद् यद्त् संसारे रमणीयं ज्ञात्वा तदनित्यम्।
नित्ये उद्यच्छेः धर्मे चैव बलिनरेन्द्र इव॥२५॥]

[अव] तदेवं सति यत्कृत्यं तदुपसंहारपूर्वकं दर्शयन्नाह-**इय.**। बलिनरेन्द्रवद्।

[बलिनरेन्द्रकथा]

यथा पश्चिमविदेहे गन्धिलावतीविजये चन्द्रपुर्यां श्रीअकलङ्कदेवो राजा, भार्या सुदर्शना, सुतो बलिनामा। स च विंशतिपूर्वलक्षाणि कुमारत्वेऽतिक्रम्य चत्वारिंशत्पूर्वलक्षाणि राजभोगान् भुञ्जानोऽनेकप्रौढपुण्यकृत्यैर्जिनमतं प्रभावयन् सुश्रावकः क्रियापरः। अन्यदा चतुर्दश्यामुपोषितो रात्रिपौषधा(धः)पश्चाद्रात्रौ शुभभावनापरः सर्ववस्तूनामनित्यतां पश्यन् संवेगमाप्तः श्रीकुवलयचन्द्रकेवलिपार्श्वे प्रव्रज्य समुत्पन्नकेवल आदेयवाक्यतयानेकभव्यप्रतिबोधेन लोकैर्विहितभुवन-भानुनामा तत्रैव विजये विजयपुरेशचन्द्रमौलिकमहानृपाग्रेऽत(न्त)रङ्गोपदेशेन स्वानुरूपं स्वदुःखमुपदिश्य-(स्वरूपमुपदिश्य) तं प्रव्राज्य देशोनचत्वारिंशत् पूर्वलक्षाणि प्रव्रज्यामाराध्य सिद्धः॥ इति बलिनरेन्द्रकथा। इति प्रथमभावना॥२५॥

[द्वितीया अशरणभावना]

तद्व(द)स्तु सर्वस्याप्यनित्यता, धर्मं विनान्यच्छरणं भविष्यति किं जिनधर्मानुष्ठानेन? इत्याशङ्क्य द्वितीयामशरणभावनामाह-

[मू] रोयजरामच्चुमुहागयाण बलि[१] चक्किकेसवाणं पि।
भुवणे वि नत्थि सरणं, एक्कं जिणसासणं मोत्तुं॥२६॥

[रोगजरामृत्युमुखागतानां बलिचक्रिकेशवानामपि।
भुवनेऽपि नास्ति शरमेकं जिनशासनं मुक्त्वा॥२६॥]

[अव] रोगश्च जरा च मृत्युश्च तन्मुखागतानां बलदेवकेशवचक्रिणामपि जिनशासनादन्यो(न्यद्) भुवने शरणं नास्ति। अतस्तदेव शरणम्॥२६॥

तत्र जराश्वासादिरोगग्रस्तानां कुटुम्बं शरणं न स्यात्, नापि तद्दुःखं विभज्य

१. **बल** इति पा. प्रतौ।

गृह्णातीति दर्शयति-

[मू] जरकाससास[१] सोसाइपरिगयं पेच्छिऊण घरसामिं।
जायाजणणिप्पमुहं, पासगयं झूरइ कुडुंबं॥२७॥

[ज्वरकासश्वासशोषादिपरिगतं प्रेक्ष्य गृहस्वामिनम्।
जायाजननीप्रमुखं पार्श्वगतं खिद्यते कुटुम्बम्॥२७॥]

[मू] न विरिंचइ[२] पुण दुक्खं, सरणं ताणं च न हवइ खणं पि।
वियणाओं तस्स देहे, नवरं वड्ढंति अहियाओ॥२८॥

[न विभजते पुनर्दुःखं शरणं त्राणं चन भवति क्षणमपि।
वेदनाः तस्य देहे नवरं वर्धन्ते अधिकाः॥२८॥]

[अव] न वि । जाया = भार्या। उपघातनिषेधमात्रक्षमं शरणम्, उपघात-हेतुविनाशादिकारणं तु त्राणम्। शेषं सुगमम्॥२७॥२८॥

[मू] बहुसयणाण अणाहाण वा वि निरुवायवाहिविहुराणं।
दुण्हं पि निव्विसेसा, असरणया विलवमाणाणं॥२९॥

[बहुस्वजनानामनाथानां वापि निरुपायव्याधिविधुराणाम्।
द्वयोरपि निर्विशेषा अशरणता विलपताम्॥२९॥]

[अव] बहु.। बहवः स्वजनास्तर्हि रोगग्रस्तस्य सुखं भविष्यतीत्याह- **बहु** .।बहुस्वजनानामनाथानां वा देवकुलादिपतितकार्पटिकादीनां निर्गतो निरुपक्रमतया स्फेटने उपायो येषां निरुपाया व्याधयस्तैर्विधुराणामपि पीडया विह्वलीकृतानामु-भयेषामतिविलपतामशरणता निर्विशेषैव॥२९॥

विभवस्तत्र शरणं भविष्यतीति प्राह-

[मू] विहवीण दरिद्दाण य, सकम्मसंजणियरोयतवियाणं।
कंदंताण सदुक्खं, को णु[३] विसेसो असरणत्ते ?॥३०॥

[विभविनां दरिद्राणाञ्च स्वकर्मसञ्जनितरोगतप्तानाम्।
क्रन्दतां स्वदुःखं को नु विशेषोऽशरणत्वे ?॥३०॥]

[अव] विह.। गतार्था ॥३०॥

अथोदाहरणद्वारेण रोगाशरणत्वं दर्शयति-

---

१. **सासकास** इति पा. प्रतौ।, २. **चिरंचइ** इति पा. प्रतौ।, ३. **ण** इति पा. प्रतौ।

[मू] तह रज्जं तह विहवो, तह चउरंगं बलं तहा सयणा।
कोसंबिपुरीराया, न रक्खिओ तह वि रोगाणं॥३१॥

[तथा राज्यं तथा विभवः तथा चतुरङ्गं बलं तथा स्वजनाः।
कौशाम्बीपुरीराजो न रक्षितः तथापि रोगेभ्यः॥३१॥]

[अव] तह। तथा शब्दोऽतिशयख्यापनपरो द्रष्टव्यः। शेषं सुगमम्।

[चन्द्रसेननृपकथा]

अत्र कथानकं यथा–कौशाम्ब्यां चन्द्रसेनो राजा, सुलोचनः सुतः। अन्यदा वसन्तक्रीडायां कृतलक्षस्वर्णव्ययः सुलोचनो राज्ञापमानितो देशान्तरं गतः। तत्सन्निधानात् क्वापि धातुवादिनां स्वर्णसिद्धिः। तैस्तस्य स्वर्णं दत्तम्। स कुरुदेशं गतः। हेमन्ते वनान्तः क्वचिन्नरं शीतार्तं निश्चेष्टं दृष्ट्वा कृपया सद्योज्वालि-ताग्नितापादिना सचैतन्यं चक्रे। स प्राह–"अहं राजपुरवासिपुरुषदत्तराज्ञः सूराख्यः सुतस्तुरगापहृतोऽत्रागतो निशि शीतपीडितस्त्वया सज्जीकृतः।" तेनापि स्वस्वरूप-मुक्तम्। द्वावपि प्रीतौ गजपुरं गतौ। सूरसंयोगात् सोऽपि दृढजिनधर्मो जातः। अन्यदा विरक्तः सूरः सुलोचनं पित्रोः पुत्रस्थाने समर्प्य प्राव्रजत्। नृपोऽपि तं स्वपदे न्यस्य प्रव्रज्य स्वर्गतः। अन्यदा कौशाम्ब्यागतमन्त्री सुलोचनमाह-"देव! तव पिता चन्द्रसेनः कासादिरुग्(क्)पीडितस्त्वां मिमिलिषुरस्ति।" इति श्रुत्वा घनान्वैद्यमान्त्रिकादिंल्लात्वा कौशाम्ब्यां गत्वा चिकित्सामकारयत्। तथाप्यनु[प]-शान्तरोगोऽत्राणो विषेदे। सुलोचनः पितुर्बहुरोगार्तस्याशरणतां ज्ञात्वा द्वे राज्ये त्यक्त्वा निर्विण्णः प्रव्रज्य सिद्धः॥ इति कौशाम्बीपुरीराजकथानकम्॥३१॥

[मू] सविलासजोव्वणभरे, वट्टंतो मुणइ तणसमं भुवणं।
पेच्छइ न उच्छरंतं, जराबलं जोव्वणदुमग्गिं॥३२॥

[सविलासयौवनभरे वर्तमानो जानाति तृणसमं भुवनम्।
प्रेक्षते न उत्सर्पज्जराबलं यौवनद्रुमाग्निम्॥३२॥]

[अव] सवि.। जराया बलं परिकरभूतं वायुश्लेष्मेन्द्रियवैकल्यादिकमिदं च यौवनद्रुमस्याग्निरिव। यथाग्निर्दग्ध्वा भस्मावशेषं कुरुते द्रुमम्, एवं जराबलमपि पलितावशेषं यौवनं विदधातीति भावः॥३२॥

किमत्यसौ तन्न पश्यतीत्याह-

[मू] नवनवविलाससंपत्तिसुत्थियं जोव्वणं वहंतस्स।
चित्ते वि न वसइ इमं, थेवंतरमेव जरसेन्नं॥३३॥

[नवनवविलाससम्पत्तिसुस्थितं यौवनं वहतः।
चित्तेऽपि न वसति इदं स्तोकान्तरमेव जरासैन्यम्॥३३॥]

[अव] स्तोकमन्तरं पतने यस्य तत्तथा कतिपयदिनपातुकमित्यर्थः। उपलक्षणं चैतत् यतो ज्ञानादिभ्यो(हानिरपि) ॥३३॥

केषाञ्चिदेतच्चित्ते न वसति ततः किमित्याह-

[मू] अह अन्नदिणे पलियच्छलेण होऊण कण्णमूलम्मि।
धम्मं कुणसु त्ति कहंतियव्व निवडेइ जरधाडी॥३४॥

[अथान्यदिने पलितच्छलेन भूत्वा कर्णमूले।
धर्मं कुरु इति कथयन्ती इव निपतति जराधाटी॥३४॥]

गतार्था॥३४॥

निपतन्त्या ऋद्ध्यास्तर्हि रक्षकः कोऽपि भवतीत्याह-

[मू] निवडंती य न एसा, रक्खिज्जइ चक्किणो वि सेन्नेण।
जं पुण न हुंति सरणं, धणधन्नाईणि किं चोज्जं ?॥३५॥

[निपतन्ती च न एषा रक्ष्यते चक्रिणोऽपि सैन्येन।
यत् पुनर्न भवन्ति शरणं धनधान्यादीनि किमाश्चर्यम् ?॥३५॥]

ततः किमित्याह-

[मू] वलिपलियदुरवलोयं, गलंतनयणं घुलंतमुहलालं।
रमणीयणहसणिज्जं, एइ[१] असरणस्स वुड्ढत्तं॥३६॥

[वलिपलितदुरवलोकं गलन्नयनं क्षरन्मुखलालम्।
रमणीजनहसनीयम् एति अशरणस्य वृद्धत्वम्॥३६॥]

अन्यथा स्थितस्य वस्तुनोऽन्यथा करणे इन्द्रजालिनीव समर्था जरेति दर्शयति-

[मू] जरइंदयालिणीए, का वि हयासाइ असरिसा सत्ती।
कसिणा वि कुणइ केसा, मालइकुसुमेहिं अविसेसा[२] ॥३७॥

---

१. **एत्ति** इति पा. प्रतौ।, २. **अवसेसा** इति पा. प्रतौ।

[जरेन्द्रजालिन्याः कापि हताशाया असदृशा शक्तिः।
कृष्णानपि करोति केशान् मालतीकुसुमैरविशेषान्॥३७॥]

[अव] भ्रमरकुलाञ्जनकृष्णानपि केशाँस्तथा कथमपि जरेन्द्रजालिनी शुक्लान् करोति यथा ते मालतीकुसुमैर्निर्विशेषा भवन्ति। मस्तकनिबद्धमालती-कुसुमानां तेषां च शुक्लत्वेन विशेषो नावगम्यत इत्यर्थः॥३७॥

राक्षसी जरान्यामपि यां विडम्बनां करोति तां दर्शयति–**दल.**।

[मू] दलइ बलं गलइ[१] सुइं, पाडइ दसणे निरुंभए दिट्ठिं।
जररक्खसी बलीण वि, भंजइ पिट्ठिं[२] पि सुसिलिट्ठं॥३८॥

[दलयति बलं गलयति श्रुतिं पातयति दशनान् निरुणद्धि दृष्टिम्।
जरारक्षसी बलिनामपि भनक्ति पृष्ठिमपि सुश्लिष्टाम्॥३८॥]

[मू] सयणपराभवसुन्नत्तवाउसिंभाइयं जरासेन्नं।
गुरुयाणं पि हु बलमाणखंडणं कुणइ वुड्ढत्ते॥३९॥

[स्वजनपराभवशून्यत्ववायुश्लेष्मादिकं जरासैन्यम्।
गुगुरुकाणामपि खलु बलमानखण्डनं करोति वृद्धत्वे॥३९॥]

[अव] जरागृहीतस्य अवश्यमेव प्रायः पुत्रकलत्रादिपरिभवः शून्यत्वं वायुः श्लेष्मादयश्च भवन्तीति विवक्षयैते जरासैन्यत्वेनोक्ताः। ते च महात्मनामपि बलमभिमानं च खण्डयन्ति, सर्वकार्याक्षमाननादेयाँश्च कुर्वन्तीत्यर्थः॥३९॥

[मू] जरभीया य वराया, सेवंति रसायणाइकिरियाओ।
गोवंति पलियवलिगंडकूवे नियजम्ममाईणि॥४०॥

[जराभीताश्च वराकाः सेवन्ते रसायनादिक्रियाः।
गोपायन्ति पलितवलिगण्डकूपौ निजजन्मादीनि॥४०॥]

[अव] जराभीताश्चाविवेकिनो वराका गन्धकादिरसायनानि सेवन्ते। तैश्च सेवितैर्जरा नापगच्छति। अपगमे वा समयान्तरे वा पुनरपि भवतीत्ययमनुपायोऽनै-कान्तिकत्वादनात्यन्तिकत्वाच्च, तपःसंयमादिविधानं तु तदपगमे सम्यगुपायो, मोक्षावाप्तेरवश्यमेव जरोच्छेदेन हेतुत्वेनैकान्तिकत्वान्मोक्षे पलिताभावेन पुनर्ज-राया(याः) सम्भवाभावाच्चात्यन्तिकत्वाद्। अन्ये तु महामूढा लोहकीटादिखरण्टनेन पलितानि गोपायन्ति। वलीश्च वस्त्रादिना गोपायन्ति। गण्डौ = कपोलौ तयोर्बृहत्त्वेन

१. **गिलइ** इति प्रा. प्रतौ।, २. **पिट्ठं** इति पा. प्रतौ।

पतितौ कूपौ मौलिवस्त्रादिना वेष्टयन्ति। निजजन्म चिरकालीनमप्यासन्नकालं कथयित्वा गोपायन्ति। आदिशब्दादन्यापि एवं प्रकारा मोहचेष्टा द्रष्टव्या॥४०॥

किन्नु पुनस्ते एवं कुर्वन्ति, न पुनः सम्यगुपाये लगन्ति? इत्याह-

[मू] न मुणंति मूढहियया, जिणवयणरसायणं च[1] मोत्तूणं।
सेसोवाएहि निवारिया वि हु ढुक्कइ पुणो वि जरा॥४१॥

[न जानन्ति मूढहृदया जिनवचनरसायनं च मुक्त्वा।
शेषोपायैः निवारितापि खलु ढौकते पुनरपि जरा॥४१॥]

तर्हि जराभीतानां यत् सम्यक्कृत्यं यत्तद्भवन्तोऽप्युपदिशन्त्वित्याशङ्क्य सदृष्टान्तं तदुपदिशन्नाह-

[मू] तो जइ अत्थि भयं ते, इमाइ घोराइ जरपिसाईए।
जियसत्तु व्व पवज्जसु, सरणं जिणवीरपयकमलं॥४२॥

[ततो यदि अस्ति भयं ते अस्या घोराया जरापिशाच्याः।
जितशत्रुरिव प्रपद्यस्व शरणं जिनवीरपदकमलम्॥४२॥]

[अव] गतार्था।

[जितशत्रुनृपकथा]

कथानकं चेदम्। जितशत्रुरित्ययं गुणत एव द्रष्टव्यः, बहूनां शत्रूणामनेन जितत्वात्, नामतस्तु सोमचन्द्राभिधानो द्रष्टव्यः। शास्त्रान्तरे च क्वचिद् गुणमाश्रित्य जितशत्रुतयासौ लिखितो दृष्ट इतीहापि तथैवोक्तः। आवश्यकादौ सोमचन्द्रतयैव प्रसिद्धः। अनेन च जराभीतेन प्रथममज्ञानात्तापसी दीक्षा गृहीता, पश्चात्तु श्रीमहावीरसकाशे। तत्पुत्रस्तु प्रसन्नचन्द्रो राजर्षिरभूत्। सङ्क्षेपतोऽत्र विस्तरतो वृत्तितो ज्ञेया-(यम्)॥४२॥

तदेवमुक्तं रोगजराविषयमशरणत्वम्। अथ मृत्युविषयं तद् बिभणिषुराह-

[मू] समुवट्ठियम्मि मरणे, ससंभमे परियणम्मि धावंते।
को सरणं परिचिंतसु, एक्कं मोत्तूण जिणधम्मं॥४३॥

[समुपस्थिते मरणे ससम्भ्रमे परिजने च) धावति।
कः शरणं परिचिन्तय एकं मुक्त्वा जिनधर्मम् ?॥४३॥]

---

१. **वि** इति पा. प्रतौ।

[अव] समुपस्थिते मरणे, निरुपक्रमे इति शेष:। सोपक्रमे तु तस्मिन् भवति विभवस्वजनादयोऽपि शरणम्॥४३॥

जिनधर्मोऽप्यनन्तरभावेन परम्परया वा मृत्युवर्जितस्थाने नयतीत्येतावता शरणमुच्यते

तद्भव एव सद्यः सोऽपि तं निवारयितुं न शक्नोतीत्यत आह-

[मू] सयलतिलोय[१] पहूणो, उवायविहीजाणगा अणंतबला।
तित्थयरा वि हु कीरंति कित्तिसेसा कयंतेण॥४४॥

[सकलत्रिलोकप्रभवः उपायविधिज्ञायका अनन्तबलाः।
तीर्थकरा अपि खलु क्रियन्ते कीर्तिशेषाः कृतान्तेन॥४४॥]

[अव] उपायाँश्च सम्भविन: सर्वानपि केवली जानाति। समुत्पन्नकेवलैस्तीर्थकरैरपि स कोऽप्युपायो न दृष्ट: येन मृत्यु: सद्य एव निवार्यते॥४४॥

[मू] बहुसत्तिजुओ सुरकोडिपरिवुडो पविपयंडभुयदंडो।
हरिणो व्व हीरइ हरी, कयंतहरिणाहरियसत्तो॥४५॥

[बहुशक्तियुतः सुरकोटिपरिवृतः पविप्रचण्डभुजदण्डः।
हरिण इव ह्रियते हरिः कृतान्तहरिणाधरितसत्त्वः॥४५॥]

एवं चेन्द्रचक्रवर्तिनोऽपि॥४५॥

[मू] छक्खंडवसुहसामी, नीसेसनरिंदपणयपयकमलो।
चक्कहरो वि गसिज्जइ, ससि व्व जमराहुणा विवसो॥४६॥

[षट्खण्डवसुधास्वामी निःशेषनरेन्द्रप्रणतपदकमलः।
चक्रधरोऽपि ग्रस्यते शशी इव यमराहुणा विवशः॥४६॥]

[मू] जे कोडिसिलं वामेक्ककरयलेणुक्खिवंति तूलं व।
विज्झवइ जमसमीरो, ते वि पईवव्वऽसुररिउणो॥४७॥

[ये कोटिशिलां वामैककरतलेनोत्क्षिपन्ति तूलमिव।
विध्यापयति यमसमीरः तानपि प्रदीपानिवासुररिपून्॥४७॥]

[अव] जे पि.। ये त्रिपृष्ठादिवासुदेवा: कोटिशिलां वामैककरतलेन तूलमिवोत्क्षिपन्ति तानप्यसुराणाम् अश्वग्रीवादीनां रिपून् वासुदेवान् प्रदीपानिव

१. **तयलोय** इति पा. प्रतौ।

विध्यापयति यमसमीरः॥४६॥४७॥

ततः किमित्याह-

[मू] जइ मच्चुमुहगयाणं, एयाण वि होइ किं पि न हु सरणं।
ता कीडयमेत्तेसुं, का गणणा इयरलोएसु ?॥४८॥

[यदि मृत्युमुखगतानामेतेषामपि भवति किमपि न खलु शरणम्।
तर्हि कीटकमात्रेषु का गणना इतरलोकेषु ?॥४८॥]

[मू] जइ पियसि ओसहाइं, बंधसि बाहासु पत्थरसयाइं।
कारेसि अग्गिहोमं, विज्जं मंतं च संतिं च॥४९॥

[यदि पिबसि औषधानि बध्नासि बाह्वोः प्रस्तरशतानि।
कारयसि अग्निहोमं विद्यां मन्त्रञ्च शान्तिञ्च॥४९॥]

[मू] अन्नाइ वि कुंटलविंटलाइं भूओवघायजणगाइ।
कुणसि असरणो तह वि हु, डंकिज्जसि जमभुयंगेण॥५०॥

[अन्यान्यपि मन्त्रतन्त्रादीनि भूतोपघातजनकानि।
करोषि अशरणः तथापि खलु दश्यसे यमभुजङ्गेन॥५०॥]

[अव] येऽपि कुटुम्बधनधान्यादयस्तेऽपि निश्चितं मुमूर्षोर्न कस्यचिच्छरणमिति दर्शयति-

[मू] सिंचइ उरत्थलं तुह, अंसुपहवाहेण किं पि रुयमाणं।
उवरिट्ठियं कुडुंबं, तं पि सकज्जेक्कतल्लिच्छं॥५१॥

[सिञ्चति उरःस्थलं तव अश्रुप्रवाहेण किमपि रुदत्।
उपरिस्थितं कुटुम्बं तदपि स्वकार्यैकतत्परम्॥५१॥]

[मू] धणधन्नरयणसयणाइया य सरणं न मरणकालम्मि।
जायंति जए कस्स वि, अन्नत्थ वि जेणिमं भणियं॥५२॥

[धनधान्यरत्नस्वजनादिकाश्च शरणं न मरणकाले।
जायन्ते जगति कस्यापि अन्यत्रापि येनेदं भणितम्॥५२॥]

किमन्यत्र भणितमित्याह-

[मू] अत्थेण नंदराया, न रक्खिओ गोहणेण कुइअन्नो।
धन्नेण तिलयसेट्ठी, पुत्तेहिं न ताइओ सगरो॥५३॥

[अर्थेन नन्दराजः न रक्षितो गोधनेन कुचिकर्णः।
धान्येन तिलकश्रेष्ठी पुत्रैर्न त्रातः सगरः॥५३॥]

सुगमा। कथानिकानि तूच्यन्ते-

[नन्दकथा]

गौडदेशे पाटलीपुरे त्रिखण्डाधिपो नन्दो राजा। सः-

अकराणां करं चक्रे सकराणां महाकरम्।
सर्वोपायैर्धनं लोकान्नि:कृप: समुपाददे॥

व्यवहारोऽपि चर्मनाणकै: प्रवृत्त:। लोको भूभाजनाशनो जात:। स स्वर्णै: पर्वतानकारयत्। नृपा(पोऽ)मात्यादिभि: प्रतिबोध्यमानोऽप्यतृप्त एवान्ते "हा! मे धनानि कस्य स्युः" इति महार्तिपरो मृत्वा दुरन्तदु:खभागभूत्। इति नन्दकथा।

[कुविकर्णकथा]

मगधदेशे सुघोषग्रामे कुविकर्णो ग्रामणी:। स मीलितानेकगोकुललक्ष: विवदमाने वल्लभानां कृष्णादिवर्णै: संविभज्य गा ददौ। स तेष्वेव वसनक्रमेण दध्याद्यजीर्णेन वेदनाक्रान्तो "हा! गवादयो व: क्व कदा लप्स्ये?" इति महार्तिर्मृत्वा तिर्यक्त्वमाप। इति कुविकर्णकथा।

[तिलकश्रेष्ठिकथा]

अचलपुरे तिलकश्रेष्ठी ग्रामपुरादिषु बहुधान्यसङ्ग्रहो दुर्भिक्षे धान्येभ्य: प्रत्युपातैर्महाधनैर्बभार धान्यकोष्ठकान्। पुनरन्यदा नैमित्तिकगिरा स्वपरद्रव्येण सङ्गृहीतानि प्रचुरधान्यो मेघवृष्टौ "हा! मे धान्यानि कथं भावीनि" इति हृदयस्फोटेन मृत्वा नरकं ययौ॥ इति तिलकश्रेष्ठिकथा।

[सगरचक्रिकथा]

अयोध्यायां जितशत्रुनृपाङ्गजोऽजितनाथ: सुमित्रयुवराज्ञ: सगरश्चक्रवर्ती सुत:। तत्सुतो जिह्नुकुमारो विनयसन्तुष्टपितृरत्नानि गृहीत्वा पृथ्वीविलोकनाय गतोऽष्टापदेऽष्टयोजनोच्छ्रायेऽर्धविस्तृते योजनायामार्धविस्तृत त्रिगव्यूतोच्चचैत्ये सौवर्णे स्वपूर्वजश्रीभरतकारिते देवान् नत्वा तद्रक्षार्थं कृतपरिखो रज:पातकुपि-तज्वलनप्रभनागनिवारितोऽपि गङ्गाप्रवाहं तत्रानीतवान्। पङ्कपातदूननागदृष्टिविषेण

हता: षष्टिसहस्रकुमारा: तत्सैन्या वह्नौ प्रविशन्त: शक्रेण निवारितास्तेन विप्ररूपेण वियोगार्त: सगरो बोधित: शिवमगात्। इति सगरसुताख्यानकं समाप्तम्।

अथ दृष्टान्तगर्भमशरणत्वभावनोपसंहारमाह-

[मू] इय नाऊण असरणं, अप्पाणं गयउराहिवसुओ व्व।
जरमरणवल्लिविच्छित्तिकारए जयसु जिणधम्मे॥५४॥

[इति ज्ञात्वाशरणमात्मानं गजपुराधिपसुत इव।
जरामरणवल्लीविच्छित्तिकारके यतस्व जिनधर्मे॥५४॥]

[अव] इति = पूर्वोक्तप्रकारेण रोगजरामृत्युविषयेऽशरणमात्मानं ज्ञात्वा रोगजरामरणवल्लीविच्छेदकारके यतस्व जिनधर्मे, क इव? गजपुरराजसूनुरिवोद्यमं कुरु।

[वसुदत्तकथा]

उदाहरणं यथा–कुरुदेशे गजपुरे भीमरथनृपजायासुमङ्गलासुतो वसुदत्तः ७२(द्वासप्तति)कलावान् जिनधर्मभावितो निगोदादिविचारज्ञो राज्ञा महाविभूत्या ५००(पञ्चशत) कन्याः परिणायितः। तद्योग्या ५००(पञ्चशत)आवासा हैमदण्ड-कलशध्वजतोरणमत्तवारणादिरम्या धनधान्यादिभृता: कारिता:। अन्यदा गवाक्षस्थो कुमारो नरमेकं सर्वाङ्गगलत्कुष्ठव्याधिबाधितम्, तत्पृष्ठौ(ष्ठे) तु पलितवलिकलितं गलल्लालाविलवदनं भग्नपृष्ठिं यष्टिविलग्नं जराग्रस्तं स्थविरमेकम्, तत्पृष्ठे नृचतुष्क-वाह्यं शबं च पश्यति। एवं रोगजरामरणग्रस्यमानमशरणं जनं दृष्ट्वा निर्विण्णस्तादृशं राज्यं त्यक्त्वा प्रव्रज्य सिद्धः॥ इति गजपुराधिपसुतवसुदत्तकथा॥५४॥ इति द्वितीयभावना॥

[तृतीया एकत्वभावना]

यदि नाम स्वकृतकर्मफलविपाकमनुभवतां शरणं न कोऽपि सम्पद्यते, तथापि तद्वेदने द्वितीय: सहायमात्रं कश्चिद्भविष्यत्येतदपि नास्तीति दर्शयन्निदानीमशरणत्व-भावनानन्तरमेकत्वभावनामाह-

[मू] एक्को कम्माइं समज्जिणेइ भुंजइ फलं पि तस्सेक्को।
एक्कस्स जम्ममरणे, परभवगमणं च एक्कस्स॥५५॥

[एकः कर्माणि समर्जयति भुङ्क्ते फलमपि तस्यैकः।
एकस्य जन्ममरणे परभवगमनं चैकस्य॥५५॥]

[मू] सयणाणं मज्झगओ, रोगाभिहओ किलिस्सइ इहेगो।
सयणोऽवि य से रोगं, न विरिंचइ नेय अवणेइ॥५६॥

[स्वजनानां मध्यगतो रोगाभिहतः क्लिश्यते इहैकः)।
स्वजनोऽपि च तस्य रोगं न विभजति नैवापनयति॥५६॥]

[अव] सुगमे। **'न विरिंचइ'** त्ति। न विभज्य गृह्णाति, नाप्यपनयति

[अव] स्वकृतकर्मफलमनुभवतां प्राणिनां यदा कोऽपि विभागं न गृह्णाति नापि तद्वेदनां निवारयति तदा क इदामीमिति पापविपाकं वेदनाकाले स्वजनानाम् ॥५६॥

[मू] मज्झम्मि बंधवाणं, सकरुणसद्देण पलवमाणाणं।
मोत्तुं विहवं सयणं, च मच्चुणा हीरए एक्को॥५७॥

[मध्ये बान्धवानां सकरुणशब्देन प्रलपताम्।
मुक्त्वा विभवं स्वजनञ्च मृत्युना ह्रियते एकः॥५७॥]

[मू] पत्तेयं पत्तेयं, कम्मफलं नियमणुहवंताणं।
को कस्स जए सयणो ?, को कस्स परजणो एत्थ ?॥५८॥

[प्रत्येकं प्रत्येकं कर्मफलं निजकमनुभवताम्।
कः कस्य जगति स्वजनः ? कः कस्य परजनोऽत्र ?॥५८॥]

[अव] स्वकृतकर्मफलमनुभवतां प्राणिनां यदा कोऽपि विभागं न गृह्णाति नापि तद्वेदनां निवारयति तदा क

[मू] को केण समं जायइ ?, को केण समं परं भवं वयइ ?।
को कस्स दुहं गिण्हइ ?, मयं च को कं नियत्तेइ ?॥५९॥

[कः केन समं जायते ? कः केन समं परं भवं व्रजति ?।
कः कस्य दुःखं गृह्णाति ? मृतञ्च कः कं निवर्तयते?॥५९॥]

[मू] अणुसोयइ अन्नजणं, अन्नभवंतरगयं च बालजणो।
न य सोयइ अप्पाणं, किलिस्समाणं भवे एक्कं॥६०॥

[अनुशोचत्यन्यजनमन्यभवान्तरगतञ्च बालजनः।
न च शोचत्यात्मानं क्लिश्यमानं भवे एकम्॥६०॥]

[मू] पावाइं बहुविहाइ, करेइ सुयसयणपरियणणिमित्तं।
निरयम्मि दारुणाओ, एक्को च्चिय सहइ वियणाओ॥६१॥

[पापानि बहुविधानि करोति सुतस्वजनपरिजननिमित्तम्।
निरये दारुणा एकश्चैव सहते वेदनाः॥६१॥]

[मू] कूडक्कयपरवंचणवीससियवहा य जाण कज्जम्मि।
पावं कयमिण्हिं ते, ण्हाया धोया तडम्मि ठिया॥६२॥

[कूटक्रयपरवञ्चनविश्वस्तवधाश्च येषां कार्ये।
पापं कृतमिदानीं ते स्नाता धौतास्तटे स्थिताः॥६२॥]

[अव] इदानीमिति पापविपाकवेदनाकाले॥६२॥

[मू] एको च्चिय पुण भारं, वहेइ ताडिज्जए कसाईहिं।
उप्पण्णो तिरिएसुं. महिसतुरंगाइजाईसु॥६३॥

[एकश्चैव पुनर्भारं वहति ताड्यते कषादिभिः।
उत्पन्नः तिर्यक्षु महिषतुरङ्गादिजातिषु॥६३॥]

[मू] इट्ठ[१] कुडुंबस्स कए, करइ णाणाविहाइं पावाइं।
भवचक्कम्मि भमंतो, एक्को च्चिय सहइ दुक्खाइं॥६४॥

[इष्टकुटुम्बस्य कृते करोति नानाविधानि पापानि।
भवचक्रे भ्रमन्नेकश्चैव सहते दुःखानि॥६४॥]

[मू] सयणाइवित्थरो मह, एत्तियमेत्तो त्ति हरिसियमणेण।
ताण निमित्तं पावाइ जेण विहियाइ विविहाइं॥६५॥

[स्वजनादिविस्तारो ममैतावन्मात्र) इति हृष्टमनसा।
तेषां निमित्तं पापानि येन विहितानि विविधानि॥६५॥]

[अव] स्वजनानाम् [विस्तारो] मम स्वजनो महानिति गर्वितमनास्तन्निमित्तं पापानि करोति। तस्याप्यधिकतरकर्मबन्धं मुक्त्वा नान्यत्फलमीक्ष्यते, दुःखांशग्राहकस्य द्वितीयस्यानुपलम्भादिति दर्शयति–**सय.**॥६५॥

[मू] नरयतिरियाइएसुं, तस्स वि दुक्खाइं अणुहवंतस्स।
दीसइ न कोऽवि बीओ, जो अंसं गिण्हइ दुहस्स॥६६॥

---

१. **दट्ठ** इति पा. प्रतौ।

[नरकतिर्यगादिषु तस्यापि दुःखानि अनुभवतः।
दृश्यते न कोऽपि द्वितीयो यो अंशं गृह्णाति दुःखस्य॥६६॥]

[मू] भोत्तूण चक्किरिद्धिं, वसिउं[१] छक्खंडवसुहमज्झम्मि।
एक्को वच्चइ जीवो, मोत्तुं विहवं च देहं च॥६७॥

[भुक्त्वा चक्रयर्द्धिमुषित्वा षट्खण्डवसुधामध्ये।
एको व्रजति जीवो मुक्त्वा विभवं च देहं च॥६७॥]

[मू] एक्को पावइ जम्मं, वाहिं वुड्ढत्तणं च मरणं च।
एक्को भवंतरेसुं, वच्चइ को कस्स किर बीओ ?॥६८॥

[एकः प्राप्नोति जन्म व्याधिं वृद्धत्वं च मरणं च।
एको भवान्तरेषु व्रजति कः कस्य किल द्वितीयः ?॥६८॥]

एकत्वभावनोपसंहारमाह-

[मू] इय एक्को च्चिय अप्पा, जाणिज्जसु सासओ तिहुयणे वि।
क्कंति महुनिवस्स व, जणकोडीओ विसेसाओ॥६९॥

[इति एकश्चैवात्मा जानीहि शाश्वतः त्रिभुवनेऽपि।
तिष्ठन्ति मधुनृपस्येव जनकोटयो विशेषाः॥६९॥]

[मू] अन्नं इमं कुडुंबं[२], अन्ना लच्छी सरीरमवि अन्नं।
मोत्तुं जिणिंदधम्मं, न भवंतरगामिओ अन्नो॥७०॥

[अन्यदिदं कुटुम्बमन्या लक्ष्मीः शरीरमप्यन्यद्।
मुक्त्वा जिनेन्द्रधर्मं न भवान्तरगामिकोऽन्यः॥७०॥]

[मधुनृपतिकथा]

वाणारस्यां मधुनृपस्तस्य परबलधीरो नाम पत्तिर्लक्षयोधी। तस्य जीवनं स्वर्णलक्षम्। अन्यदा कुरुदेशेशो बहुसैन्यस्तत्रागतः। मधुनृपोऽल्पबलोऽप्यभ्यनिर्विण्णोऽजनि। युद्धे न भग्नः। इतश्च परबलधीरेण तथा युद्धं यथा क्षणेन भग्नं कुरुदेशेशबलम्। निगृहीतस्तन्नृपः। जितं मधुनृपेण। सुभटो भृशं सत्कृतः। पुरे प्राप्तो नृपश्चिन्तयति, चतुरङ्गसैन्ये पत्तय एव सारमङ्गं तसा(तदसौ) बहुतमवर्षजीवनदानेन सङ्ग्रहिता घनाः पत्तिकोटयः। सदा तद्वेष्टितस्तिष्ठति। अन्यदा मृत्युकाले

---

१. **वसिओ** इति पा. प्रतौ। २. **कुडुंबमेयं** इति पा. प्रतौ।

बहुपत्तिकोटिवृतोऽपि गतत्राणो विपेदे। नरकं गत:।

इक्कुच्चिअ सो नरए, सहेइ तिव्वाइं दुक्खलक्खाइं।
महुराया इहयं चिय, ठिआ उ मणुआण कोडीओ॥ (हेम.मल.वृ.)

॥इति मधुनृपतिकथा॥ इति तृतीयभावनावचूरि:॥

[चतुर्थी अन्यत्वभावना]

किमिति देहादयो जीवस्यात्मभूता? इत्याह-

[मू] विन्नाया भावाणं, जीवो देहाइयं जडं वत्थुं।
जीवो भवंतरगई, थक्कंति इहेव सेसाइं॥७१॥

[विज्ञाता भावानां जीवो देहादिकं जडं वस्तु।
जीवो भवान्तरगतिः तिष्ठन्ति इहैव शेषाणि॥७१॥]

[अव] भावानाम्-जीवाजीवादिपदार्थानां विज्ञाता बोधरूपो जीव:। यत्तु देहधनधान्यादिकं बाह्यं वस्तु तज्जडमचेतनस्वरूपम्, चेतनाचेतनयोश्च कथमैक्यं स्याद्? इति भाव:। जीवश्च भवान्तरं गच्छति, शेषाणि तु शरीरादीन्यत्रैव तिष्ठन्ति इत्यतोऽपि जीवात् शरीरादयो भिन्ना:, भेदे ह्येकस्य गमनमपरेषां चावस्थितिरिति युज्यते, नान्यथेति भावः॥७१॥

अपरमप्यन्यत्वकारणमाह-

[मू] जीवो निच्चसहावो, सेसाणि उ भंगुराणि वत्थूणि।
विहवाइ बज्झहेउब्भवं च निरहेउओ जीवो॥७२॥

[जीवो नित्यस्वभावः शेषाणि तु भङ्गुराणि वस्तूनि।
विभवादि बाह्यहेतूद्भवं च निर्हेतुको जीवः॥७२॥]

[अव] नित्यस्वभावो जीव:, कदाचिदप्यविनाशात्, शेषाणि तु शरीरादिवस्तूनि भङ्गुराणि = विनश्वराणि, अग्निसंस्कारादिनात्रैव विनाशाद्। विभावादिकं च वस्तु बाह्यदृष्टहेतुसमुद्भवम्, जीवस्त्वनादिसिद्धो निर्हेतुक:। नित्यानित्ययो: सहेतुकनिर्हेतुकयोश्च भेदः सुप्रतीत एवेति॥७२॥

भेदे हेत्वन्तरमाह-

[मू] बंधइ कम्मं जीवो, भुंजेइ फलं तु सेसयं तु पुणो।
धणसयणपरियणाइं, कम्मस्स फलं च हेउं च॥७३॥

[बध्नाति कर्म जीवो भुङ्क्ते फलं तु शेषं तु पुनः।
धनस्वजनपरिजनादि कर्मणः फलं च हेतुश्च॥७३॥]

[अव] जीवो मिथ्यात्वादिहेतुभिर्ज्ञानावरणीयादिकं कर्म बध्नाति। तत्फलं च समयान्तरे भुङ्क्ते। शेषं तु धनस्वजनशरीरादि कर्मणः फलम् = कार्यम्, शुभाशुभकर्मोदयवशेनैव तस्य जायमानत्वात्। तथा हेतुः = कारणभूतं च कर्मणस्तन्ममत्वादिना तत्प्रत्ययकर्मबन्धस्य जीवे समुत्पद्यमानत्वात्। अतो भिन्नस्वभावत्वात् जीवाजीवयोर्भेदः॥७३॥

यदि नामैवं यदि भेदस्ततः किमित्याह-

[मू] इय भिन्नसहावत्ते, का मुच्छा तुज्झ विहवसयणेसु ?।
किं वावि होज्जिमेहिं, भवंतरे तुह परित्ताणं ?॥७४॥

[इति भिन्नस्वभावत्वे का मूर्च्छा तव विभवस्वजनेषु ?।
किं वापि भवेद् एभिर्भवान्तरे तव परित्राणम् ?॥७४॥]

[अव] इअ.। सुगमा। एवमुक्तयुक्तिभ्योऽयःशलाकाकल्पे अन्यत्वे व्यवस्थिते भावानां जीवशरीरस्वजनविभवानां किं तव भो! स्वजनेषु पुत्रादिषु ममत्वम्? कश्च प्रद्वेषः परिजने, एवं हि सति सर्वत्रौदासीन्यमेव युक्तम्।

अथैवं ब्रूयात्पुत्रादयः प्रौढीभूताः पुरस्तादुपकारिणो भविष्यन्तीति तेषु ममत्वं परेषु तु नैवमिति तेषु प्रद्वेष इत्याशङ्क्याह-

[मू] भिन्नत्ते भावाणं, उवयारऽवयारभावसंदेहे।
किं सयणेसु ममत्तं ?, को य पओसो परजणम्मि ?॥७५॥

[भिन्नत्वे भावानामुपकारापकारभावसन्देहे।
किं स्वजनेषु ममत्वम् ? कश्च प्रद्वेषः परजने ?॥७५॥]

[अव] उपकारश्चापकारश्च उपकारापकारौ। तद्भावस्य सन्देहस्तत्रेति। इदमुक्तं भवति–पुत्रोऽपि बृहत्तरीभूतः पितरं घातादिनापकरोति, परो हि प्रातिवेश्मादिर्बृहदुन्नतौ सत्यामुपकरोति॥७५॥

[मू] पवणो व्व गयणमग्गे, अलक्खिओ भमइ भववणे जीवो।
ठाणे ठाणम्मि समज्जिऊण धणसयणसंघाए॥७६॥

[पवन इव गगनमार्गे अलक्षितो भ्रमति भववने जीवः।
स्थाने स्थाने समर्ज्य धनस्वजनसङ्घातान्॥७६॥]

[अव] यथा पवनो = वायुर्गगनेऽस्खलितो भ्रमति। तथा जीवोऽप्यमूर्तत्वात् सर्वेन्द्रियैरनुपलक्षित एव भुवने भ्रमति। किं कृत्वा? **ठाणेत्यादि।** अतः कियत्सु स्थानेषु मूर्च्छा कर्त्तव्येति भावः॥७६॥

तथा-

[मू] जह वसिऊणं देसियकुडीए एक्काइ विविहपंथियणो।
वच्चइ पभायसमए, अन्नन्नदिसासु सव्वो वि॥७७॥

[यथोषित्वा देशिककुट्यामेकस्यां विविधपथिकजनः।
व्रजति प्रभातसमये अन्यान्यदिक्षु सर्वोऽपि॥७७॥]

[मू] जह वा महल्लरुक्खे, पओससमए विहंगमकुलाइं।
वसिऊण जंति सूरोदयम्मि ससमीहियदिसासु॥७८॥

[यथा वा महावृक्षे प्रदोषसमये विहङ्गमकुलानि।
उषित्वा यान्ति सूर्योदये स्वसमीहितदिक्षु॥७८॥]

[मू] अहवा गावीओ वणम्मि एगओ गोवसन्निहाणम्मि।
चरिउं जह संझाए, अन्नन्नघरेसु वच्चंति॥७९॥

[अथवा गावो वने एकतो गोपसन्निधाने।
चरित्वा यथा सन्ध्यायामन्यान्यगृहेषु व्रजन्ति॥७९॥]

[मू] इय कम्मपासबद्धा, विविहट्ठाणेहिं आगया जीवा।
वसिउं एगकुडुंबे, अन्नन्नगईसु वच्चंति॥८०॥

[इति कर्मपाशबद्धा विविधस्थानेभ्य आगता जीवाः।
उषित्वैककुटुम्बे अन्यान्यगतिषु व्रजन्ति॥८०॥]

एतद्भावनोपसंहारमाह-

[मू] इय अन्नत्तं परिचिंतिऊण घरघरणिसयणपडिबंधं।
मोत्तूण नियसहाए, धणो व्व धम्मम्मि उज्जमसु॥८१॥

[इत्यन्यत्वं परिचिन्त्य गृहगृहिणीस्वजनप्रतिबन्धम्।
मुक्त्वा निजसहायान् धन इव धर्मे उद्यच्छ॥८१॥]

[धनश्रेष्ठिकथा]

कथानकमिदं यथा-देशपुरे नगरे धनसारश्रेष्ठी सुतो धनस्तज्जाया यशोमती भर्तुर्विनयादि तथा करोति यथा सोऽन्यलोकोऽपि तां सतीं मन्यते। स तस्यां भृशमनुरक्तोऽपि विमलसुश्रावकसङ्गत्या सुश्रावकोऽजनि। विमलेनान्यदोक्तं "हे! धन तव भार्या न शोभना प्रतिभाति। मा त्वामपि मारयत्विति मया ज्ञाप्यते।" ततः सशङ्को जायाचरित्रं विलोकयति। अन्यदा तदुत्तरीयकं कस्यापि विटस्य समीपे दृष्टवा तामाह- "प्रियेऽमुकमुत्तरीयमानय कार्यमस्ति।" साह "सख्या गृहीतमस्ति।" धनेनाचिन्ति 'नूनमसतीयम् अन्यासक्तायामपि मे महामोहः' इति वैराग्यात् प्रव्रज्य नद्यासन्नवने शीतार्तो रात्रौ कायोत्सर्गे स्थितो दंशमशका(क)शीतादिपीडितोऽपि शुभभावोऽन्तकृत्केवली जातः। इति सङ्क्षेपेण धनश्रेष्ठिकथा॥८१॥

चतुर्थान्यत्व-भावनावचूरिः॥

[पञ्चमी भवभावना]
[सप्तनरकवर्णनम्]

[मू] नारयतिरियनरामरगईहिं चउहा भवो विणिद्दिट्ठो।
तत्थ य निरयगईए, सरूवमेवं विभावेज्जा॥८२॥

[नारकतिर्यङ्नरामरगतिभिश्चतुर्धा भवो विनिर्दिष्टः।
तत्र च नरकगत्याः स्वरूपमेवं विभावयेत्॥८२॥]

[अव] गतार्था।

कथं परिभावयेद्? इत्याह-

[मू] रयणप्पभाइयाओ, एयाओ तीइ सत्त पुढवीओ।
सव्वाओ समंतेण, अहो अहो वित्थरंतीओ॥८३॥

[रत्नप्रभादिका एतास्तस्यां सप्त पृथिव्यः।
सर्वाः समन्ताद् अधोऽधो विस्तारवत्यः॥८३॥]

[अव] तस्यां = नरकगतौ रत्नप्रभादिकाः सप्त पृथिव्यः स्युः।

---

१. **वि** इति पा. प्रतौ।

तद्यथा–रत्नप्रभा[१], शर्कराप्रभा[२], वालुकाप्रभा [३], पङ्कप्रभा[४], धूमप्रभा[५], तम:प्रभा[६], तमस्तम:प्रभा[७]। एतासु मध्ये रत्नप्रभा प्रत्यक्षत एव दृश्यते। अतस्तत्प्रत्यक्षतया प्रत्यक्षपरामर्शिना एतच्छब्देन सर्वा अपि निर्दिष्टा:। एताश्च सर्वा अपि समन्तात् = सर्वासु दिक्षु विष्कम्भा[यामा]भ्याम् अधोऽधो विस्तारवत्यो द्रष्टव्या:। तद्यथा–रत्नप्रभा उपरि समवर्त्तिन्याकाशप्रदेशप्रतरद्वये आयामविष्कम्भाभ्यां सर्वत्र एकरज्जुस्ततोऽधोऽध एषा विस्तारवती तावद्यावच्छर्कराप्रभा आयामविष्कम्भाभ्यां सर्वत्र रज्जुद्वयम्, एवं वालुकाप्रभा तिस्रो रज्जव:, पङ्कप्रभा चतस्र:, धूमप्रभा पञ्च, षष्ठी षट्, सप्तमी पृथ्वी सप्तरज्जव: आयामविष्कम्भाभ्यामिति स्थूलमानम्, सूक्ष्मं तु तच्छास्त्रान्तरेभ्योऽवसेयमिति।

एतासु सप्तपृथ्वीषु नगरकस्याधरोत्तरगत्या व्यवस्थिता: प्रस्तरा: स्यु:। तद्यथा–रत्नप्रभायां१३(त्रयोदश), शर्करायां११(एकादश), वालुकाप्रभायां९(नव), चतुर्थ्यां७(सप्त), पञ्चम्यां५(पञ्च), षष्ठ्यां३(त्रय:), सप्तम्यां१(एक:) प्रस्तरा:। उक्तञ्च-

तेरेक्कारस नव सत्त, पंच तिण्णि य तहेव इक्को य।
पत्थरसंखा एसा, सत्तसु वि कमेण पुढवीसु॥[१] ॥८३॥

(बृहत्सङ्ग्रहणी-२१९)

एतेषु नगरकल्पेषु प्रस्तटेषु तदन्तर्गता: पाटककल्पा नरकावासा भवन्ति। तत्सङ्ख्यां सप्तस्वपि पृथिवीषु क्रमेणाह-

[मू] तीसपणवीसपनरसदसलक्खा तिन्नि एग पंचूणं।
पंच य नरगावासा, चुलसीइलक्खाइं सव्वासु॥८४॥

[त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशलक्षाः त्रयः एकं पञ्चोनम्।
पञ्च च नरकावासाः चतुरशीतिर्लक्षाणि सर्वासु॥८४॥]

[अव] तीस.। रत्नप्रभायां त्रयोदशस्वपि प्रस्तटेषु त्रिंशल्लक्षाणि नरकावासानां भवन्ति। एवं यावत् षष्ठपृथिव्यां त्रिष्वपि प्रस्तटेषु पञ्चभिर्नरकावासैर्न्यूनमेकं लक्षं नरकावासानां स्यात्। सप्तम्यां त्वेकस्मिन् प्रस्तटे पञ्चैव नरकावासा:। मीलितास्तु सर्वेऽपि चतुरशीतिलक्षाणि स्यु:॥८४॥

---

१. त्रयोदशैकादश नव सप्त पञ्च त्रिणि च तथैवैकश्च। प्रस्तरसङ्खैषा सप्तस्वपि क्रमेण पृथ्वीषु॥

अथैषां नरकावासानां संस्थानादिस्वरूपमाह-

[मू] ते णं नरयावासा, अंतो वट्टा बहिं तु चउरंसा।
हेट्ठा खुरुप्पसंठाणसंठिया परमदुग्गंधा॥८५॥

[ते नरकावासा अन्तर्वृत्ता बहिश्चतुरस्राः।
अधः क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिताः परमदुर्गन्धाः॥८५॥]

[मू] असुई निच्चपइट्ठियपूयवसामंसरुहिरचिक्खिल्ला।
धूमप्पभाइ किंचि वि[१], जाव निसग्गेण अइ उसिणा॥८६॥

[अशुचयो नित्यप्रतिष्ठितपूतवसामांसरुधिरकर्दमाः।
धूमप्रभायां किञ्चिदपि यावन्निसर्गेणात्युष्णाः॥८६॥]

[अव] ते णं.। असुई.। सुगमे पाठसिद्धे, नवरं मांसवसादिवस्तूनि तत्र परमाधार्मिकप्रवर्तितानि द्रष्टव्यानि, स्वरूपेण तेषां तत्राभावात्। चतुर्थीपञ्चम्यादिषु तु परमाधार्मिकरहितासु मांसादिविकुर्वणाभावेऽपि स्वरूपेणैव तेऽनन्तगुणदुर्गन्धा भवन्ति। अपरञ्चाद्यासु तिसृषु पृथ्वीषु चतुर्थ्यां बहवो नरकावासा धूमप्रभायामपि कियन्तोऽपि नरकावासास्ते स्वभावेनैवोष्णा भवन्ति। तथौष्ण्यं कियति माने इति वक्ष्ये॥८६॥

परतः का वार्ता? इत्याह-

[मू] परओ निसग्गओ च्चिय, दुसहमहासीयवेयणाकलिया।
निच्चंधयारतमसा, नीसेसदुहायरा सव्वे॥८७॥

[परतो निसर्गतश्चैव दुःसहमहाशीतवेदनाकलिताः।
नित्यान्धकारतमसः निःशेषदुःखाकराः सर्वे॥८७॥]

[अव] पर.। धूमप्रभायाः कियद्भ्योऽपि नरकावासेभ्यः परतो ये तस्यामपि पृथिव्यां नरकावासाः ये च षष्ठीसप्तम्योर्येऽपि चतुर्थ्यां कियन्तोऽपि नरकावासास्ते स्वभावेनैव दुस्सहमहाशीतवेदनाकलिताः। शैत्यमानमपि वक्ष्यति। इदं तु सर्वेषां साधारणं स्वरूपम्। किमित्याह–निच्चं। केवलमन्धकारदुःखयोरधोऽधोऽनन्तगुणत्वं द्रष्टव्यमिति॥८७॥

औष्ण्यशैत्यमानमाह-

---

१. **(केत्तिया वि)** मु.क. प्रतौ।

[मू] जइ अमरगिरिसमाणं, हिमपिंडं को वि उसिणनरएसु।
खिवइ सुरो तो खिप्पं, वच्चइ विलयं अपत्तो वि॥८८॥

[यदि अमरगिरिसमानं हिमपिण्डं कोऽपि उष्णनरकेषु।
क्षिपति सुरस्ततः क्षिप्रं स व्रजति विलयमप्राप्तोऽपि॥८८॥]

[मू] धमियकयअग्गिवन्नो, मेरुसमो जइ पडेज्ज अयगोलो।
परिणामिज्जइ सीएसु सो वि हिमपिंडरूवेण॥८९॥

[ध्मातकृताग्निवर्णो मेरुसमो यदि पतेदयोगोलः।
परिणाम्यते शीतेषु सोऽपि हिमपिण्डरूपेण॥८९॥]

[अव] जइ.। धमि.। असत्कल्पनेयमकृतपूर्वत्वादित्थं प्रायः प्रयोजनाभावात्। अयं चेह परमार्थतः खदिराङ्गाररूपस्य वह्नेरिह यदौष्ण्यं ततोऽनन्तगुणं तदौष्ण्यं नरकेषु। यच्चेह मन्दमन्दपवनान्वितयोः पौषमाघयोरुत्कृष्टं शीतं ततोऽनन्तगुणं तच्छीतं नरकेषु, एते च द्वे अप्यौष्ण्यशैत्ये स्वस्थानेऽवस्थिते कदाचिदपि नापगच्छतोऽधोऽधोऽनन्तगुणे च द्रष्टव्ये॥८९॥

आद्यासु चतसृष्वपि नरकपृथ्वीषु अतिकठिनवज्रकुड्यानि सर्वत्र स्यात्। तेषु च जालककल्पान्यतीव सङ्कटमुखानि घटिकालियानि भवन्तीति दर्शयति-

[मू] अइकढिणवज्जकुड्डा, होंति समंतेण तेसु नरएसु।
संकडमुहाइं घडियालयाइं किर तेसु भणियाइं॥९०॥

[अतिकठिनवज्रकुड्यानि भवन्ति समन्तात् तेषु नरकेषु।
सङ्कटमुखानि घटिकालयानि किल तेषु भणितानि॥९०॥]

[अव] गतार्था। तेषु नारका यद्विधोत्पद्यन्ते तदाह-

[मू] मूढा य महारंभं, अइघोरपरिग्गहं पणिंदिवहं।
काऊण इहऽन्नाणि वि, कुणिमाहाराइ पावाइं॥९१॥

[मूढाश्च महारम्भमतिघोरपरिग्रहं पञ्चेन्द्रियवधम्।
कृत्वा इहान्यान्यपि मांसाहारादीनि पापानि॥९१॥]

[मू] पावभरेणक्कंता, नीरे अयगोलउ व्व गयसरणा।
वच्चंति अहो जीवा, निरए घडियालयाणंतो॥९२॥

[पापभरेणाक्रान्ता नीरे अयोगोलका इव गतशरणाः।
व्रजन्ति अधो जीवा नरके घटिकालयानामन्तः॥९२॥]

कियन्मानं पुनस्तेषां तत्र शरीरं भवतीत्याह-

[मू] अंगुलअसंखभागो, तेसि सरीरं तहिं हवइ पढमं।
अंतोमुहुत्तमेत्तेण जायए तं पि हु महल्लं॥९३॥

[अङ्गुलासङ्ख्यभागस्तेषां शरीरं तत्र भवति प्रथमम्।
अन्तर्मुहूर्तमात्रेण जायते तदपि खलु महत्॥९३॥]

[अव] इदमुक्तं भवति–सर्वास्वपि नरकपृथ्वीषु नारकाणां भवधारणीयं यच्छरीरं तत् जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागम्। उत्कृष्टं तु प्रथमपृथिव्यां सप्तधनूंषि हस्तत्रयमङ्गुलषट्कञ्च। द्वितीयायां पञ्चदशधनूंषि सार्द्धहस्तद्वयं च। तृतीयायां ततो द्विगुणम्। तद्यथा–एकत्रिंशद्धनूंष्येको हस्तः। एवं पूर्वस्यामुत्तरस्यां द्विगुणता तावद् द्रष्टव्यं यावत् सप्तमपृथिव्यां पञ्चधनुःशतानि उत्कृष्टं भवधारणीयं शरीरम्। इदं चोत्कृष्टमानमन्तर्मुहूर्तात् सर्वत्र भवति। उत्तरवैक्रियं तु सर्वास्वपि जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागः। उत्कृष्टं तु तद्भवधारणीयोत्कृष्टात् सर्वत्र द्विगुणं यावद् सप्तमपृथिव्यां धनुःसहस्रमुत्कृष्टमुत्तरवैक्रियमिति॥९३॥

नन्वन्तर्मुहूर्ताद्यदीदृशं बृहद् भवधारणीयं शरीरं स्यात्तर्हि घटिकालयेषु ते निराबाधं कथं मान्तीत्याह-

[मू] पीडिज्जइ सो तत्तो, घडियालयसंकडे अमायंतो।
पीलिज्जंतो हत्थि, व्व घाणए विरसमारसइ॥९४॥

[पीड्यते स ततो घटिकालयसङ्कटे अमान्।
पीड्यमानो हस्तीव घानके विरसमारसति॥९४॥]

[अव] घटिकालयसङ्कटे पीड्यते = बाध्यतेऽसौ, तस्यातिसङ्कटत्वात् तस्य चातिमहत्त्वादिति॥९४॥

तं च तथोत्पन्नं दृष्टवा परमाधार्मिकसुरा यत् कुर्वन्ति तदाह-

[मू] तं तह उप्पण्णं पासिऊण धावंति हट्ठतुट्ठमणा।
रे रे गिण्हह गिण्हह, एयं दुट्ठं ति जंपंता॥९५॥

[तं तथोत्पन्नं द्रष्ट्वा धावन्ति हृष्टतुष्टमनसः।
रे रे गृह्णीत गृह्णीत एतं दुष्टमिति जल्पन्तः॥९५॥]

[मू] छोल्लिज्जंतं तह संकडाउ जंताओ वंससलियं व।
धरिऊण खुरे कड्ढंति पलवमाणं इमे देवा॥९६॥

[तक्ष्यमाणं तथा सङ्कटाद् यन्त्राद् वंशशलाकामिव।
धृत्वा क्षुरप्रे कर्षन्ति प्रलपन्तमिमे देवाः॥९६॥]

[अव] यथा मोचिकः परक्कनिमित्तं यन्त्राद्वंशशलाकामाकर्षति। शेषं सुगमम्॥९६॥

के पुनस्ते परमाधार्मिकदेवाः? इत्याह-

[मू] अंबे अंबरिसी चेव सामे य सबले त्ति य।
रुद्दोवरुद्दकाले य महाकाले त्ति आवरे॥९७॥

[अम्बा अम्बरीषा एव श्यामाश्च शबला इति च।
रुद्रोपरुद्रकालाश्च महाकाला इति चापरे॥९७॥]

[मू] असि पत्तेधणू कुंभे वालू वेयरणि त्ति य।
खरस्सरे महाघोसे पनरस परमाहम्मिया॥९८॥

[असयः पत्रधनुषः कुम्भा वालुका वैतरणय इति च।
खरस्वरा महाघोषाः पञ्चदश परमाधार्मिकाः॥९८॥]

[अव] अम्बाः = अम्बजातीयदेवाः अम्बर्षयोऽम्बर्षिजातीया देवाः। एवं श्यामाः, शबलाः, रुद्राः, उपरुद्राः, कालाः, महाकालाः, असिनामानः, पत्रधनुनामानः कुम्भिजातीयाः, वालुकाभिधानाः, वैतरणीनामानः, खरस्वराः, महाघोषा एते पञ्चदश परमाधार्मिका देवा अत्राखेटिका इव क्रीडया नारकाणां वेदनोत्पादका इत्यर्थः॥९८॥

एते च नरकपाला देवास्तेषामभिमुखं किं जल्पन्तो धावन्ति? किं चाग्रतः कुर्वन्तीत्याह-

[मू] एए य निरयपाला, धावंति समंतओ य कलयलंता।
रे रे तुरियं मारह, छिंदह भिंदह इमं पावं॥९९॥

[एते च नरकपाला धावन्ति समन्ताच्च कलकलयन्तः।
रे रे त्वरितं मारयत छिन्त भिन्त इमं पापम्॥९९॥]

[मू] इय जंपंता वावल्लभल्लिसेल्लेहिं खग्गकुंतेहिं।
नीहरमाणं विंधंति तह य छिंदंति निक्करुणा॥१००॥

[इति जल्पन्तो व्यापृतभल्लिशरैः खड्गकुन्तैः।
निःसरन्तं विध्यन्ति तथा च छिन्दन्ति निष्करुणाः॥१००॥]

[अव] सुगमे। नवरं पापं = पापिष्ठम्। अन्नेऽवि निरयपाला इति पाठोऽयुक्त एव लक्ष्यते, अनागमिकत्वाद्, अम्बादिपञ्चदशदेवजातिभ्योऽन्यस्य नरकपालस्यागमे क्वचिदप्यश्रवणाद् अतः शोधनीयः पाठ इति।

घटिकालयान्निपतन्नारकस्तैः पापक्रीडारतैर्दैवैः क्व क्षिप्यत इत्याह-

[मू] निवडंतो वि हु कोइ वि, पढमं खिप्पइ महंतसूलाए।
अप्फालिज्जइ अन्नो, वज्जसिलाकंटयसमूहे॥१०१॥

[निपतन्नपि खलु कश्चिदपि प्रथमं क्षिप्यते महाशूलायाम्।
आस्फाल्यतेऽन्यो वज्रशिलाकण्टकसमूहे॥१०१॥]

[मू] अन्नो वज्जग्गिचियासु खिप्पए विरसमारसंतो वि।
अंबाईणऽसुराणं, एत्तो साहेमि वावारं॥१०२॥

[अन्यो वज्राग्निचितासु क्षिप्यते विरसमारसन्नपि।
अम्बादीनामसुराणामितः कथयामि व्यापारम्॥१०२॥]

[अव] सुगमार्थं गाथाद्वयम्। नवरमेते अम्बादिजातीया देवाः प्रायो भिन्नव्यापारेण नारकान् कदर्थयन्ति। अथ तेषां पृथग्व्यापारं द्वितीयसूत्रकृदङ्गादिषु तीर्थकरगणधरैः प्रतिपादितं कथयामि॥१०२॥

[पञ्चदशपरमाधार्मिककृत्यवर्णनम्]

तत्राम्बाजातीयानामयं व्यापारस्तद्यथा-

[मू] आराइएहि विंधंति मोग्गराईहिं तह निसुंभंति।
धाडंति अंबरयले, मुंचंति य नारए अंबा॥१०३॥

[आरादिकैर्विध्यन्ति मुद्गरादिभिस्तथा ताडयन्ति।
ध्राट्यन्ति अम्बरतले मुञ्चन्ति च नारकानम्बाः॥१०३॥]

[अव] अम्बजातीया देवा नारकमम्बरतले दूरं नीत्वा ततश्चाधोमुखं मुञ्चन्ति, पतन्तं च वज्रमयारादिभिर्विध्यन्ति, मुद्गरादिभिस्ताडयन्ति। तथा **'धाडंति'** त्ति। क्रीडया

नानाभयानि सन्दर्शयन्तः सारमेयानिव तानुत्त्रासयन्ति। दूरं यावत् पृष्ठतो धावन्तः पलायनं कारयन्तीत्यर्थः॥१०३॥

अथाम्बर्षिव्यापारमाह-

[मू] निहए य तह निसन्ने, ओहयचित्ते विचित्तखंडेहिं।
कप्पंति कप्पणीहिं, अंबरिसी तत्थ नेरइए॥१०४॥

[निहताँश्च तथा निषण्णान् उपहतचित्तान् विचित्रखण्डैः।
कल्पयन्ति कल्पनीभिः अम्बर्षयस्तत्र नैरयिकान्॥१०४॥]

[अव] खड्गमुद्गरादिना निहतांस्तथा निषण्णाँस्तुदति मूर्च्छया पतितानुपहतमनःसङ्कल्पान् निश्चेतनीभूतान्। सूचिकोपकरणविशेषसदृशीभिः कल्पनीभिर्विचित्रैः स्थूलमध्यमसूक्ष्मखण्डैस्तत्राम्बर्षयो नारकान् कल्पयन्ति॥१०४॥

अथ श्यामानां व्यापृतिमाह-

[मू] साडणपाडणतोत्तयविंधण तह रज्जुतलपहारेहिं।
सामा नेरइयाणं, कुणंति तिव्वाओ वियणाओ॥१०५॥

[सातनपातनतोत्रकवेधनं तथा रज्जुतलप्रहारैः।
श्यामा नैरयिकाणां कुर्वन्ति तीव्रा वेदनाः॥१०५॥]

[अव] सातनम् = अङ्गोपाङ्गानां छेदनं पातनम् = घटिकालयादधो वज्रभूमौ प्रक्षेपणं तथा तोत्रकेण = वज्रमयप्राजानदण्डेन वेधनम् = आराभिरुत्पाटनम्। पातशतनादिभिस्तथा रज्जुपादतलप्रहारैश्च श्यामा नारकाणां तीव्रवेदनां कुर्वन्ति॥१०५॥

अथ शबलानां कृत्यमाह-

[मू] सबला नेरइयाणं, उयराओ तह य हिययमज्झाओ।
कड्ढंति अंतवसमंसफिप्फिसे छेदिउं बहुसो॥१०६॥

[सबला नैरयिकाणामुदरात्तथा च हृदयमध्यात्।
कर्षन्ति अन्त्रवसामांसफिप्फिसानि छित्त्वा बहुशः॥१०६॥]

[अव] शबला नारकाणां विरसमारसतां हृष्टा उदरं पाटयित्वा हृदयं च छित्त्वासत्यपि तच्छरीरेषु तद्भयोत्पादनार्थं वैक्रियाणि कृत्वा समाकृष्यांन्त्रवसामांसानि तथान्त्रवर्तिनी मांसविशेषरूपाणि फिप्फिसानि दर्शयन्ति॥१०६॥

रुद्राः किं कुर्वन्तीत्याह-

[मू] छिंदंति असीहिं तिसूलसूलसुइसत्तिकुंततुमरेसु।
पोयंति चियासु दहंति निद्दयं नारए रुद्दा॥१०७॥

[छिन्दन्ति असिभिः त्रिशूलशूलसूचिशक्तिकुन्ततोमरेषु।
प्रोतयन्ति चितासु दहन्ति निर्दयं नारकान् रुद्राः॥१०७॥]

[अव] सूचिर्वज्रमयी शूलिकाविशेषरूपा द्रष्टव्या। शेषा गतार्था॥१०७॥

उपरुद्राः किं व्यवस्यन्ति इति प्राह-

[मू] भंजंति अंगुवंगाणि ऊरू बाहू सिराणि करचरणे।
कप्पंति खंडखंडं, उवरुद्दा निरयवासीणं॥१०८॥

[भञ्जन्ति अङ्गोपाङ्गानि ऊरू बाहू शिरांसि करचरणान्।
कल्पयन्ति खण्डखण्डमुपरुद्रा नरकवासिनाम्॥१०८॥]

[अव] प्रकटार्था। कालाः किमाचरन्तीत्याह-

[मू] मीरासु सुंठिएसुं, कंडूसु य पयणगेसु कुंभीसु।
लोहीसु य पलवंते, पयंति काला उ नेरइए॥१०९॥

[दीर्घचुल्लीषु शुण्ठकेषु कन्दुषु च पचनकेषु कुम्भीषु।
लौहिषु च प्रलपतः पचन्ति कालास्तु नैरयिकान्॥१०९॥]

[अव] मीरासु = वज्राग्निभृद्दीर्घचुल्लीषु सुकण्ठेषु = वज्रमयतीक्ष्णकीलकेषु मांसमिव तन्मुखे प्रक्षिप्य कन्दुषु = तीव्रतापेषु उल्लूरिकोपकरणविशेषेषु पचनकेषु मण्डकादिपाकहेतुषु कुम्भीषु उष्ट्रिकाकृतिषु लौहीषु-अतिप्रतप्तायसकवल्लिषु प्रलापान् कुर्वतो नारकान् जीवान् मत्स्यानिव कालाः पचन्तीत्यर्थः॥१०९॥

महाकालानां व्यवसायमाह-

[मू] छेत्तूण सीहपुच्छागिईणि तह कागणिप्पमाणाणि।
खावंति मंसखंडाणि नारए तत्थ महकाला॥११०॥

[छित्त्वा सिंहपुच्छाकृतीन् तथा काकणीप्रमाणान्।
खादयन्ति मांसखण्डान् नारकांस्तत्र महाकालाः॥११०॥]

[अव] महाकालास्तत्र नारके नारकान् मांसखण्डान् खादयन्ति, छित्त्वा पृष्ठ्यादिप्रदेशान्, कथं भूतानीत्याह-पुच्छाकृतीनि, तथा काकणी = कपर्दिका

तत्प्रमाणानि॥११०॥

असिनरकपालानां चेष्टितं प्राह-

[मू] हत्थे पाए ऊरू, बाहु सिरा तह य अंगुवंगाणि।
छिंदंति असी असिमाइएहि निच्चं पि निरयाणं॥१११॥

[हस्तौ पादौ ऊरू बाहू शिरस्तथा चाङ्गोपाङ्गानि।
छिन्दन्ति असयः अस्यादिकैर्नित्यमपि निरयाणाम्॥१११॥]

[अव] सुबोधा॥१११॥

पत्रधनुर्देवानां क्रीडितमाह-

[मू] पत्तधणुनिरयपाला, असिपत्तवणं विउव्वियं काउं।
दंसंति तत्थ छायाहिलासिणो जंति नेरइया॥११२॥

[पत्रधनुर्नरकपाला असिपत्रवनं विकुर्वितं कृत्वा।
दर्शयन्ति तत्र छायाभिलाषिणो यान्ति नैरयिकाः॥११२॥]

[मू] तो पवणचलिततरुनिवडिएहिं असिमाइएहिं किर तेसिं।
कण्णोट्ठनासकरचरणऊरूमाईणि छिंदंति॥११३॥

[ततः पवनचलिततरुनिपतितैः अस्यादिभिः किल तेषाम्।
कर्णोष्ठनासाकरचरणोर्वादीनि छिन्दन्ति॥११३॥]

[अव] अस्याद्याकारप्रधानं वृक्षसमूहरूपमसिपत्रवनम्, शेषं प्रकटार्थम् ॥११२॥११३॥

कुम्भिनाम्नामसुराणां विजृम्भितमाह-

[मू] कुंभेसु[1] पयणगेसु य, सुंठेसु य कंदुलोहिकुंभीसु।
कुंभीओ नारएँ उक्कलंततेल्लाइसु तलंति॥११४॥

[कुम्भेषु पचनकेषु च शुण्ठेषु च कन्दुकलौहिकुम्भीषु।
कुम्भिका नारकान् उत्क्वथत्तैलादिषु तलन्ति॥११४॥]

[अव] इयं व्याख्यातार्थैव, नवरं शुण्ठके कृत्वा क्वथन्ते तैलादिषु तलन्तीति दृश्यम्। **'कंदुलोहिकुम्भीसु'** त्ति लोही सा चासौ कुम्भी च कोष्ठिकाकृतिरिति, कन्दुकानामिवायोमयीषु कोष्टिकास्वित्यर्थः॥११४॥

---

१. **कुंभीसु** इतु पा. पतौ।

वालुकाख्या यद्विदधति तदाह-

[मू] तडयडरवफुट्टंते, चणय व्व कयंबवालुयानियरे।
भुंजंति नारए तह, वालुयनामा निरयपाला॥११५॥

[तडतडरवस्फुटतो चणकानिव कदम्बवालुकानिकरे।
भृज्जन्ति नारकान् तथा वालुकानामानो नरकपालाः॥११५॥]

[अव] कदम्बवृक्षपुष्पाकृतिवालुका तन्निकरे भ्राष्ट्रवालुकातोनन्तगुण-तप्ते॥११५॥

वैतरणीनामानः किं कुर्वन्तीत्याह-

[मू] वसपूयरुहिरकेसट्ठिवाहिणिं कलयलंतजउसोत्तं।
वेयरणिं नाम नइं, अइखारुसिणं विउव्वेउं॥११६॥

[वसापूयरुधिरकेशस्थिवाहिनीं कलकलायमानजतुश्रोतसम्।
वैतरणीं नाम नदीम् अतिक्षारोष्णां विकुर्व्य॥११६॥]

[मू] वेयरणिनरयपाला, तत्थ पवाहंति नारए दुहिए।
आरोवंति तहिं पिहु, तत्ताए लोहनावाए॥११७॥

[वैतरणीनरकपालास्तत्र प्रवाहयन्ति नारकान् दुःखितान्।
आरोपयन्ति तत्रापि खलु तप्तायां लोहनावि॥११७॥]

[अव] कलकलायमानमुत्कलितं जत्विव = लाक्षेव श्रोतः = प्रवाहो यस्याः सा कलकलायमानजतुश्रोतास्तां तथाभूताम्, शेषं सुखावसेयम्॥११६॥११७॥

खरखरविनियोगमाह-

[मू] नेरइए चेव परोप्परं पि परसूहिं तच्छयंति दढं।
करवत्तेहि य फाडंति निद्दयं मज्झमज्झेणं॥११८॥

[नैरयिकाँश्चैव परस्परमपि परशुभिः तक्षयन्ति दृढम्।
करपत्रैश्च पाटयन्ति निर्दयं मध्यमध्येन॥११८॥]

[मू] वियरालवज्जकंटयभीममहासिंबलीसु य खिवंति।
पलवंते खरसद्दं, खरस्सरा निरयपाल[1] त्ति॥११९॥

---

१. **पाले** इति पा. प्रतौ।

[विकरालवज्रकण्टकभीममहाशाल्मलीषु च क्षिपन्ति।
प्रलपतः खरशब्दं खरस्वरा निरयपाला इति॥११९॥]

[अव] विअराल।परस्परमिति अन्यमन्यस्य पार्श्वात् तमपीतरस्य समीपादित्येवम्। परस्परस्यापि नारकान् परशुभिरुत्क्षिपन्ति = सर्वत्वगाद्यप्रहरणेन तनूकारयन्तीत्यर्थः॥११९॥

महाघोषविलसितमाह-

[मू] पसुणो व्व नारए वहभएण भीए पलायमाणे य।
महघोसं कुणमाणा, रुंभंति तहिं महाघोसा॥१२०॥

[पशूनिव नारकान् वधभयेन भीतान् पलायमानाँश्च।
महाघोषं कुर्वतः रुन्धन्ति तत्र महाघोषाः॥१२०॥]

[अव] स्वयमेव नानाविधतीव्रकदर्थनादिभिर्नारकान् कदर्थयित्वा ततस्तत्कदर्थनाभयेन पलायमानान् महाघोषास्ताँस्तत्रैव वधस्थाने पशूनिव सम्पीड्य निरुन्धन्ति, नान्यत्र गन्तुं ददति॥१२०॥

[अव] तदेवमेतेषामम्बादिभवनपतिदेवाधमानां दिङ्मात्रोपदर्शनार्थं सङ्क्षेपो दर्शितः। कदर्थनाव्यापारो विस्तरतः सर्वस्य सर्वायुषापि कथयितुमशक्यत्वाद्। यदेते च तत्पापपरिणतिप्रेरिता एव नारकान् व्याधा इव कदर्थयन्ति। ततश्च तेऽपि तत्प्रत्ययं कर्म बद्ध्वात्र मत्स्यादितिर्यक्षूत्पद्य नरकेषु पतन्ति। अन्यैश्च तेऽपि कदर्थ्यन्ते।

आह–नन्वेतमेते नारकाः करपत्रादिपाटनतिलशच्छेदनादिभिः कथं न म्रियन्त इत्याह-

[मू] तह फालिया वि उक्कत्तिया वि तलिया वि छिन्नभिन्ना वि।
दड्ढा भुग्गा मुडिया, य तोडिया तह विलीणा य॥१२१॥

[तथा पाटिता अपि उत्कर्तिता अपि तलिता अपि छिन्नभिन्ना अपि।
दग्धा भुग्ना मोटिताश्च त्रोटितास्तथा विलीनाश्च॥१२१॥]

[मू] पावोदएण पुणरवि, मिलंति तह चेव पारयरसो व्व।
इच्छंता वि हु[१] न मरंति कह वि हु ते नारयवराया॥१२२॥

---

१. **हु** इति पा. प्रतौ नास्ति तद्रहित एव पाठः सम्यग् अन्यथा मात्राधिक्यं भवति।

[पापोदयेन पुनरपि मिलन्ति तथा चैव पारदरस इव।
इच्छन्तोऽपि खलु न म्रियन्ते कथमपि खलु ते नारकवराकाः॥१२२॥]

[अव] यद्यपि प्राणान्तकारिण्यस्ता वेदनाः, तत्करास्फालिताश्च ते मर्तुं वाञ्छन्ति तथापि न म्रियन्ते वराकाः दीर्घायुःस्थितेर्वेद्यासातकर्मणश्च सद्भावात्। शेषा गाथा गतार्था॥१२२॥

तर्हि ते कदर्थ्यमानाः किं चेष्टन्त इत्याह-

[मू] पभणंति तओ दीणा, मा मा मारेह सामि ! पहु ! नाह !।
अइदुसहं दुक्खमिणं, पसियह मा कुणह एत्ताहे॥१२३॥

[प्रभणन्ति ततो दीना मा मा मारयत स्वामिन् ! प्रभो ! नाथ !।
अतिदुस्सहं दुःखमिदं प्रसीदत मा कुरुत इत ऊर्ध्वम्॥१२३॥]

[मू] एवं परमाहम्मियपाएसु पुणो पुणो वि लग्गंति।
दंतेहि अंगुलीओ, गिण्हंति भणंति दीणाइं॥१२४॥

[एवं परमाधार्मिकपादेषु पुनः पुनरपि लगन्ति।
दन्तैरङ्गुलीः गृह्णन्ति भणन्ति दीनानि॥१२४॥]

अथ कठिनतरमनसां नरकपालानां विजृम्भितं दर्शयितुमाह-

[मू] तत्तो य निरयपाला, भणंति रे अज्ज दुसहं दुक्खं।
जइया पुण पावाइं, करेसि तुट्ठो तया भणसि॥१२५॥

[ततश्च निरयपाला भणन्ति रे अद्य दुःसहं दुःखम्।
यदा पुनः पापानि करोषि तुष्टस्तदा भणसि॥१२५॥]

[अव] सुबोधा॥१२५॥

तद्भणितमेवाह-

[मू] णत्थि जए सव्वन्नू, अहवा अहमेव एत्थ सव्वविऊ।
अहवा वि खाह पियह य, दिट्ठो सो केण परलोओ ?॥१२६॥

[नास्ति जगति सर्वज्ञोऽथवाहमेवात्र सर्ववित्।
अथवापि खादत पिबत च दृष्टः स केन परलोकः ?॥१२६॥]

[मू] णत्थि व पुण्णं पावं, भूयऽब्भहिओ य दीसइ न जीवो।
इच्चाइ भणसि तइया, वायालत्तेण परितुट्ठो॥१२७॥

[नास्ति वा पुण्यं पापं भूताभ्यधिकश्च दृश्यते न जीवः।
इत्यादि भणसि तदा वाचालत्वेन परितुष्टः॥१२७॥]

[अव] नास्ति जगति सर्वज्ञ इत्यादि भट्टाभिप्रायेणोक्तम्। **अहवा वीत्यादि** नास्तिकमतेनाभिहितम्। आह–ननु ते परमाधार्मिकाः किं सम्यग्दृष्टयो येनेदृशानि वचनानि वक्ष्यमाणानि च मांसभक्षणजीवघातादिपापानि नारकाणां नरकदुःखहेतुत्वेन कथयन्ति? नैतदेवम्, किन्तु तेषामयं कल्पो यदीदृशं सर्वं तैस्तेषां कथनीयम्। न च स्वयं मिथ्यादृष्टिरीदृशं न प्ररूपयति, अभव्याङ्गारमर्दकाचार्यादिषु तथा श्रवणादिति॥१२७॥

अन्यदपि पूर्वचेष्टितं यत्तेषां ते स्मारयन्ति तदाह-

[मू] मंसरसम्मि य गिद्धो, जइया मारेसि निग्घिणो जीवे।
भणसि तया अम्हाणं, भक्खमियं निम्मियं विहिणा॥१२८॥

[मांसरसे च गृद्धो यदा मारयसि निर्घृणो जीवान्।
भणसि तदास्माकं भक्ष्यमिदं निर्मितं विधिना॥१२८॥]

[मू] वेयविहिया न दोसं, जणेइ हिंस त्ति अहव जंपेसि।
चरचरचरस्स तो फालिऊण खाएसि परमंसं॥१२९॥

[वेदविहिता न दोषं जनयति हिंसेति अथवा जल्पसि।
चरचरचरयतः ततः पाटयित्वा खादसि परमांसम्॥१२९॥]

[मू] लावयतित्तिरअंडयरसवसमाईणि पियसि अइगिद्धो।
इण्हिं पुण पोक्कारसि, अइदुसहं दुक्खमेयंति॥१३०॥

[लावकतित्तिराण्डकरसवसादीनि पिबसि अतिगृद्धः।
इदानीं पुनः पूत्करोषि अतिदुःसहं दुखमेतदिति॥१३०॥]

[अव] अस्माकमिदं भक्ष्यमिति सामान्यजनपदोक्तिः। वेदविहितहिंसादोषान्न जनयतीत्यादिकं तु यज्ञेषु पशुघातिनां जल्पिनाम्। अक्षरार्थस्तु प्रकट एव॥१३०॥

स्मारितो लेशतः प्राणातिपातो। अथ मृषावादमाह-

[मू] अलिएहि वंचसि तया[१] कूडक्कयमाइएहि मुद्धजणं।
पेसुन्नाईणि करेसि हरिसिओ पलवसि इयाणिं॥१३१॥

---

१. **जया** इति पा. प्रतौ।

[अलीकैर्वञ्चयसि तदा कूटक्रयादिकैर्मुग्धजनम्।
पैशुन्यादीनि करोषि हृष्टः प्रलपसि इदानीम्॥१३१॥]

[अव] अलिकैर्वञ्चयसि तदा पूर्वभवे मुग्धजनम्। कथम्भूतैरित्याहकूट-क्रियादिभिरादिशब्दात् कूटसाक्षादिपरिग्रहः। शेषं गतार्थम्॥१३१॥

अदत्तादानमाह-

[मू] तइया खणेसि खत्तं, घायसि वीसंभियं मुससि लोयं।
परधणलुद्धो बहुदेसगामनगराइं भंजेसि॥१३२॥

[तदा खनसि क्षत्रं घातयसि विश्रब्धं मुष्णासि लोकम्।
परधनलुब्धो बहुदेशग्रामनगराणि भनक्षि॥१३२॥]

[अव] सुगमार्थारि(इ)ति॥१३२॥

[मू] तेणावि[१] पुरिसयारेण विणडिओ मुणसि तणसमं भुवणं।
परदव्वाण विणासे[२], य कुणसि पोक्करसि पुण इण्हिं॥१३३॥

[तेनापि पुरुषकारेण विनटितो जानासि तृणसमं भुवनम्।
परद्रव्याणां विनाशान् च करोषि पूत्करोषि पुनरिदानीम्॥१३३॥]

[मू] मा हरसु परधणाइं, ति चोइओ भणसि धिट्ठयाए य।
सव्वस्स वि परकीयं, सहोयरं कस्सइ न दव्वं॥१३४॥

[मा हर परधनानीति चोदितो भणसि धृष्टतया च।
सर्वस्यापि परकीयं सहोदरं कस्यचिन्न द्रव्यम्॥१३४॥]

[अव] मा गृहाण परधनानीति गुर्वादिना प्रेरितो धृष्टतयोत्तरं करोषि। कथम्भूतमित्याह–सर्वस्यापि परकीयमेव भवति, न तु जायमानेन सह द्रव्यं केनापि जायते येन तत्तस्यात्मीयं भण्यते, अन्यस्य तु परकीयम्। शेषं सुबोधम्॥१३४॥

मैथुनमाह-

[मू] तइया परजुवईणं, चोरिय[३] रमियाइं मुणसि सुहियाइं।
अइरत्तो वि य तासिं, मारसि भत्तारपमुहे य॥१३५॥

[तदा परयुवतीनां चौर्यरतानि जानासि सुखितानि।
अतिरक्तोऽपि च तासां मारयसि भर्तृप्रमुखाँश्च॥१३५॥]

---

१. **तेण वि य** इति पा. प्रतौ।, २. **तरदव्वेण विलासे** इति पा. प्रतौ।, ३. **चौइय** इति पा. प्रतौ।

[मू] सोहग्गेण य नडिओ, कूडविलासे य कुणसि ताहिं समं।
इण्हिं तु तत्ततंबयढिउल्लियाणं पलाएसि॥१३६॥

[सौभाग्येन च नटितः कूटविलासांश्च करोषि ताभिः समम्।
अत्र तु तप्ततााम्रपुत्तलिकाभ्यः पलायसे॥१३६॥]

[अव] ढिउल्लियाणं ति। पुत्तलिकानाम्, दुःशीलस्त्रीणां तु नरकगतानां तेऽपि द्रष्टव्याः पुत्तलकाः॥१३६॥

अत्रापि प्रत्युत्तरं करोषि। तदाह-

[मू] परकीयच्चिय भज्जा, जुज्जइ नियया इ माइभगिणीओ।
एवं च दुव्वियड्ढत्तगव्विओ वयसि सिक्खविओ॥१३७॥

[परकीया चैव भार्या युज्यते निजका मातृभगिन्यः।
एवं दुर्विदग्धत्वगर्वितो वदसि शिक्षितः॥१३७॥]

[अव] स्पष्टा॥१३७॥

अथ परिग्रहमाह-

[मू] पिंडेसि असंतुट्ठो, बहुपावपरिग्गहं तया मूढो।
आरंभेहि य तूससि, रूससि किं एत्थ दुक्खेहिं ?॥१३८॥

[पिण्डयसि असन्तुष्टः बहुपापपरिग्रहं तदा मूढः।
आरम्भैश्च तुष्यसि रुष्यसि किमत्र दुःखैः ?॥१३८॥]

[अव] बहुपापहेतुभूतः परिग्रहो बहुपापपरिग्रहस्तम्॥१३८॥

अथ रात्रिभोजनमाह-

[मू] आरंभपरिग्गहवज्जियाण निव्वहइ अम्ह न कुडुंबं।
इय भणियं जस्स कए, आणसु तं दुहविभागत्थं॥१३९॥

[आरम्भपरिग्रहवर्जितानां निर्वहति अस्माकं न कुटुम्बम्।
इति भणितं यस्य कृते आनय तद् दुःखविभागार्थम्॥१३९॥]

[मू] भरिउं पिपीलियाईण सीवियं जइ मुहं तुहऽम्हेहिं।
तो होसि पराहुत्तो, भुंजसि रयणीइ पुण मिट्ठं॥१४०॥

[भृत्वा पिपीलिकानां सीवितं यदि मुखं तवास्माभिः।
ततो भवसि पराङ्मुखः भुङ्क्षे रजन्यां पुनः मृष्टम्॥१४०॥]

[अव] पराङ्मुखो रजन्यां = निशीथे मण्डके हरिद्रादिकम् आ! मृष्टमिदम्, वञ्चिता ये निशि न भुञ्जते, न बुद्धो हि तैस्तदास्वाद इत्येवं प्रशस्य भुङ्क्षे त्वम्॥१४०॥

पूर्वभवसुरापायिनोऽधिकृत्याह-

[मू] पियसि सुरं गायंतो, वक्खाणंतो भुयाहिं नच्चंतो।
इह तत्ततेलतंबयतऊणि किं पियसि न ? हयास !॥१४१॥

[पिबसि सुरां गायन् व्याख्यानयन् भुजाभ्यां नृत्यन्।
इह तप्ततैलताम्रत्रपूणि किं पिबसि न ? हताश !॥१४१॥]

[अव] स्पष्टा॥१४१॥

अमात्यादिराजनियोगे तलारादिकर्मणि च कृतपापस्मरणार्थमाह-

[मू] सूलारोवणनेत्तावहारकरचरणछेयमाईणि।
रायनिओए कुंढत्तणेण लंचाइगहणाइं॥१४२॥

[शूलारोपणनेत्रापहारकरचरणच्छेदादीनि।
राजनियोगे कुण्ढत्वेन लञ्चादिग्रहणानि॥१४२॥]

[मू] नयरारक्खियभावे, य बंधवहहणणजायणाईहिं।
नाणाविहपावाइं, काउं किं कंदसि इयाणिं ?॥१४३॥

[नगरारक्षिकभावे च बन्धवधघातनयातनादिभिः।
नानाविधपापानि कृत्वा किं क्रन्दसीदानीम् ?॥१४३॥]

[अव] राजनियोगेऽमात्यादिके पदे स्थितः शूलारोपणनेत्रोद्धारादीनि नानाविधानि पापानि कृत्वा कुण्ठत्वेन तत्रैव लञ्चादिपरिग्रहं कृत्वेति भावः। नगरारक्षकभावे च वधबन्धादिभिर्नानाविधानि पापानि कृत्वा क्रन्दसीदानीम्, ननु सहस्व निभृतो भूत्वा स्वकृतकर्मफलभूतानि दुःखानीति भावः॥१४३॥

अथोपहासपूर्वकमात्मनिर्दोषतां ख्यापयन्तः प्राहुः-

[मू] गुरुदेवाणुवहासो, विहिया आसायणा वयं भग्गं।
लोओ य गामकूडत्तणाइभावेसु संतविओ॥१४४॥

[गुरुदेवानामुपहासो विहिताशातना व्रतं भग्नम्।
लोकश्च ग्रामकूटत्वादिभावेषु सन्तापितः॥१४४॥]

[मू] इय जइ नियहत्थारोवियस्स तस्सेव पावविडविस्स।
भुंजसि फलाइं रे दुट्ठ ! अम्ह ता एत्थ को दोसो ?॥१४५॥

[इति यदि निजहस्तारोपितस्य तस्यैव पापविटपिनः।
भुङ्क्षे फलानि रे दुष्ट! अस्माकं ततोऽत्र को दोषः ?॥१४५॥]

[अव] रे दुष्ट! यदि त्वं फलानि भोक्ष्ये तदा अस्माकं दोषः कः? कस्य फलानीत्याह? पापान्येव विटपी = वृक्षस्तस्य, कथम्भूतस्य? तस्यैव **नत्थि जए** (गाथा-१२६)इत्यादिपूर्वोक्तप्रकारस्यैव पुनर्निजहस्तारोपितस्य, स्वयमेव कृतस्येति भावः। एतानि च तैः स्मारितपूर्वदुष्कृतानि भवप्रत्ययजातिस्मरणेन नारकाः स्वयमेव जानन्ति। अवधिना तु न किञ्चिदवगच्छन्ति, तस्योत्कृष्टतोऽपि योजनमात्रत्वात् तेषामित्यर्थः॥१४५॥

इत्याद्युक्तप्रकारेण पूर्वभवदुष्कृतानि स्मारयित्वा नरकपालाः पुनरपि नारकाणां यत् कुर्वन्ति तदाह-

[मू] इच्चाइ पुव्वभवदुक्कयाइं सुमराविउं निरयपाला।
पुणरवि वियणाउ उईरयंति विविहप्पयारेहिं॥१४६॥

[इत्यादिपूर्वभवदुष्कृतानि स्मारयित्वा निरयपालाः।
पुनरपि वेदना उदीरयन्ति विविधप्रकारैः॥१४६॥]

[अव] सुगमार्था॥१४६॥

वनदवदायिनोऽधिकृत्याह-

[मू] उक्कत्तिऊण देहाउ ताण मंसाइं चडफडंताण।
ताणं चिय वयणे पक्खिवंति जलणम्मि भुंजेउं॥१४७॥

[उत्कर्त्य देहात् तेषां मांसानि स्पन्दमानानाम्।
तेषां चैव वदने प्रक्षिपन्ति ज्वलने भ्रष्ट्वा॥१४७॥]

[मू] रे रे तुह पुव्वभवे, संतुट्ठी आसि मंसरसएहिं।
इय भणिउं तस्सेव य, मंसरसं गिण्हिउं देंति॥१४८॥

[रे रे तव पूर्वभवे सन्तुष्टिः आसीद् मांसरसकैः।
इति भणित्वा तस्यैव च मांसरसं गृहीत्वा ददति॥१४८॥]

[मू] चउपासमिलिअवणदवमहंतजालावलीहिं डज्झंता।
सुमराविज्जंति सुरेहिं नारया पुव्वदवदाणं॥१४९॥

[चतुष्पार्श्वमिलितवनदवमहाज्वालावलिभिः दह्यमानाः।
स्मार्यन्ते सुरैः नारकाः पूर्वदवदानम्॥१४९॥]

[अव] सुगमा। वैक्रियवनदवं स्वयमेव कृत्वा तत्र दह्यमाना नारकाः क्रन्दन्तः परमाधार्मिकैः सुरैः पापार्द्धिकालप्रवर्तितपूर्वभवकर्म स्मार्यते इत्याह॥१४९॥

[मू] आहेडयचेट्ठाओ, संभारेउं बहुप्पयाराओ।
बंधंति पासएहिं, खिवंति तह वज्जकूडेसु॥१५०॥

[आखेटकचेष्टाः स्मारयित्वा बहुप्रकाराः।
बध्नन्ति पाशकैः क्षिपन्ति तथा वज्रकूटेषु॥१५०॥]

[मू] पाडंति वज्जमयवागुरासु पिट्टंति लोहलउडेहिं।
सूलग्गे दाऊणं, भुंजंति जलंतजलणम्मि॥१५१॥

[पातयन्ति वज्रमयवागुरासु पिट्टयन्ति लोहलकुटैः।
शूलाग्रे दत्त्वा भृज्जन्ति ज्वलज्ज्वलने॥१५१॥]

[मू] उल्लंबिऊण उप्पिं, अहोमुहे हेट्ठ जलियजलणम्मि।
काऊण भडित्तं खंडंसोऽवि विकत्तंति सत्थेहिं॥१५२॥

[उल्लम्ब्य उपरि अधोमुखे अधो ज्वलितज्वलने।
कृत्वा भटित्रं खण्डशोऽपि कर्तयन्ति शस्त्रैः॥१५२॥]

[मू] पहरंति चवेडाहिं, चित्तयवयवग्घसीहरूवेहिं।
कुट्टंति कुहाडेहिं, ताण तणुं खयरकट्ठं व॥१५३॥

[प्रहरन्ति चपेटाभिः चित्रकवृकव्याघ्रसिंहरूपैः।
कुट्टयन्ति कुठारैः तेषां तनुं खदिरकाष्ठमिव॥१५३॥]

[मू] कयवज्जतुंडबहुविहविहंगरूवेहिं तिक्खचंचूहिं।
अच्छी खुड्डंति[1] सिरं, हणंति चुंटंति मंसाइं॥१५४॥

[कृतवज्रतुण्डबहुविधविहङ्गरूपैः तीक्ष्णचञ्चुभिः।
अक्षिणी तोडन्ति शिरो घ्नन्ति चुण्टयन्ति मांसादि॥१५४॥]

[अव] चित्रकवज्रतुण्डपक्षाणि रूपाणि परमाधार्मिकविक्रियाकृतानि द्रष्टव्यानि॥१५४॥

---

१. **अच्छीओ खुडंति** इति पा. प्रतौ। अत्र प्रथमे चरणे एका मात्रा अधिका प्रतिभाति।

[मू] अगणिवरिसं कुणंते, मेहे वेउव्वियम्मि नेरइया।
सुरकयपव्वयगुहमणुसरंति निज्जलियसव्वंगा॥१५५॥

[अग्निवर्षां कुर्वाणे मेघे विकुर्विते नैरयिकाः।
सुरकृतपर्वतगुफामनुसरन्ति निर्ज्वलितसर्वाङ्गाः॥१५५॥]

[अव] इदमुक्तं भवति–परमाधार्मिका नारकाणामुपरि निरन्तरं वज्राग्निकणवृष्टिं कुर्वन्तमग्निं वैक्रियं कुर्वन्ति। तद्दाहज्वलितसर्वाङ्गानां तेषां वैक्रियपर्वतं कृत्वा दर्शयन्ति। ततो नारका अग्निवृष्टिप्रतिकारार्थं तद्गुहामनुसरन्ति॥१५५॥

[मू] तत्थ वि पडंतपव्वयसिलासमूहेण दलियसव्वंगा।
अइकरुणं कंदंता, पप्पडपिट्ठं व कीरंति॥१५६॥

[तत्रापि पतत्पर्वतशिलासमूहेन दलितसर्वाङ्गाः।
अतिकरुणं क्रन्दन्तः पर्पटपिष्टमिव क्रियन्ते॥१५६॥]

[अव] सुगमा॥१५६॥

यैश्च पूर्वभवे करभादितिरश्चामतिभारः क्षिप्तस्तेषां यत्कुर्वन्ति तदाह-

[मू] तिरियाणऽइभारारोवणाइं सुमराविऊण खंधेसु।
चडिऊण सुरा तेसिं, भरेण भंजंति अंगाइं॥१५७॥

[तिरश्चामतिभारारोपणादि स्मारयित्वा स्कन्धेषु।
आरुह्य असुरास्तेषां भारेण भञ्जन्ति अङ्गानि॥१५७॥]

[मू] जेसिं च अइसएणं, गिद्धी सद्दाइएसु विसएसु।
आसि इहं ताणं पि हु, विवागमेयं पयासंति॥१५८॥

[येषां च अतिशयेन गृद्धिः शब्दादिकेषु विषयेषु।
आसीदिह तेषामपि खलु विपाकमेतं प्रकाशयन्ति॥१५८॥

[अव] येषां मधुरगीतपरयुवत्याद्यनुकूलमन्मनभाषितादिशब्देषु पूर्वं गृद्धिरिहासीत् तेषां श्रवणेषु तां स्मारयित्वोत्कालिततप्ततैलादीनि क्षिपन्ति। येषां तु परयुवत्यादिरूपविषये वदननयनाधरपल्लवकटाक्षक्षेप-प्रेक्षितकक्षावक्षोजनाभिमण्ड-लत्रिवलीतरङ्गितोदरकाञ्चीपदोरुस्तम्भाद्यवलोकने गृद्धिरतिशयेनासीत् तेषां दृष्टे-र्महासन्तापकारीणि परमोद्वेगजनकानि सर्वथा स्फोटनस्वरूपविघातहेतुभूतानि रूपाणि विस्फुर्जत्स्फुलिङ्ग-मालाज्वालाकरालानि तप्ताम्रमयपुत्तलिकादीनि दर्शयन्ति-॥१५८॥

अथ गन्धरसगृद्धिविपाकमाह-

[मू] तत्ततउमाइयाइं, खिवंति सवणेसु तह य दिट्ठीए।
संतावुव्वेयविघायहेउरूवाणि दंसंति॥१५९॥

[तप्तत्रप्वादिकानि क्षिपन्ति श्रवणेषु तथा च दृष्टेः।
सन्तापोद्वेगविघातहेतुरूपाणि दर्शयन्ति॥१५९॥]

[मू] वसमंसजलणमुम्मुरपमुहाणि विलेवणाणि उवणेंति।
उप्पाडिऊण संदंसएण दसणे य जीहं च॥१६०॥

[वसामांसज्वलनमुर्मुरप्रमुखाणि विलेपनानि उपनयन्ति।
उत्पाट्य सन्दंशकेन दशनान् जिह्वां च॥१६०॥]

[मू] तत्तो भीमभुयंगमपिवीलियाईणि तह य दव्वाणि।
असुईउ अणंतगुणे, असुहाइं खिवंति वयणम्मि॥१६१॥

[ततो भीमभुजङ्गमपिपीलिकादीनि तथा च द्रव्याणि।
अशुचेः अनन्तगुणानि अशुभानि क्षिपन्ति वदने॥१६१॥]

[अव] येषां तु सुरभिगन्धातिशयगृद्धानां कर्पूरादिषु गृद्धिरासीत् तेषां वपुषि वसामांसज्वलनमूर्मुरपूयादिविलेपनान्युपनयन्ति। येषां मद्यमांसरजनीभोजनादिरसगृद्धिरासीत्तेषां सन्दंशकेन दशनान् जिह्वां चोत्पाट्य ततो भीमभुजङ्गमपिपीलिकादीनि वदने क्षिपन्ति। तथा द्रव्याणि वैक्रियाणि कृत्वा वदने क्षिपन्ति। कथं भूतानि? अशुचीनि = जुगुप्सनीयानि महादुर्गन्धानि, किमुक्तं भवति? अशुचेर्विष्टाया अनन्तगुणेनाशुभानि॥१६१॥

अथ स्पर्शगृद्धिविपाकमाह-

[मू] सोवंति वज्जकंटयसेज्जाए अगणिपुत्तियाहिं समं।
परमाहम्मियजणियाउ एवमाई य वियणाओ॥१६२॥

[स्वापयन्ति वज्रकण्टकशय्यायामग्निपुत्रिकाभिः समम्।
परमाधार्मिकजनिता एवमाद्याश्च वेदनाः॥१६२॥]

[अव] स्पष्टा॥१६२॥

क्षेत्रानुभावजनितवेदनामाह-

[मू] एसो मह पुव्ववेरि, त्ति नियमणे अलियमवि विगप्पेउं।
अवरोप्परं पि घायंति नारया पहरणाईहिं॥१६३॥

[एष मम पूर्ववैरीति निजमनसि अलीकमपि विकल्प्य।
परस्परमपि घ्नन्ति नारकाः प्रहरणादिभिः॥१६३॥]

[मू] सीओसिणाइ वियणा, भणिया अन्ना वि दसविहा समए।
खेत्ताणुभावजणिया, इय तिविहा वेयणा नरए॥१६४॥

[शीतोष्णादिका वेदना भणिता अन्या अपि दशविधा समये।
क्षेत्रानुभावजनिता इति त्रिविधा वेदना नरके॥१६४॥]

[अव] क्षेत्रानुभावजनितशीतोष्णादिका वेदना दशविधा वेदना समये भणिता = व्याख्याता प्रज्ञप्त्यादिलक्षणे, तथा च तत्सूत्रम्-

"नेरइआ णं भंते! कतिविहं वेअणं पच्चणुभवमाणा विहरंति? गोअमा! दसविहं तं सीअं[१], उसिणं[२], खुहं[३], पिवासं[४], कंडुं[५], परज्झं[६], जरं[७], दाहं[८], भयं[९], सोगं[१०]"[१]। (भगवती शतक-७ उद्देश-१० सूत्र-१६२)

तत्र शीतमौष्ण्यं च प्रागेव व्याख्यातम्।(१-२) क्षुत्पुनस्तेषां सदाव्यवस्थिता सा स्यात् या समस्तजगद्धान्यभोजने च न निवर्तते। न च तेषां कावलिक आहारो भवति, केवलं ते तथा बुभुक्षिता आकाशादाहारद्रव्याणि गृह्णन्ति। तानि च पापोदयेनाशुचेरनन्तगुणमहाविशूचिकाजनकानि च ग्रहणमागच्छन्ति, ततस्तैः अत्रत्यमूढविशूचिकातोऽनन्तगुणदुःखा विशूचिका भवति। ततस्तद्दुःखमन्तर्मूहूर्त्त-मनुभूय तदन्ते पुनस्तादृशाहारग्रहणं, पुनस्तथाविधमेव दुःखम्। पुनरन्तर्मुहूर्त्तात् तद्ग्रहणमित्येवमाहारोऽपि वराकाणां सततमनन्तदुःखहेतुः(३)। पिपासा तु सा काचिद् भवति यासत्कल्पनया निःशेषजलधिजलपानेऽपि न व्यावर्त्तते(४)। कण्डूस्तु वपुषि तेषां सा निरन्तरमुपजायते या तीक्ष्णक्षुरिकोत्कीर्तितानामपि न विश्राम्यति(५)। पारवश्यं(६)। ज्वरस्त्वत्रत्यमाहेन्द्रज्वरादनन्तगुणस्तत्रामरणान्तं कदापि न विरमति(७)। दाहोऽप्यनन्तगुण एव(८)। एवं भयशोकौ तु सदापि(९-१०)।

तदेवं त्रिविधामपि वेदना प्रतिपाद्योपसंहरन्नाह-

---

१. नैरयिकाः खलु भगवन् ! कतिविधां वेदनां प्रत्यनुभवमानाः विहरन्ति? गौतम! दशविधां तद्यथा-शीतम् उष्णं क्षुधां पिपासां कण्डूं पारवश्यं जरां दाहं भयं शोकम्।

[मू] तत्तो कसिणसरीरा, बीभच्छा असुइणो सडियदेहा।
नीहरियअंतमाला, भिन्नकवाला लुयंगा य॥१६५॥

[ततः कृष्णशरीरा बीभत्सा अशुचयः शटितदेहाः।
निस्सृतान्त्रमाला भिन्नकपाला लूनाङ्गाश्च॥१६५॥]

[मू] दीणा सव्वनिहीणा, नपुंसगा सरणवज्जिया खीणा।
चिट्ठंति निरयवासे, नेरइया अहव किं बहुणा ?॥१६६॥

[दीनाः सर्वनिहीना नपुंसकाः शरणवर्जिताः क्षीणाः।
तिष्ठन्ति निरयवासे नैरयिका अथवा किं बहुना ?॥१६६॥]

[मू] अच्छिनिमीलणमेत्तं, नत्थि सुहं दुक्खमेव अणुबद्धं।
नरए नेरइयाणं, अहोनिसिं पच्चमाणाणं॥१६७॥

[अक्षिनिमीलनमात्रं नास्ति सुखं दुःखमेवानुबद्धम्।
नरके नैरयिकाणामहर्निशं पच्यमानानाम्॥१६७॥

[मू] तत्थ य सम्मादिट्ठी, पायं चिंतंति वेयणाऽभिहया।
मोत्तुं कम्माइ तुमं, मा रूससु जीव ! जं भणियं॥१६८॥

[तत्र च सम्यग्दृष्टयः प्रायः चिन्तयन्ति वेदनाभिहताः।
मुक्त्वा कर्माणि त्वं मा रुष जीव ! यद् भणितम्॥१६८॥]

[मू] सव्वो पुव्वकयाणं, कम्माणं पावए फलविवागं।
अवराहेसु गुणेसु य, निमित्तमेत्तं परो होइ॥१६९॥

[सर्वः पूर्वकृतानां कर्मणां प्राप्नोति फलविपाकम्।
अपराधेषु च गुणेषु च निमित्तमात्रं परो भवति॥१६९॥]

[मू] धारिज्जइ एंतो जलनिही वि कल्लोलभिन्नकुलसेलो।
न हु अन्नजम्मनिम्मियसुहासुहो देव्वपरिणामो॥१७०॥

[धार्यते आयान् जलनिधिरपि कल्लोलभिन्नकुलशैलः।
न खलु अन्यजन्मनिर्मितशुभाशुभो दैवपरिणामः॥१७०॥]

[मू] अकयं को परिभुंजइ ?, सकयं नासेज्ज कस्स किर कम्मं ?।
सकयमणुभुंजमाणे, कीस जणो दुम्मणो होइ ?॥१७१॥

[अकृतं कः परिभुङ्क्ते ? स्वकृतं नश्येत् कस्य किल कर्म ?।
स्वकृतमनुभुञ्जानः कथं जनः दुर्मना भवति ?॥१७१॥]

[अव] इति पूर्वोक्तप्रकारेण परमाधार्मिकजनिता परस्परोद्दीपिता क्षेत्रानुभावजनिता चेति त्रिविधा वेदना नरके आद्यपृथिवीत्रयलक्षणे परतसु(स्तु) परमाधार्मिकाभावात् तज्जनितां त्यक्त्वा शेषा द्विविधैव। एवं सा द्विविधापि स्वभावेनैवार्वाग्वर्तिन्या अनन्तगुणेति स्वयमकृतं शुभाशुभं कर्म क इह जगति भुङ्क्ते? न कश्चिदित्यर्थः। यद्य(च्च) स्वयमेव कृतं कर्म तदनुभुञ्जानो लोकः किमिति दुर्मना भवति? किं सम्यग् न सहते? इति॥१७१॥

कदा पुनरयमात्मात्मनो दुःखकारणं समित्रं कदा चामित्रमित्याह-

[मू] दुप्पत्थिओ अमित्तं, अप्पा सुप्पत्थिओ हवइ मित्तं।
सुहदुक्खकारणाओ, अप्पा मित्तं अमित्तं वा॥१७२॥

[दुष्प्रस्थितोऽमित्र आत्मा सुप्रस्थितो भवति मित्रम्।
सुखदुःखकारणादात्मा मित्रममित्रं वा॥१७२॥]

[अव] दुःप्रस्थितः = कुमार्गप्रवृत्त आत्मा दुःखकारणत्वादात्मनोऽमित्रम्। मित्रं सुमार्गानुगतश्च सुखकारणत्वादिति॥१७२॥

[मू] वारिज्जंतो वि हु गुरुयणेण तइया करेसि पावाइं।
सयमेव किणियदुक्खो, रूससि रे जीव ! कस्सिण्हिं ?॥१७३॥

[वार्यमाणोऽपि खलु गुरुजनेन तदा करोषि पापानि।
स्वयमेव क्रीतदुःखा रुष्यसि रे जीव ! कस्मै इदानीम् ?॥१७३॥]

[मू] सत्तमियाओ अन्ना, अट्ठमिया नत्थि निरयपुढवि त्ति।
एमाइ कुणसि कूडुत्तराइं इण्हिं किमुव्वयसि ?॥१७४॥

[सप्तमीतस्त्वन्या अष्टमिका नास्ति निरयपृथ्वीति।
एवमादि करोषि कूटोत्तराणीदानीं कथमुद्विजसे ?॥१७४॥]

[मू] इय चिंताए बहु[1] वेयणाहिं खविऊण असुहकम्माइं।
जायंति रायभुवणाइएसु कमसो य सिज्झंति॥१७५॥

[इति चिन्तया बहुवेदनाभिः क्षपयित्वाशुभकर्माणि।
जायन्ते राजभुवनादिकेषु क्रमशश्च सिद्ध्यन्ति॥१७५॥]

---

१. **तह** इति पा. प्रतौ।

[मू] अन्ने अवरोप्परकलहभावओ तह य कोवकरणेणं।
पावंति तिरियभावं, भमंति तत्तो भवमणंतं॥१७६॥

[अन्ये परस्परकलहभावतः तथा च कोपकरणेन।
प्राप्नुवन्ति तिर्यग्भावं भ्रमन्ति ततो भवमनन्तम्॥१७६॥]

दृष्टान्तमाह-

[मू] पाणिवहेणं भीमो, कुणिमाहारेण कुंजरनरिंदो।
आरंभेहि य अघलो, नरयगईए उदाहरणा॥१७७॥

[प्राणिवधेन भीमः कुणपाहारेण कुञ्जरनरेन्द्रः।
आरम्भैश्च अघलो नरकगतेरुदाहरणानि॥१७७॥]

[भीमकथा]

[अव] कथानकं यथा-काम्पिल्यपुरे श्रीदामस्य पद्मावतीजायायाः सुतो भीमः क्रौर्यलौल्यादिदोषाकरः। द्वितीयजायायाः कमलिन्याः सुताश्चत्वारः भानु[१] राम[२] कीर्ति[३]-धनाः[४] कलावन्तो गुणिनश्च। मतिसागरमन्त्री सुश्राद्धस्तस्य सुताश्चत्वारः सुमति[१]-विमल[२] बृहस्पति[३] मतिधनाः[४] गुणिनः कलावन्तश्च। भीमो दुर्दान्तो भान्वादिबन्धून् सुमतिं विना मन्त्रिपुत्राँश्च कुट्टयति। मन्त्रिणा भीमाज्ञाये(मापाये) राज्ञो ज्ञापितेऽपि राज्ञीभयान्नृपो भीमस्य वक्तुं न शक्नोति। अन्यदा भीमोद्विजिता जना रावां कुर्वन्ति। ततो राज्ञा भीमः कुमारभुक्त्या देशे दत्ते प्रेष्यमाणः सुमतिं सहाकारयति। मन्त्र्यपि "वत्स! यदा भीमो नृपं मां च निगृह्णाति तदा त्वया रक्षा कार्या" इति सुमतिमाशिक्षयत्। ततो मन्त्रिबुद्ध्या "वत्स! यदा मां मन्त्रिणं च भीमो निगृह्णाति तदा त्वया रक्षा कार्या" इति सविमलं भानुं बहुरत्नादियुतं राजा देशान्तरे प्रैषीत्। भीमोऽथ देशान् वशीकृत्य काम्पिल्यं च राजानं समन्त्रिणं काष्ठपञ्जरे क्षिप्त्वा नृपोऽभूत्। सुमतिश्च मन्त्री कृतः। भीमो नृपामात्यौ दिधउ(धृतौ?)। सुमतिवाचा सकाष्ठपञ्जरौ भूमध्ये चिक्षेप। तौ च सुमतिः सुरङ्गया स्वगृहं निन्ये रहः। भीमश्च शश्वन्मृगयारतो दस्यून् मारयति। अल्पेऽप्यपराधे हस्तादि छिन्दन् शत्रुग्रामज्वालनादिना दुष्टोऽभूत्।

इतश्च भानुविमलौ भुवि भ्रमन्ताम(व)टव्यां योगिनं विद्या साधयन्तं दृष्ट्वा किमेतदिति पृच्छतुः। योग्याह-"भद्र! मे गुरुदत्तविद्यां साधयतो बहुकालो गतः। विद्यां जप्त्वा बिल्वमग्नौ क्षिप्यते त्रिः, पश्चाद् स्वयं झम्पा दीयते। परं तादृशं सत्त्वं मे न।"

ततो भानुना विद्या मार्गिता। दत्ता च तेन। भानुस्तथा कृत्वा झम्पां कुण्डे ददौ, पृष्ठतो विमलोऽपि। ततो विमानारूढां प्रज्ञप्तीं देवीं पश्यतः स्म। तुष्टा देवी रत्नभृतं विमानमर्प[यत्]ताभ्यां नृपमन्त्री काष्टपञ्जरक्षेपादि चोचे। देव्या भीमो निगृहीतः। भानुर्योगिने रत्नानि ददौ। विमानेन काम्पिल्ये गत्वा विद्याभृच्चक्री जातः।

अन्यदा भानुविमलौ विरक्तौ जनकाद्यनुज्ञाप्य प्रव्रजितौ। भानुश्चतुर्ज्ञानी काम्पिल्ये श्रीदामजनकाग्रे धर्मं दिदेश। नृप आह "भगवन्! भीमस्य मयि मन्त्रिणि च द्वेषः सुमतौ च प्रीतिः कुतः?" ज्ञान्याह-"मगधेषु धनालग्रामेशः सिंहः, दत्तः सेवकः, ऋद्धो कौटुम्बिको, नन्दवत्सावन्योऽन्यप्रीतौ। अन्यदा {दत्त}सिंहेनाभ्याख्यानं दत्त्वा नन्दस्य सर्वा श्रीर्गृहीता। पुनर्वत्सवचनात् प्रत्यर्पिता। सिंहो दत्तश्च महापापेन नरकं गत्वा भवं भ्रान्त्वा त्वं च मन्त्री जातौ। नन्दो भीमः वत्सश्च सुमतिः" इति श्रुत्वा राजा मन्त्री अन्येऽपि च प्रव्रज्य शिवमापुः। भीमस्तु प्राणिवधेन सप्तम्यां नरकं भुवि परमायुर्नारकस्ततश्च सू(भू)रिभवम्। इति प्राणिवधे भीमकथा॥

[कुञ्जरनृपकथा]

कुणिमाहारे कुञ्जरनृपकथा चेयम्-

सिंहपुरे सिंहनृपो विजया राज्ञी चित्रमतिः मन्त्री परमश्राद्धो तत्सङ्गत्या नृपोऽपि परमजैनोऽजनि। एकदा राज्ञाचिन्ति यदि मे पुत्रः स्यात्तदा तं राज्ये न्यस्य प्रव्रजामि। इतश्च राज्ञी स्वोदरात्सर्पं गच्छन्तं राज्ञे(राजानं) दशन्तं च स्वप्नं ददर्श। सा भीता राज्ञे कथयति। राज्ञा किमेतदिति पृष्टो मन्त्र्याह-"राजँस्तव पुत्रो भावि उद्वेगकृत् ततो जातमात्रे पुत्रे सुन्दरभागिनेयं राज्ये न्यस्य प्रव्रज्यते।" पुत्रे जाते कुञ्जर इति नाम दत्त्वा समन्त्री नृपः प्राव्रजत्। कालेन कुञ्जरं राज्ये न्यस्य सुन्दरोऽपि प्राव्रजत्। स च मृगयारतो मांसादिगृद्धः सिरीयकसूपकृत[कृतानि] नानाजीवमांसानि संस्कृत्यान्यत्ति। नृपसूपकृतौ षष्ठपृथिव्यां गतौ। सिंहगिरिचित्रमतिसुन्दराः सिद्धाः। [इति] कुणिमाहारे कुञ्जरराजकथा।

आरम्भे हि अघलो त्ति। तत्कथानकमिदम्-

[अघलकथा]

छगलपुरे छगलिको वणिग् मिथ्यादृष्टिः स्वप्नेऽप्यश्रुतजिनधर्मो महारम्भः।

जो सद्दस्स गहणं काउं विअरइ सया परेसिं वा[१]।
विक्केइ छालिआओ लक्खं गुलिअं च दन्ते अ[२]॥१॥
उक्खलमुसले लोहं, घरट्टनिस्साय सयलसत्थाइं।
चित्तयचम्मं कट्ठं, महुमयणतिल्लाइं वऽन्नाइं॥२॥
विक्किणिइ गिण्हइ सया, करेइ तह मज्जविक्कयं निच्चं।
कारेइ इच्छुवाडं, विढवावइ पोसिइत्थीओ॥३॥
विक्कइ गोमणुआइं, वणसंडे खंडिऊण तह चेव।
खित्तेसु हलसयाइं, वहति तह वाणिउत्तेहिं॥४॥
सगडाइं पवहणाइं, वाहावइ विक्किणेइ[३] इंगाले।
चमरीकेसे समच्छाइआइं[४] विक्किणइ निच्चं पि॥५॥[५] (हेम.मल.वृ.)

एवं महारम्भलोभाभ्यां पापपरं दृष्ट्वा लोकैस्तस्याघल इति नाम दत्तम्। ततो महारम्भपापेन तृतीयनरके उत्कृष्टायुर्नारकोऽजनि। इत्यघलकथा॥१७७॥

[मू] एवं संखेवेणं, निरयगई वन्निया तओ जीवा। पाएण होंति तिरिया, तिरियगई तेणऽओ वोच्छं॥१७८॥

[एवं सङ्क्षेपेण निरयगतिर्वर्णिता ततो जीवाः।
प्रायो भवन्ति तिर्यञ्चस्तिर्यग्गतिः तेनातो वक्ष्ये॥१७८॥]

[अव] एवं सङ्क्षेपेण नरकगतिर्वर्णिता। तत उद्धृता जीवाः प्रायेण तिर्यञ्चः स्युरतो नरकगतिवर्णनानन्तरं तिर्यग्गतिं वक्ष्ये॥१७८॥ इति नरकगतेरवचूरिः॥

अथ यथाप्रतिज्ञातमेवाह-

---

१. **अच्चंतमहामिच्छदिट्ठी वि हु असुयसाहुवयणो वि। जो सुद्धधम्मनगहणं काउं विअरइ परेसुं पि॥** (हेम.मल.वृ.),

२. **तह दूरगयारंभो निच्चमहारंभकरणनिरओ वि। विक्केइ छालिआओ लक्खं गुलिअं च दन्ते या॥** (हेम.मलवृ.), ३. **निक्कसेइ।** मु.अ,मु.क., ४. **पूइसाइए** आ। मु.अ,मु.क.,

५. यः शब्दस्य (शुद्धधर्म) ग्रहणं कृत्वा वितरति परानपि। विक्रीणीते छागिका लाक्षां गुलिकां च दन्तऑश्च॥
उदूखलमुशलान् लोहं घरट्टनिस्साहसकलशस्त्राणि। चित्रकचर्म काष्ठं मधुमदनतिलानि वान्यानि॥
विक्रीणीते गृह्णाति सदा करोति तथा मद्यविक्रयं नित्यम्। कारयतीक्षुवाटिकान् अर्जयति पोष्यस्त्रियः॥
विक्रीणीते गोमनुजादीन् वनखण्डान् खण्डयित्वा तथा चैव। क्षेत्रेषु हलशतानि वहति तथा वणिक्पुत्रैः॥
शकटानि प्रवहणानि वाहयति विक्रीणीते अङ्गारान्। चमरीकेशान् समत्स्यादिकानि विक्रीणीते नित्यमपि॥

[मू] एगिंदियविगलिंदियपंचिं(चें)दियभेयओ तहिं जीवा।
परमत्थओ य तेसिं, सरूवमेवं विभावेज्जा॥१७९॥

[एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियभेदतस्तत्र जीवाः।
परमार्थतश्च तेषां स्वरूपमेवं विभावयेत् ॥१७९॥]

[अव] एकेन्द्रियाः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायरूपाः। विकलेन्द्रियाः द्वित्रिचतुरिन्द्रियभेदात्त्रेधा। तत्र

कृमिशङ्खमाटवहनादयो द्वीन्द्रियाः। कुन्थुपिपीलिकादयस्त्रीन्द्रियाः। वृश्चिकादयश्चतुरिन्द्रियाः। पञ्चेन्द्रिया द्विधा सम्मूर्च्छिमा गर्भजाश्च। आद्या दर्दुरादयः, अपरे गवादयः। तेषां च सुखदुःखमधिकृत्य स्वरूपमेवं परमार्थतो विभावयेत् = चिन्तयेदित्यर्थः॥१७९॥

किं पुनस्तत्स्वरूपमित्याह-

[मू] पुढवी फोडणसंचिणणहलमलणखणणाइदुत्थिया निच्चं[१] ।
नीरं पि पियणतावणघोलणसोसाइकयदुक्खं॥१८०॥

[पृथ्वीस्फोटनसञ्चयनहलमर्दनखननादिदुःस्थिता नित्यम्।
नीरमपि पानतापनघोलनशोषादिकृतदुःखम्॥१८०॥]

[मू] अगणी खोट्टणचूरणजलाइसत्थेहिं दुत्थियसरीरो।
वाऊ वीयणपिट्टणऊसिणाणिलसत्थकयदुत्थो[२] ॥१८१॥

[अग्निः सन्धुक्षणचूर्णनजलादिशस्त्रैः दुःखितशरीरः।
वायुः वीजनपिट्टनोष्णानिलशस्त्रकृतदौस्थ्यः॥१८१॥]

[मू] छेअणसोसणभंजणकंडणदढदलणचलणमलणेहिं।
उल्लूरणउम्मूलणदहणेहि य दुक्खिया तरुणो॥१८२॥

[छेदनशोषणभञ्जनकण्डनदृढदलनचरणमर्दनैः।
उत्कर्तनोन्मूलनदहनैश्च दुःखितास्तरवः॥१८२॥]

[अव] तदेवमेते पृथिव्यादयः स्फोटनादिदुःस्थिता निश्चयतः सदैव दुःखिता एव। व्यवहारतस्तु चिन्तामण्यादीन् पूज्यमानान् दृष्ट्वा कश्चित् तत्त्वावेदी सुखितानप्येतान् मन्यते इति **परमत्थओ य तेसिं** इत्युक्तम्।

---

१. अत्र मात्राधिक्यं प्रतीयते।, २. **दुक्खो** इति पा. प्रतौ।

[मू] गोला होंति असंखा, होंति निगोया असंखया गोले।
एक्केक्को य निगोदो, अणंतजीवो मुणेयव्वो॥१८३॥

[गोलका भवन्त्यसङ्ख्या भवन्ति निगोदा असङ्ख्यका गोले।
एकैकश्च निगोदोऽनन्तजीवो ज्ञातव्यः॥१८३॥]

[अव] असङ्ख्येयानां जीवसाधारणशरीराणां समानावगाहावगाढानां समुदायो गोलक इत्युच्यते। **हुन्तो ति (होंति त्ति)।** अनन्तानां जीवानां साधारणं शरीरमेव निगोद इत्युच्यते। ते चैवम्भूता निगोदा एकैकस्मिन् गोलकेऽसङ्ख्येया भवन्ति। एकैकश्च निगोदोऽनन्ता जीवा यत्रासावनन्तजीवो मन्तव्यः। एते च गोला द्विविधाः। सूक्ष्मा बादराश्च। तत्र सूक्ष्माः प्रत्येकमङ्गुलासङ्ख्येयभाग-मात्रावगाहिनोऽसङ्ख्ये-याश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकेऽपि लोके निरन्तरं भवन्ति। बादरा अपि बृहत्तराङ्गुलास-ङ्ख्येय-भागमात्रावगाहिनोऽसङ्ख्येयाः पृथिव्यादिमात्राश्रिता भवन्ति। सेवालसूरणा-र्द्रकादिका मन्तव्याः। अत एवैते सर्वे लोके न भवन्ति. मृत्तिकाजलाद्यभावे तेषामसम्भवाद्। अत्र बहुवक्तव्यता सा ग्रन्थगहनताप्रसङ्गात् नोच्यते॥१८३॥

एते च निगोदाः सूक्ष्मा बादराश्चान्तर्मुहूर्तायुष एव भवन्ति। अस्य चान्त-मुहूर्तस्यासङ्ख्येयभेदास्तत्र षट्पञ्चाशदधिकावलिकाशतद्वयमाने क्षुल्लकभवग्रहण-मप्यायुर्बहूनामप्येतेषां भवतीत्याह-

[मू] एगोसासम्मि मओ, सतरस वाराउऽणंत[1] खुत्तो वि।
खोल्लगभवगहणाऊ, एएसु निगोयजीवेसु॥१८४॥

[एकोच्छ्वासे मृतः सप्तदश वारा अनन्तकृत्वोऽपि।
क्षुल्लकभवग्रहणायुः एतेषु निगोदजीवेषु॥१८४॥]

[अव] एतेषु निगोदजीवेषु परिवसन् जीवोऽत्र नीरोगस्वस्थसम्बन्धिन्येक-स्मिन्नुच्छ्वासनिःश्वासे क्षुल्लकभवग्रहणायुः सप्तदशवारान् मृत एकोच्छ्वासनिःश्वासे स्थूलमाने एतावतां क्षुल्लकभवग्रहणानां भावात्सूक्ष्मेक्षितया चागमादेरवसेयम्। कियतीर्वारास्तत्रैव पुनः पुनः सत्येवेत्थं मृतः। अनन्तकृत्वोऽप्य-नन्तशोऽयप्यनन्तवारा अपीत्यर्थः॥१८४॥

---

१. **वारा अणंत** इति पा. प्रतौ।,

एतेष्वेकेन्द्रियेषु जीवा यथोत्पद्यन्ते तथा दर्शयन्नाह-

[मू] पुत्ताइसु पडिबद्धा, अन्नाणपमायसंगया जीवा।
उप्पज्जंति धणप्पियवणिउव्वेगिंदिएसु बहुं॥१८५॥

[पुत्रादिषु प्रतिबद्धा अज्ञानप्रमादसङ्गता जीवाः।
उत्पद्यन्ते धनप्रियवणिगिव एकेन्द्रियेषु बहु॥१८५॥]

[धनप्रियवणिक्कथा]

[अव] कथा चेयम्–कुशार्त्तदेशे शौर्यपुरे धनप्रियस्तज्जाया धनवती तयोर्जम्बूदेवताराधनेन पुत्रो जातः। परं सर्परूपस्ततो धनप्रियः पुनर्धनवती च देवीमाराध्याह-"किमेतत्?" साह-"तव प्राग्भवे भार्यया सपत्न्या रत्नमपहृतं विंशतिप्रहरान्ते च प्रत्यर्पितम्, तत्कर्मणा सपत्न्या व्यन्तर्या सर्पीकृतः, विंशतिवर्षान्ते पुंरूपो भावीति।" श्रेष्ठी दुग्धपानकरण्डप्रक्षेपादिना पालयति। विंशतिवर्षान्ते पुंरूपो जम्बूदत्त इति नाम कृतम्। नागश्रीकन्यां परिणायितः। चत्वारोऽस्य पुत्रा जाताः। क्रमेण परिणायिताश्च। धनप्रियं विना सर्वे जिनधर्मवासिताः। प्रव्रज्य जम्बूदत्तः सजायः सिद्धः। अन्ये स्वर्जग्मुः। धनप्रियस्तद्वियोगार्तो धर्ममजानन् [अ]श्रद्दधानो महामोहमूढः

मह पुत्ता मह लच्छी, मह गेहिणी गेहमाईआ।
इच्चाइअ अट्टवसट्टमणो मरिउं एगिंदिएसु गओ॥[१] (हेम.मल.वृ.)

ततोऽनन्तभवं भ्रान्तः। इति धनप्रियकथा॥१८५॥

उक्ताः सोदाहरणा एकेन्द्रियाः। अथ विकलेन्द्रियस्वरूपमाह-

[मू] विगलिंदिया अवत्तं, रसंति सुन्नं भमंति चिट्ठंति।
लोलंति घुलंति लुढंति जंति निहणं पि छुहवसगा॥१८६॥

[विकलेन्द्रिया अव्यक्तं रसन्ति शून्यं भ्राम्यन्ति तिष्ठन्ति।
लोलन्ति घुलन्ति लुठन्ति यान्ति निधनमपि क्षुद्रशगाः॥१८६॥]

[अव] विकलेन्द्रियाः = द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः कृमिशङ्खकीटिकाभ्रमरादयः करणपाटवाभावादव्यक्तं रसन्ति = शब्दयन्ति, मनसोऽभावादप्रेक्षापूर्वकारितया शून्यमेव भ्रमन्ति। कदाचिदेकस्थाने एव तिष्ठन्ति। कर्दमादौ लोलन्ति घुलन्ति = निम्नोन्नतादौ लुठन्ति। क्षुधार्ता घृततैलादिषु पतिता विनाशमपि यान्तीत्यर्थः॥१८६॥

१. मम पुत्रा मम लक्ष्मीर्मम गृहिणी गृहादीनि। इत्यादिरावर्तवशार्तमनो मृत्वैकेन्द्रियेषु गतः ॥

यैर्हेतुभिरेतेषु जीवेषु भ्रमन्ति तान् सोदाहरणान् प्राह-

[मू] जिणधम्मुवहासेणं, कामासत्तीइ हिययसढयाए।
उम्मग्गदेसणाए, सया वि केलीकिलत्तेण॥१८७॥

[जिनधर्मोपहासेन कामासक्त्या हृदयशठतया।
उन्मार्गदेशनया सदापि केलीकीलत्वेन॥१८७॥]

[मू] कूडक्कय अलिएणं, परपरिवाएण पिसुणयाए य।
विगलिंदिएसु जीवा, वच्चंति पियंगुवणिओ व्व॥१८८॥

[कूटक्रयालीकेन परपरिवादेन पिशुनतया च।
विकलेन्द्रियेषु जीवा व्रजन्ति प्रियङ्गुवणिगिव॥१८८॥]

[अव] सुगमे।

[प्रियङ्गुवणिक् कथा]

कथानकं चेदम्–पोतनपुरे प्रियङ्गुवणिग् मिथ्यात्वी जिनधर्मोपहासि प्रियमरि(ती) भार्यायामत्यासक्तः। असत्यवादित्वपैशून्यादिदोषः, नास्तिकमताश्रित-स्तत्पुत्रो देवदत्तः। सुरसुन्दरश्रेष्ठिसुता सरस्वती। अन्येऽपि च लेखशालायां पठन्ति। अन्यदा पण्डितं भार्यां कुट्टयन्तं दृष्ट्वा छात्रा निवारयन्ति। सरस्वती तु "त्वं किमुदासीना?" इति देवदत्तेन पृष्टा साह-"सा किं महिला भण्यते? यस्याः पादौ भर्ता दास इव न घट्टयति आपद्गतं भर्तुः साहाय्यं च न विधत्ते" इति श्रुत्वाचिन्ति–नूनमियं गर्विता तदिमां विवाह्य त्यक्ष्यामि येन गर्वफलं लभते। तदभिप्रायस्तयापि ज्ञातः। समये सा तेन विवाह्य त्यक्ता। अन्यदा धनार्जनाय देवदत्तः परद्वीपे गतस्तत्रैका परिव्राजिका कुटबुद्धिनिपुणा वैदिशिकेभ्यो वञ्चनेन बहुस्वर्णकोटिमती राजमान्यास्ति। तद्बुद्ध्या राजारीन् जयति। एकदा भोजनार्थमामन्त्रितो देवदत्तस्तया तद्गृहे गतः। तया च स्वजनपार्श्वात् छद्म तदुत्तारके स्वर्णकुम्भः स्थापितः। तस्मिन् भुक्त्वा स्वस्थानं गते पृष्ठौ तया जनः प्रहितः। प्राह–"एकस्वर्णकुम्भो नष्टस्त्वज्जनैर्गृहीतः तव स्थानेऽस्ति समर्प्यताम्।" स प्राह–"नास्त्यत्र" विवादे सा प्राह–"यदि त्वत्स्थाने न स्यात् तदाहं सर्वस्वं तेऽर्पयामि दासीभवामि च। यदा स त्वत्स्थाने स्यात् तदा तव सर्वस्वं गृह्णामि, त्वां च दासी करोमि च" नृपाद्याः साक्षिणः। प्राप्ते स्वर्णकुम्भे तयात्तं सर्वस्वं न्यस्तश्च दासत्वे। दुःखितेन तेन पितुः स्वरूपं ज्ञापितम्। स दुःखी जातः। सरस्वत्या दुःखहेतुः पृष्टः स प्राह

यथास्थिततद्वृत्तान्तम्। साह–"मा विषादीः, सा (माम्) पुंवेषेण तत्र प्रेषय यथा सर्वं स्वस्थं स्यात्।" प्रतिपन्नं तेन। बहुपण्यभृतं पोतं लात्वा नृवेषागता सा तत्र। तथैव निमन्त्रितो भोजनाय परिव्राजिकया। तथैव स्वर्णदेवी स्थापिता। तदुत्तारके दृष्टा च सरस्वती नियुक्तछद्मनरैः सा। क्षिप्तस्तैस्तदाज्ञया रहस्तस्या एव गृहे। तथैव विवदने शोधनेन लब्धा सा सर्वा श्रीः सरस्वत्यात्ता। दासीकृतं परिव्राजकादि। तस्याः पादौ देवदत्तस्तलघट्टयति। सर्वां श्रियं गृहीत्वा नृपोपरोधात् परिव्राजिकां मुक्त्वा सदेवदत्ता स्वपुरं गता। स्वगृहे स्वं रूपं प्रकाश्य भर्तुः पादलग्ना क्षामयति स्म। "स्वामिन्! अनुजानीहि माम्, दीक्षां गृह्णामि, पूर्णो मेऽवधिः, बाल्यादपि विरक्ताहं प्रजन्तेछुः(प्रव्रज्येप्सुः), अनादिभवाभ्यस्तेन स्त्रीत्वसुलभेन चापलेन मयैवैतावत्कृतम्" तद्वचसा सोऽपि विरक्तः। पित्रा निवार्यमाणोऽपि सजायः प्रव्रज्य स्वरगात्। पिता तु जिनधर्मोपहास्यादिदोषदुष्टो विकलेन्द्रियेषु भवं बम्भ्रमीति। इति प्रियङ्गुवणिक्कथा॥१८८॥

उक्ताः सोदाहरणाः विकलेन्द्रियाः। अथ पञ्चेन्द्रियानधिकृत्याह-

[मू] पंचिंदियतिरिया वि हु, सीयायवतिव्वछुहपिवासाहिं।
अन्नोऽन्नगसणताडणभारुव्वहणाइसंतविया॥१८९॥

[पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोऽपि खलु शीतातपतीव्रक्षुत्पिपासाभिः।
अन्योऽन्यग्रसनताडनभारोद्वाहनादिसन्तापिताः॥१८९॥]

[अव] पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोऽपि, न केवलम् एकेन्द्रिया इत्यपिशब्दार्थस्तेन जलचरस्थलचरखेचरभेदात् त्रिधा॥१८९॥

तत्र व्यवहारे प्रायः स्थलचरखरवृषभादय उपयुज्यन्ते। अतस्तानधिकृत्याह-

[मू] पिट्ठं घट्ठं किमिजालसंगयं परिगयं च मच्छीहिं।
वाहिज्जंति तहा वि हु, रासहवसहाइणो अवसा॥१९०॥

[पृष्ठं घृष्टं कृमिजालसङ्गतं परिगतं च मक्षिकाभिः।
वाह्यन्ते तथापि खलु रासभवृषभादय अवशाः॥१९०॥]

[मू] वाहेऊण सुबहुयं, बद्धा कीलेसु छुहपिवासाहिं।
वसहतुरगाइणो खिज्जिऊण सुइरं विवज्जंति॥१९१॥

[वाहयित्वा सुबहुकं बद्धाः कीलेषु क्षुत्पिपासाभ्याम्।
वृषभतुरगादयः खित्त्वा सुचिरं विपद्यन्ते॥१९१॥]

[मू] आराकसाइघाएहिं ताडिया तडतड त्ति फुट्टंति[१] ।
अणवेक्खियसामत्था, भरम्मि वसहाइणो जुत्ता॥१९२॥

[आराकशादिघातैस्ताडितास्तड्तडिति स्फुटन्ति।
अनपेक्षितसामर्थ्या भारे वृषभादयो युक्ताः॥१९२॥]

[अव] सुगमा॥१९२॥ सोदाहरणमाह-

[मू] धणदेवसेट्ठिवसहो, कंबलसबला य एत्थुदाहरणं।
भरवहणखुहपिवासाहि दुक्खिया मुक्कनियजीवा॥१९३॥

[धनदेवश्रेष्ठिवृषभः कम्बलशम्बलौ चात्रोदाहरणम्।
भारवहनक्षुत्पिपासाभिर्दुःखितौ मुक्तनिजजीवौ॥१९३॥]

[अव]

[धनदेवश्रेष्ठिवृषभकथा]

धनदेवश्रेष्ठिवृषभः पञ्चशतशकटानि वालुका उत्तार्य त्रुटितो मृतः। शूलपाणिर्यक्षो जातः। इति धनदेववृषभकथा।

मथुरावासी कुमारब्रह्मचारी अर्हद्दासीभर्तृतादृग्जिनदासश्रेष्ठिनः आभीरमित्रार्पितौ कम्बलशम्बलौ वृषभौ जिनधर्ममाराध्य सुरौ जातौ। विस्तरस्तु धर्मरत्नवृत्तेः कथा ज्ञेया॥१९३॥

अथ महिषमधिकृत्याह सोदाहरणम्-

[मू] निद्दयकसपहरफुडंतजंघवसणाहि[२] गलियरुहिरोहा।
जलभरसंपूरियगुरुतडंगभज्जंतपिट्ठंता॥१९४॥

[निर्दयकशाप्रहारस्फुटज्जङ्घावृषणेभ्यो गलितरुधिरौघाः।
जलभरसम्पूरितगुरुतडगभज्यमानपृष्ठान्ताः॥१९४॥]

[मू] निग्गयजीहा पगलंतलोयणा दीहरच्छियग्गीवा।
वाहिज्जंता महिसा, पेच्छसु दीणं पलोयंति॥१९५॥

[निर्गतजिह्वाः प्रगलल्लोचना दीर्घाकृष्टग्रीवाः।
वाह्यमानाः महिषाः प्रेक्षस्व दीनं प्रलोकन्ते॥१९५॥]

---

१. **तुट्टंति** इति पा. प्रतौ। २. **सगाहिं** मु.अ.।

[मू] विहियपमाया केवलसुहेसिणो चिन्नपरधणा विगुणा।
वाहिज्जंते महिसत्तणम्मि जह खुड्डओ विवसो॥१९६॥

[विहितप्रमादाः केवलसुखैषिणः चीर्णपरधना विगुणाः।
वाह्यन्ते महिषत्वे यथा क्षुल्लको विवशः॥१९६॥]

[क्षुल्लककथा]

[अव] कथानकं चेदम्–वसन्तपुरे देवप्रियः श्रेष्ठी। यौवने भार्या मृता। पुत्रेणाष्टवार्षिकेण प्रव्रजितः। इतश्च स क्षुल्लकः परिषहैर्बाध्यमानो वक्ति–"तात! न शक्नोमि उपानहौ विना प्रव्रजितुम्" मोहेन पिता ते अनुजानाति। पुनर्वक्ति–"तात! न शक्नोमि शीर्षे सोढुमातपम्" पिता शीर्षे छत्रमनुजानाति। पुनर्वक्ति–"तात! न शक्नोमि भिक्षाटनं कर्त्तुम्" ततः पिता आनीय दत्ते। एवं भूमौ न संस्तारयितुं शक्नोति। ततः पिता काष्टफलकमर्पयति। एवं लोचस्थाने क्षौरं कारयति। प्रक्षालयत्यङ्गं प्रासुकनीरेण। पुनर्वक्ति–"तात! न शक्नोमि ब्रह्मव्रतं पालयितुम्।" ततोऽयोग्योऽयमिति पित्रा निष्कासितः। मृत्वा महिषो जातः। पिता चारित्रमाराध्य देवो जातः। अवधिना सुतं महिषं पश्यति। सार्थवाहरूपं कृत्वा तं महिषं गुरुभारं वाहयन्–"तात न शक्नोमि" इत्यादि पूर्वभवोक्तं पुनः पुनः कथयन् स्मारयति। तस्य जातिस्मरणमुत्पन्नम्। गृहीतानशनो महिषो मृत्वा वैमानिकदेवो जातः। इति क्षुल्लककथा॥१९६॥

[मू] काउं कुडुंबकज्जे, समुद्दवणिओ व्व विविहपावाइं।
मारेउं महिसत्ते, भुंजइ तेण वि कुडुंबेण॥१९७॥

[कृत्वा कुटुम्बकार्याणि समुद्रवणिगिव विविधपापानि।
मारयित्वा महिषत्वे भुज्यते तेनापि कुटुम्बेन॥१९७॥]

[अव]

[समुद्रवणिक्कथा]

कथा चेयम्–ताम्रलिप्त्यां समुद्रवणिग् महारम्भपरिग्रहो बहुला भार्या। महेश्वरदत्तः सुतः गङ्गिला भार्या। समुद्रवणिग् महारम्भपरिग्रहो बहुपापानि कृत्वा महिषो जातः। बहुला मृत्वा तत्रैव शुनी जाता। गङ्गिला स्वैरिणी कुशीला अन्यदा रात्रौ तां भुक्त्वा कश्चिद्विटो गच्छन् महेश्वरदत्तेन दृष्टो हतो मृत्वा गङ्गिलायाः सुतो जातः। जातोऽष्टवार्षिकः। अन्यदा पितुः संवत्सरदिने तेन पितृजीव एवं महिषो विनाशितः। स

भोक्तुमुपविष्टः उत्सङ्गे सुतं मुक्त्वा। शुनी गृहद्वारे तिष्ठति। इतस्तत्र ज्ञानी मुनिर्भिक्षार्थमागतस्तत्स्वरूपं ज्ञात्वा भिक्षामलात्वा निर्गतः। स पृष्ठौ गतः। पृच्छति–"भिक्षां किं न गृहीता?" स आह–"असमञ्जसं दृष्ट्वा।" "किं तत्?।" स आह–"पितुर्मांसं त्वया भक्ष्यते, माता शुनी, वैरी उत्सङ्गे निवेशितः।" स आह–"कथमेतत्?।" ज्ञानी यथास्थितं प्रोचे। महेश्वरदत्तो दीक्षां लात्वा स्वरगात्। इति समुद्रवणिक्कथा॥१९७॥

अथोष्ट्रमधिकृत्याह-

[मू] उयरे उंटकरंकं, पट्ठीए भरो गलम्मि कूवो य।
उज्झं मुंचइ पोक्करइ, तहा वि वाहिज्जए करहो॥१९८॥

[उदरे औष्ट्रकरङ्कं पृष्ठे भारो गले कूपश्च।
ऊर्ध्वं मुञ्चति पूत्करोति तथापि वाह्यते करभः॥१९८॥]

[मू] नासाएँ समं उट्ठं, बंधेउं सेल्लियं च खिविऊण।
लज्जूए अ खिविज्जइ, करहो विरसं रसंतोऽवि॥१९९॥

[नासिकया सममोष्ठं बद्ध्वा शैलकं च क्षिप्त्वा।
रज्ज्वा च क्षिप्यते करभो विरसं रसन्नपि॥१९९॥]

[मू] गिम्हम्मि मरुत्थलवालुयासु जलणोसिणासु खुप्पंतो।
गरुयं पि हु वहइ भरं, करहो नियकम्मदोसेण॥२००॥

[ग्रीष्मे मरुस्थलवालुकासु ज्वलनोष्णासु मज्जन्।
गुरुकमपि खलु वहति भारं करभो निजकर्मदोषेण॥२००॥]

[अव] सुगमा। नवरं यो गलिरुष्ट्रो भवेत् स क्षिप्तभारमार्गे प्रस्थितानामुपविशति ततस्तस्योदरेऽतितीक्ष्णास्थिसङ्घातरूपमुष्ट्रकलेवरं बध्यते। तेन बद्धेन दूयमान उपवेष्टुं न शक्नोति गले च घृतादिकुतपो बध्यते॥२००॥

केन च पुनः कर्मणा जन्तवः करभेषु जायन्ते? तदाह-

[मू] जिणमयमसद्दहंता, दंभपरा परधणेक्कलुद्धमणा।
अंगारसूरिपमुहा, लहंति करहत्तणं बहुसो॥२०१॥

[जिनमतमश्रद्दधाना दम्भपराः परधनैकलुब्धमनसः।
अङ्गारसूरिप्रमुखा लभन्ते करभत्वं बहुशः॥२०१॥]

[अव] सुगमा। कथा चेयं प्रसिद्धत्वान्न लिखिता॥२०१॥

अथ पशुमधिकृत्याह-

[मू] जीवंतस्स वि उक्किंत्तिउं छविं छिंदिऊण मंसाइं।
खद्धाइं जं अणज्जेहिं पसुभवे किं न तं सरसि[१] ?॥२०२॥

[जीवतोऽप्युत्कृत्य छविं छित्त्वा मांसानि।
खादितानि यदनार्यैः पशुभवे किं न त्वं स्मरसि ?॥२०२॥]

[अव] कोऽप्यात्मीयं जीवमनुशास्ति। अनादिसंसारं परिभ्रमतो हन्त यत्पशुभवे जीवतोऽप्युत्कृत्य छित्त्वा मांसान्यनार्यैर्मांसभक्षणशीलैर्मांसानि भक्षितानि तत् किं न स्मरसि? नन्वागमश्रद्धावान् स्मरैतत्स्मृत्वा तथा कुरु यथा पुनरपि पशुत्वं न प्राप्नोति भावः॥२०२॥

अपरामप्यनुशास्तिगाथामाह-

[मू] गलयं छेत्तूणं कत्तियाइ उल्लंबिऊण पाणेहिं।
घेत्तु तुह चम्ममंसं, अणंतसो विक्किकयं तत्थ॥२०३॥

[गलं छित्त्वा कर्तितानि उल्लम्ब्य पाणैः[२]।
गृहीत्वा तव चर्ममांसमनन्तशो विक्रीतं तत्र॥२०३॥]

[अव] सुगमा॥२०३॥

[मू] दिन्नो बलीए तह देवयाण विरसाइं बुब्बुयंतो वि।
पाहुणयभोयणेसु य, कओ सि तो पोसिउं बहुसो॥२०४॥

[दत्तो बलौ तथा देवतानां विरसानि विब्रुवन्नपि)।
प्राघुर्णकभोजनेषु च कृतोऽसि तथा पोषयित्वा बहुशः॥२०४॥]

[मू] धम्मच्छलेण केहिं, वि अन्नाणंधेहिं मंसगिद्धेहिं।
निहओ निरुद्धसद्दो[३], गलयं वलिऊण जन्नेसु॥२०५॥

[धर्मच्छलेन कैरपि अज्ञानान्धैः मांसगृद्धैः।
निहतो निरुद्धशब्दो गलं वलित्वा यज्ञेषु॥२०५॥]

[अव] कैश्चिदित्यनार्यैर्वेदवचनवासितैर्विप्रैर्मांसभक्षणगृद्धैरजानां मुखं भृत्वा बद्ध्वा च निरुद्धशब्दो ग्रीवां वालयित्वा यज्ञेषु निहतोऽसीति॥२०५॥

---

१. **संभरसि** इति पा. प्रतौ।, २. पाणैः = शौनिकैः ।, ३. **'सत्तो ग'** मु. अ.।

किमिति पशुभवेऽनार्यैर्भक्षितः? किमर्थं च बलिविधानेषु दत्तः? इत्याह-

[मू] ऊरणयछगलगाई, निराउहा नाहवज्जिया दीणा।
भुंजंति निग्घिणेहिं, दिज्जंति बलीसु य न वग्घा॥२०६॥

[ऊरणकछगलकादयो निरायुधा नाथवर्जिता दीनाः।
भुज्यन्ते निर्घृणैः दीयन्ते बलिषु न च व्याघ्राः॥२०६॥]

[अव] ऊरणको = गड्डरको लोकरूढछगल आदिशब्देन हरिणशशकादिपरिग्रहः। एत एवं निर्घृणैर्भुज्यन्ते। अत एव बलिषु दीयन्ते। कुत इत्याह–यतो निरायुधा नाथवर्जिता दीनाश्च, न तु व्याघ्रसिंहादयः, तस्य नखदंष्ट्राद्यायुधत्वात् स्वयमपि महापराक्रमत्वेन भयजनकत्वादिति॥२०६॥

अथ पशुघातस्तेषां पुरस्तादनन्तफल इत्याह-

[मू] पसुघाएणं नरगाइएसु आहिंडिऊण पसुजम्मे।
महुविप्पो व्व हणिज्जइ, अणंतसो जन्नमाईसु॥२०७॥

[पशुघातेन नरकादिषु आहिण्ड्य पशुजन्मनि।
मधुविप्र इव हन्यतेऽनन्तशो यज्ञादिषु॥२०७॥]

[अव] गतार्था।

[मधुविप्रकथा]

कथा चेयं ज्ञातव्या–राजगृहे नगरे मधुविप्रो यज्ञकर्मकरः। अजादीन् हत्वा महापापानि कृत्वा, मृत्वा नरकं गतः। पुनरजो जातः। यज्ञे हतो मृतः। पुनरजो यज्ञे यज्ञे हतो मृत्वा अजोऽजनिः। एवं प्रभूता भवा भ्रमिताः। एकदा यज्ञे हन्यमानः केवलिना स्मारितः पूर्वभवान्। गृहीतानशनो देवो जातः। इति मधुविप्रकथा॥२०७॥

अथ हरिणमधिकृत्याह-

[मू] रन्ने दवग्गिजालावलीहिं सव्वंगसंपलित्ताणं।
हरिणाण ताण तह[1] दुक्खियाण को होइ किर सरणं ?॥२०८॥

[अरण्ये दवाग्निज्वालावलिभिः सर्वाङ्गसम्प्रदीप्तानाम्।
हरिणानां तेषां तथा दुःखितानां को भवति किल शरणम् ?॥२०८॥]

---

१. **'सह दु'** मु.अ.

[अव] गतार्था॥२०८॥

तमेव अधिकृत्यानुशास्तिमाह-

[मू] निद्दयपारिद्धियनिसियसेल्लनिब्भिन्नखिन्नदेहेण।
हरिणत्तणम्मि रे ! सरसु जीव ! जं विसहियं दुक्खं॥२०९॥

[निर्दयपापर्धिकनिशितशरनिर्भिन्नखिन्नदेहेन।
हरिणत्वे रे ! स्मर जीव ! यद् विषोढं दुःखम्॥२०९॥]

[मू] बद्धो पासे कूडेसु निवडिओ वागुरासु संमूढो।
पच्छा अवसो उक्कत्तिऊण कह कह न खद्धो सि ?॥२१०॥

[बद्धः पाशे कूटेषु निपतितो वागुरासु सम्मूढः।
पश्चादवश उत्कर्त्य कथं कथं न खादितोऽसि॥२१०॥]

[मू] सरपहरवियारियउयरगलियगब्भं पलोइउं हरिणिं।
सयमवि य पहरविहुरेण सरसु जह[1] जूरियं हियए॥२११॥

[शरप्रहारविदारितोदरगलितगर्भां प्रलोक्य हरिणीम्।
स्वयमपि च प्रहारविधुरेण स्मर यथा खिन्नं हृदये॥२११॥]

[मू] मायावाहसमारद्धगोरिगेयज्झुणीसु मुज्झंतो।
सवणावहिओ अन्नाणमोहिओ पाविओ निहणं॥२१२॥

[मायाव्याधसमारब्धगौरीगेयध्वनिषु मुह्यन्।
श्रवणावहितोऽज्ञानमोहितः प्राप्तो निधनम्॥२१२॥]

[मू] दट्ठूण कूडहरिणिं, फासिंदियभोलिओ तहिं गिद्धो।
विद्धो बाणेण उरम्मि घुम्मिउं निहणमणुपत्तो॥२१३॥

[दृष्ट्वा कूटहरिणीं स्पर्शेन्द्रियमुग्धः तत्र गृद्धः।
विद्धो बाणेन उरसि घर्णित्वा निधनमनुप्राप्तः॥२१३॥]

[मू] चित्तयमइंदकमनिसियनहरखरपहरविहुरियंगस्स।
जह तुह दुहं कुरंगत्तणम्मि तं जीव ! किं भणिमो ?॥२१४॥

[चित्रकमृगेन्द्रक्रमनिशितनखरखरप्रहारविधुरिताङ्गस्य।
यथा तव दुःखं कुरङ्गत्वे तद् जीव ! किं भणामः ?॥२१४॥]

---

१. **'नहु जू'** मु. अ.।

[अव] निद्दय. इत्यादि गाथा सुगमा। नवरं मायाप्रधानो व्याधो मायाव्याधः। **कूटहरिणिं ति।** इह किल आखेटिका स्वयं वृक्षाद्यन्तरिताः प्रलम्बातिसूक्ष्मां दवरिकां बद्ध्वा निजहरिणीमटव्यां हरिणानुद्दिश्य मुञ्चन्ति। तां दृष्ट्वेत्यर्थः॥२१४॥

[मू] वइविवरविहियझंपो, गत्तासूलाइ निवडिओ संतो।
जवचणयचरणगिद्धो, विद्धो हिययम्मि सूलाहिं[1] ॥२१५॥

[वृतिविवरविहितझम्पो गर्ताशूलया निपतितः सन्।
यवचनकचरणगृद्धो विद्धो हृदये शूलाभिः॥२१५॥]

[अव] इह कस्मिँश्चिद्देशे यवचणकक्षेत्राणि हरिणाश्चरन्ति। तद्रक्षार्थम् उच्चा घनाश्च वृत्तयः क्रियन्ते। क्वचिदप्येकस्मिन् प्रदेशे किञ्चिन्नीचैस्तरां कुर्वन्ति अभ्यन्तरे चाधः सङ्कीर्णा उपरिविशाला मध्यनिखाता अतितीक्ष्णा खादिरकीलकरूपशूलिकागर्त्ताः खनन्ति। तेषु च नीचवृत्तिरूपेषु वृत्तिविवरेषु आगत्य परमार्थमजानानाः केऽपि मुग्धहरिणा झम्पां दत्त्वा प्रविशन्ति। ततस्तैर्व्याधैर्विद्धो भक्षितश्चेति॥२१५॥]

अपरं च मत्ताश्च हरिणाः किल शृङ्गाद्याघातैर्वृक्षानाघ्नन्तः परिभ्रमन्ति। ततः कस्मिँश्चिद्वंशजाल्यादौ गुम्पितवृक्षे विलग्नशृङ्गा विलपन्तो म्रियन्ते इति दर्शयति-

[मू] मत्तो तत्थेव य नियपमायओ निहयरुक्खगयसिंगो।
सुबहुं वेल्लंतो जं, मओऽसि तं किं न संभरसि ?॥२१६॥

[मत्तस्तत्रैव च निजप्रमादतो निहितवृक्षगतशृङ्गः।
सुबहु वेल्लन् यद् मृतोऽसि तत् किं न स्मरसि ?॥२१६॥]

[अव] गतार्था। नवरं तत्रैव हरिणजन्मनि॥२१६॥

[मू] गिम्हे कंताराइसु, तिसिओ माइण्हियाइ[2] हीरंतो।
मरइ कुरंगो फुट्टंतलोयणो अहव थेवजले॥२१७॥

[ग्रीष्मे कान्तारादिषु तृषितो मृगतृष्णया ह्रियमाणः।
म्रियते कुरङ्गः स्फुटल्लोचनोऽथवा स्तोकजले॥२१७॥]

[मू] हरिणो हरिणीऍ कए, न पियइ हरिणी वि हरिणकज्जेण।
तुच्छजले बुड्डमुहाइं दो वि समयं विवन्नाइं॥२१८॥

---

१. **खद्धो य** इति पा. प्रतौ।, २. **याहि** इति पा. प्रतौ।

[हरिणो हरिण्याः कृते न पिबति हरिण्यपि हरिणकार्येण।
तुच्छजले ब्रुडितमुखौ द्वावपि समकं विपन्नौ॥२१८॥]

[अव] सुगमा॥२१८॥

इह च हरिणत्वेन सर्वेऽपि जीवा अनन्तश उत्पन्नपूर्वाः, केवलमुदाहरणमात्रमुपदर्शयति-

[मू] एत्थ य हरिणत्ते पुप्फचूलकुमरेण जह सभज्जेण।
दुहमणुभूयं तह सुणसु जीव ! कहियं महरिसीहिं॥२१९॥

[अत्र च हरिणत्वे पुष्पचूलकुमारेण यथा सभार्येण।
दुःखमनुभूतं तथा शृणु जीव ! कथितं महर्षिभिः॥२१९॥

[अव] सुगमा।

[पुष्पचूलकुमारकथा]

कथा–यथा पुष्पभद्रपुरे पुष्पदत्ता राज्ञी, पुष्पचूलः सुतः पुष्पचूला सुता। अथ जनन्यां वारयन्त्यां तौ मिथौ राज्ञा परिणायितौ विषयसुखमनुभवतः। राज्ञि मृते राज्ञी प्रव्रजिता। देवो जातः। पुष्यचूलाप्रतिबोधाय स्वप्ने नरकान् दर्शयति। सा राज्ञे कथयति। सर्वदर्शनिन आकार्य नरकस्वरूपं पृच्छति। ते स्वस्वशास्त्रोक्तं तत्स्वरूपं कथयन्ति। परं दृष्टनरकसंवादो न स्यात्। ततोऽन्निकापुत्राख्या जैनाचार्या आकार्य पृष्टाः। तैरागमोक्तं तत्स्वरूपमुक्तम्। संवादात् सा हृष्टा वक्ति–"भवद्भिरपि किं स्वप्ना लब्धाः?" ते वदन्ति–"जिनागमचक्षुषा जानीमः।" एकदा देवः स्वप्ने स्वर्दर्शयति। तथैव दर्शनिन आचार्याश्च आकार्य पृष्टाः। राज्ञ्याः प्रतिबोधो जातः। अन्यदा सा सभायां चित्रलिखितमृगमिथुनदर्शनाद् जातजातिस्मृतिः राज्ञेऽचीकथत्–"नर्मदातीरे मृगमिथुनम् अत्यन्तानुरक्तं मुनिदर्शनप्राप्तजिनधर्मं ग्रीष्मे तृषार्तं जले निमग्नमुखम् कैककृतेऽपीतजलं विपन्नम्।" आर्या जङ्घाबलक्षीणाः परि(?)स्थिताः पुष्पचूलानीतं भैक्ष्यमुपभुञ्जते। साध्व्याः केवलमुत्पन्नं ततो यद्यत्प्रायोग्यं मन इप्सितं भक्तपानौषधाद्यानयति। तैरुक्तम्–"मम मनोगतभावं कथं जानासि?" साह–"ज्ञानेनाप्रतिपातिना।" ततः संविग्ना आचार्याः क्षमयित्वा भणन्ति–"मम केवलं कदोत्पत्स्यते?।" सा वक्ति–"गङ्गामुत्तरतां भवतां ज्ञानं भावि।" ततो नावमारूढा यतो यतो ते नावमुपविशन्ति, ततो नौर्मज्जति। नौर्वाहकैर्गङ्गामध्ये क्षिप्ताः जलजीवानुकम्पाध्यानादन्तकृ[त्केवलिनो जा]ताः। पुष्पचूलः श्रावकधर्ममाराध्य वैमानिकदेवो जातः। इति पुष्पचूलकथा॥२१९॥

अथ शूकरमधिकृत्यात्मानुशास्तिमाह-

[मू] पज्जलियजलणजालासु उवरि उल्लंबिऊण जीवंतो।
भुत्तोऽसि भुंजिउं सूयरत्तणे किह न तं सरसि ?॥२२०॥

[प्रज्वलितज्वलनज्वालासु उपर्युल्लम्ब्य जीवन्।
भुक्तोऽसि भर्जित्वा शूकरत्वे कथं न त्वं स्मरसि ?॥२२०॥]

[मू] गहिऊण सवणमुच्छालिऊण[१] वामाओ दाहिणगयम्मि।
सुणयम्मि तओ तत्थ वि, विद्धो सेल्लेण निहण गओ॥२२१॥

[गृहीत्वा श्रवणमुच्छाल्य वामाद् दक्षिणगते।
शुनके ततः तत्रापि विद्धः सेल्लेन निधनं गतः॥२२१॥]

[अव] स्पष्टा। नवरं सेल्लेण कुन्तेणेति।

इह च मायादिदोषप्रधाना जन्तवः शूकरत्वेनोत्पद्यन्ते। तत्र च पुत्रादिभिरपि भक्ष्यन्ते इति संसारासमञ्जसं प्रदर्शयन्नाह-

[मू] उप्पन्नस्स पिउस्स वि, भवपरियत्तीइ सूयरत्तेण।
पिट्ठिइमंसक्खाई[२], रायसुओ बोहिओ मुणिणा॥२२२॥

[उत्पन्नस्य पितुरपि भवपरिवर्ते शूकरत्वेन।
पृष्ठिमांसानि खादी राजसुतो बोधितो मुनिना॥२२२॥]

[सूरराजकथा]

[अव] इह कस्यचिद् राजपुत्रस्य सम्बन्धी पिता कर्मवशाद् भवान्तरे शूकरत्वेनोत्पन्नस्तस्य च सम्बन्धीनि दीर्घवर्द्धनरूपाणि पृष्ठमांसानि भुञ्जानः पुत्रो मुनिना प्रतिबोधित इति। भावार्थः कथानकादवसेयस्तद्यथाः–ऋषभपुरे भानुराजा राज्यं करोति। इतश्चैकः शूरनामा राजपुत्रो गोत्रिनिष्कासितश्चन्द्रवदना भार्यायुतस्तत्रागत्य तं नृपमवलगति। राजा तु कृपणत्वेन ग्रासं न दत्ते। सूरो भार्यामाह–"प्रिये! कृपणोऽयं नृपस्ततस्त्वमिह तिष्ठ, अहमयोध्यायामुदारनृपं सेविष्ये।" साह–"नैवं तत्र गतः त्वमन्यमहिलासक्तो मां त्यक्षसि, ततोऽहं सहैवागमिष्यामि।" अनेकधा {सा} प्रत्याय्यमाना सा न प्रत्येति। ततो तेन गोत्रदेवी आराधिता। तया सुरभिपुष्पमालाद्वयमर्पितम्, प्रोक्तम्–"कण्ठे स्थाप्यमेतत्, यस्य कण्ठे स्थिता माला म्लास्यति तेन

---

१. **'मुच्छल्लिऊ'** मु. अ.।, २. **सद्धाइ भुंजमाणो** इति पा. प्रतौ।

ज्ञेयमितरोऽन्यासक्तो जातः।" गृहीत्वा द्वाभ्यां माला क्षिप्ता स्वस्वकण्ठे, जातः प्रत्ययः। ततोऽन्यदा तां क्वापि सुस्थाने धवलगृहे स्थापयित्वा स अयोध्यायां गत्वा नृपं सेवते। नृपदत्तं प्रभूतं द्रव्यं तस्याः प्रेषयति। एकदा तत्र पुष्पाणि त्रुटितानि, द्रव्येणापि न लभ्यन्ते। राजा पुष्पगन्धमाघ्राय सेवकान् पृच्छति। ते सूरपार्श्वे सन्तीति वदन्ति। राज्ञा तत्स्वरूपं पृष्टः स यथास्थितमाह।

ततो राज्ञा तत्पत्न्याः सतीत्वमश्रद्दधानेन किन्नरगन्धर्वकोकिलनामानः त्रयो गायना मधुरस्वरा दिव्यरूपाः प्रच्छन्नं प्रहिताः। ते च गायन्तो लोकं रञ्जयन्ति। विरहनिबद्धगीतैः तद्भार्यामाक्षिपन्ति। स्वविरूपाभिप्रायं ज्ञापयन्ति प्रकारेण। ततस्तयोक्तं "कल्ये रात्रौ पृथक् पृथक् प्रहरान्ते त्रिभिरागन्तव्यम्।" भूमिगृहोपरितनभूभागे तन्तुव्यूताः पल्यङ्कास्त्रयो गर्तद्वारोपरि स्थापिताः। ते कृतशृङ्गारा आगतास्तत्र निवेशिताः। ते तु भूमिगृहे भोजनवेलायां त्रयाणामर्द्धमात्रया कोद्रवकूरं जलगर्गरिकां च क्षिपति। ततः षण्मासान्ते कर्पासतूणिकेव कृशाः पाण्डुराश्च जाताः। अन्यदा बहुविलम्बं सहेतुकं विभाव्य राजा सूरमाह–"तव प्रियां शीलवतीं द्रष्टुमिच्छामि।" "ओम्" इत्युक्तम्। राजा तेन सह प्रच्छन्नं तत्र गतः। सर्वस्वरूपं प्रोक्तम्। तयापि राजा भोजनाय निमन्त्रितस्ते त्रयोऽपि भूमिगृहान्निष्कास्य देवालयपट्टे उपवेशिताः सर्वाङ्गपुष्पवेष्टिताः। राजा आगतः। देवतात्रयमिति विचिन्त्य यावत्तेषां पादेषु पतति तावत्तैरुक्तम्–"स्वामिन्! वयं तव भृत्याः किन्नरादय ईदृशीं दशां प्राप्ताः। मा पादेषु पत।" उत्थाय प्रणमन्ति। तैः स्वरूपं सर्वमुक्तम्। राजा तुष्टः सतीं प्रशंसयति–"पवित्रीयतां मत्पुरं युवाभ्याम्" इति। सूरश्चन्द्रवदनायुतः प्राप्तोऽयोध्यायाम्। राज्ञार्पितः सप्तभूमः प्रासादः सूरस्य, कृतो महाप्रासादः। अन्यदा सूरः शूकरमांसादिभुञ्जानोऽतिशयज्ञानिना निवारितः–"किं पितृमांसमास्वाद्यते?" इति। अनेन च पृष्टे ज्ञानी प्राह–"तव पिता दृढरथो मृत्वायं शूकरो जातः।" सूरो जातसंवेगः प्रियायुतः प्रव्रज्य तपः कृत्वा शिवं गतः। इति शुकर(सूर)राजकथा॥

अथ हस्तिनमधिकृत्याह-

[मू] लुद्धो फासम्मि करेणुयाए वारीए निवडिओ दीणो।
झिज्जइ दंती नाडयनियंतिओ सुक्खरुक्खम्मि॥२२३॥

[लुब्धः स्पर्शे करेणुकाया वारौ निपतितो दीनः।
क्षयति दन्ती नाडकनियन्त्रितः शुष्कवृक्षे॥२२३॥]

[मू] विंझरमियाइ सरिउं, झिज्जंतो निबिडसंकलाबद्धो।
विद्धो सिरम्मि सियअंकुसेण वसिओ सि गयजम्मे॥२२४॥

[विन्ध्यरतानि स्मृत्वा क्षीयमाणो निबिडशृङ्खलाबद्धः।
विद्धः शिरसि शिताङ्कुशेन उषितोऽसि गजजन्मनि॥२२४॥]

[मू] सोऊण सीहनायं, पुव्विं पि विमुक्कजीवियासस्स।
निवडंतसीहनहरस्स तत्थ किं तुह दुहं कहिमो ?॥२२५॥

[श्रुत्वा सिंहनादं पूर्वमपि विमुक्तजीविताशस्य।
निपतत्सिंहनखरस्य तत्र किं तव दुःखं कथयामः ?॥२२५॥]

[अव] गतार्थाः॥२२३॥२२४॥२२५॥

[मू] भिसिणीबिसाइं सल्लइदलाइं सरिऊण जुन्नघासस्स।
कवलमगिण्हंतो आरियाहिं कह कह न विद्धो सि ?॥२२६॥

[बिसिनीबिशानि शल्लकीदलानि स्मृत्वा जीर्णतृणस्य।
कवलमगृह्णान आरिकाभिः कथं कथं न विद्धोऽसि ?॥२२६॥]

[मू] पडिकुंजरकढिणचिहुट्टदसणक्खयगलियपूयरुहिरोहो।
परिसक्किरकिमिजालो, गओ सि तत्थेव पंचत्तं॥२२७॥

[प्रतिकुञ्जरकठिननिमग्नदशनक्षतगलितपूयरुधिरौघः।
परिष्वष्किकृमिजालो गतोऽसि तत्रैव पञ्चत्वम्॥२२७॥]

[अव] प्रतिकुञ्जरः = प्रतिहस्ती तस्य कठिनौ चिहुट्टौ शरीरैकदेशं निमग्नौ यौ दन्तौ। तज्जनितक्षतेभ्यो गलिते पूयरुधिरे यस्य अत एव परिभ्रमत्कृमिजालो गतोऽसि तत्रैव जन्मनि पञ्चत्वम् = मरणमित्यर्थः॥२२७॥॥

अथ तमेवाधिकृत्य सोदाहरणानुशास्तिमाह-

[मू] जूहवइत्ते पज्जलियवणदावे निरवलंबचरणस्स।
मेहकुमारस्स व दुहमणंतसो तुह समुप्पन्नं॥२२८॥

[यूथपतित्वे प्रज्वलितवनदावे निरवलम्बचरणस्य।
मेघकुमारस्येव दुःखमनन्तशस्तव समुत्पन्नम्॥२२८॥]

[अव] सुगमा॥ मेघकुमारकथा प्रसिद्धत्वान्न लिखिता॥२२८॥

तदेवं स्थलचराणां लेशतः स्वरूपमुक्तम्। अथ जलचरोपलक्षणार्थं मत्स्यमधिकृत्याह-

[मू] जाले बद्धो सत्थेण छिंदिउं हुयवहम्मि परिमुक्को[१]।
भुत्तो य अणज्जेहिं, जं मच्छभवे तयं सरसु॥२२९॥

[जाले बद्धः शस्त्रेण छित्त्वा हुतवहे परिमुक्तः।
भुक्तश्चानार्यैः यद् मत्स्यभवे तत् स्मर॥२२९॥]

[मू] छेत्तूण निसियसत्थेण खंडसो उक्कलंततेल्लम्मि।
तलिऊण तुट्ठहियएहि हंत भुत्तो तहिं चेव॥२३०॥

[छित्त्वा निशितशस्त्रेण खण्डश उत्कलमानतैले।
तलित्वा तुष्टहृदयैः हन्त भुक्तस्तत्रैव॥२३०॥]

[मू] जीवंतो वि हु उवरिं, दाउं दहणस्स दीणहियओ य।
काऊण भडित्तं भुंजिओऽसि तेहिं चिय तहिं पि॥२३१॥

[जीवन्नपि खलु उपरि दत्त्वा दहनस्य दीनहृदयश्च।
कृत्वा भटित्रं भुक्तोऽसि तैश्चैव तत्रापि॥२३१॥]

[मू] अन्नोऽन्नगसणवावारनिरयअइकूरजलयरारद्धो।
तसिओ गसिओ मुक्को, लुक्को ढुक्को य गिलिओ य॥२३२॥

[अन्योन्यग्रसनव्यापारनिरतातिक्रूरजलचरारब्धः।
त्रस्तो ग्रस्तो मुक्तो नष्टः ढौकितश्च गलितश्च॥२३२॥]

[मू] बडिसग्गनिसियआमिसलवलुद्धो रसणपरवसो मच्छो।
गलए विद्धो सत्थेण छिंदिउं भुंजिउं भुत्तो॥२३३॥

[बडिशाग्रन्यस्तामिषलवलुब्धा रसनापरवशो मत्स्यः।
गलके विद्धः शस्त्रेण छित्त्वा भृष्ट्वा भुक्तः॥२३३॥]

[अव] पञ्चापि गाथाः स्पष्टाः॥ नवरं **तहिं ति।** तैरेवानार्यैरन्योन्यग्रसनव्यापार-निरताश्च तेऽतिक्रूरजलचराश्च तैरारब्धो मत्स्यः कदाचित् त्रस्तः ततो धावित्वा तैर्ग्रस्तो गलितुमारब्धः पुनर्दैवयोगाद् गलितुमशक्तैः कथमपि मुक्तस्ततो भीत्या क्वापि जलमध्ये लब्धो नष्टः। पुनर्दैवप्रतिकूलतया कथमपि **ढुक्को त्ति** तैः प्राप्तो गलितश्चेति॥२२९॥

---

१. **परिपक्को** इति पा. प्रतौ।

बडिशम् = प्रलम्बवंशाग्रन्यस्तलोहमयकीलकरूपम्। तत्र लोहकिलिकाग्रन्यस्तो य आमिषलवस्तत्र लुब्धः॥२३३॥

इह च मत्स्यभवे समुत्पन्नजीवाः पित्रादिना भक्ष्यन्ते इति संसारासमञ्जसतां दर्शयति-

[मू] पियपुत्तो वि हु मच्छत्तणं पि[१] जाओ सुमित्तगहवइणा।
बिडिसेण गले गहिओ, मुणिणा मोयाविओ कह वि॥२३४॥

[प्रियपुत्रोऽपि खलु मत्स्यत्वमपि जातः सुमित्रगृहपतिना।
बडिशेन गले गृहीतो मुनिना मोचितः कथमपि॥२३४॥]

[अव] प्रकटार्था। भावार्थः कथानकादवसेयः। तच्चेदम्-

[सुमित्रगृहपतिकथा]

पद्मसरग्रामे सुमित्रो गृहपतिस्तस्यापुत्रस्य वृद्धत्वे पुत्रो जातः। प्राणप्रियस्तं विना स क्षणमपि न तिष्ठति। षोडशे वर्षे पुत्रो मृत्वा मत्स्यो जातः। अन्यदा सुमित्रेण स एव मत्स्यो बडिशेन गले गलितः। ज्ञानिना सम्यक् स्वरूपं कथितम्। स मोचितः। सुमित्रः प्रतिबोधितः। प्रव्रज्य देवलोकं गतः। इति सुमित्राख्यानकम्॥२३४॥

अथ सामान्येनात्मानुशास्तिगर्भं खचराणां स्वरूपमाह-

[मू] पक्खिभवेसु गसंतो, गसिज्जमाणो य सेसपक्खीहिं।
दुक्खं उप्पायंतो, उप्पन्नदुहो य भमिओ सि॥२३५॥

[पक्षिभवेषु ग्रसन् ग्रस्यमानश्च शेषपक्षिभिः।
दुःखमुत्पादयन्नुत्पन्नदुःखश्च भ्रान्तोऽसि॥२३५॥]

[मू] खरचरणचवेडाहि य, चंचुपहारेहिं निहणमुवणेंतो।
निहणिज्जंतो य चिरं, ठिओ सि ओलावयाईसु॥२३६॥

[खरचरणचपेटाभिश्च चञ्चुप्रहारैः निधनमुपनयन्।
निहन्यमानश्च चिरं स्थितोऽसि श्येनादिषु॥२३६॥]

[मू] पासेसु जलियजलणेसु कूडजंतेसु आमिसलवेसु।
पडिओ अन्नाणंधो, बद्धो खद्धो निरुद्धो य॥२३७॥

---

१. **मच्छत्तणम्मि** इति पा. प्रतौ।

[पार्श्वेषु ज्वलितज्वलनेषु कूटयन्त्रेषु आमिषलवेषु।
पतितोऽज्ञानान्धो बद्धो खादितः निरुद्धश्च॥२३७॥]

[अव] तिस्रोऽपि गाथाः पाठसिद्धाः॥२३७॥

अथ विशेषतः कुर्कुटमाश्रित्याह-

[मू] पडिकुक्कुडनहरपहारफुट्टनयणो विभिन्नसव्वंगो।
निहणं गओ सि बहुसो, वि जीव ! परकोउयकएण॥२३८॥

[प्रतिकुर्कुटनखप्रहारस्फुटितनयनो विभिन्नसर्वाङ्गः।
निधनं गतोऽसि बहुशोऽपि जीव ! परकौतुककृतेन॥२३८॥]

[अव] गतार्था। नवरं कौतुकिना केनापि योध्यमानेषु परकौतुकनिमित्तमनन्तशो विनाशं गतोऽसि रे जीव! तदेतच्चेतसि विचिन्त्य तथा कुरु यथेदृक्षस्थानेषु नोत्पद्यसे इत्यर्थः॥२३८॥

अथ शुकमाश्रित्याह-

[मू] झीणो सरिउं सहपिययमाए रमियाइं सालिछेत्तेसु।
खित्तो गोत्तीइ व पंजरट्ठिओ हंत कीरत्ते॥२३९॥

[क्षीणः स्मृत्वा सह प्रियतमया रतानि शालिक्षेत्रेषु।
क्षिप्तो गुप्तावि पञ्जरस्थितो हन्त कीरत्वे॥२३९॥]

[मू] भमिओ सहयारवणेसु पिययमापरिगएण सच्छंदं।
सरिऊण पंजरगओ, बहुं विसन्नो विवन्नो य॥२४०॥

[भ्रान्तः सहकारवनेषु प्रियतमापरिगतेन स्वच्छन्दम्।
स्मृत्वा पञ्जरगतो बहुविषण्णो विपन्नश्च॥२४०॥]

[मू] गहिओ खरनहरबिडालियाए आयड्ढिऊण कंठम्मि।
चिल्लंतो विलवंतो, खद्धो सि तहिं तयं सरसु॥२४१॥

[गृहीतः खरनखरबिडालिकया आकृष्य कण्ठे।
रसन् विलपन् खादितोऽसि तत्र तत् स्मर॥२४१॥]

[अव] कीरत्वे = शुकजन्मनि **तहिं पि**। शुकजन्मन्येव शेषं स्पष्टम्॥२४१॥

अत्रापि संसारासमञ्जसतोपदर्शनार्थं जनकजनन्यादिभिर्बन्धनभक्षणादीनि शुकस्य सोदाहरणमाह-

[मू] तत्थेव य सच्छंदं, मुद्दियलयमंडवेसु हिंडंतो।
जणएण पासएहिं, बद्धो खद्धो य जणणीए॥२४२॥

[तत्रैव च स्वच्छन्दं मृद्वीकालतामण्डपेषु हिण्डमानः।
जनकेन पाशकैः बद्धो भक्षितश्च जनन्या॥२४२॥]

[अव] तत्रैव शुकभवे महाटव्यां द्राक्षामण्डपेषु हिण्डमानः शेषं स्पष्टम्। भावार्थः कथानकगम्यस्तच्चेदम्-

[वसुदत्तकथा]

काञ्चनपुरे वसुदत्तः सार्थवाहो, भार्या वसुमती वरुणसुतः तयोरत्यन्तं प्राणप्रियः। अन्यदा वरुणो देशान्तरं गत्वा प्रभूता धनकोटीरुपार्ज्य वलन्नटव्यां शूलेन मृत्वा राजशुको जातः। धनं कियद्गतं कियत्पितुः प्राप्तम्। तच्छोकतो हृदयस्फोटेन वसुमती मार्जारी तत्रैव गृहे जाता। अन्यदा वसुदता(त्तो) देशान्तरं गत्त्वा प्रभूतधनमर्जयित्वा तस्यामेवाटव्यामायातस्तत्र स शुकोऽस्ति सुतजीवः। भवितव्यतावशात् सहकार-शाखायां तं सुतशुकं दृष्ट्वा पाशेन तेन गृहीतः। स्वगृहे नीत्वा पञ्जरे क्षिपति। अतिस्नेहेन तं लालयति पाठयति च। अन्यदा रात्रौ पञ्जरद्वारं विवृतं दृष्ट्वा तया मार्जार्या गृहीतो विनाशितश्च। इतश्च तत्र पुरे केवली प्राप्तः। सार्थवाहः पृच्छति–"किं मम शुकोपरि मोहः।" ज्ञानी सर्वं वक्ति। ततो वैराग्याद् वसुदत्तः प्रव्रज्य शिवं गतः। इति वसुदत्त-कथानकम्॥२४२॥

एवं तिरश्चामति बहुत्वात् प्रत्येकं सर्वेषां स्वरूपमभिधातुमशक्यत्वादुपसंहरन्नाह-

[मू] इय तिरियमसंखेसुं, दीवसमुद्देसु उड्ढमहलोए।
विविहा तिरिया दुक्खं, च बहुविहं केत्तियं भणिमो ?॥२४३॥

[इति तिर्यगसङ्ख्येषु द्वीपसमुद्रेषु ऊर्ध्वमधोलोके।
विविधास्तिर्यञ्चो दुःखं च बहुविधं कियद् भणामः ?॥२४३॥]

[अव] सुगमा॥२४३॥

[मू] हिमपरिणएसु सरिसरवरेसु सीयलसमीरसुढियंगा।
हिययं फुडिऊण मया, बहवे दीसंति जं तिरिया॥२४४॥

[हिमपरिणतेषु सरित्सरोवरेषु शीतलसमीरसङ्कुचिताङ्गाः।
हृदयं स्फोटयित्वा मृता बहवो दृश्यन्ते यत् तिर्यञ्चः॥२४४॥]

[मू] वासारत्ते तरुभूमिनिस्सिया रण्णजलपवाहेहिं।
वुज्झंति असंखा तह, मरंति सीएण विज्झडिया॥२४५॥

[वर्षारात्रे तरुभूमिनिश्रिता अरण्यजलप्रवाहैः।
उह्यन्ते असङ्ख्याः तथा म्रियन्ते शीतेन व्याप्ताः॥२४५॥]

[अव] किमिति सर्वेषामपि तिरश्चां प्रत्येकमभिधातुं न शक्यते इति पुनरपि तिरश्चां सामान्यदुःखं बिभणिषुराह-

[मू] को ताण अणाहाणं, रन्ने तिरियाण वाहिविहुराणं।
भुयगाइडंकियाण य[१], कुणइ तिगिच्छं व मंतं वा ?॥२४६॥

[कस्तेषामनाथानामरण्ये तिरश्चां व्याधिविधुराणाम्।
भुजगादिदष्टानां च करोति चिकित्सां वा मन्त्रं वा ?॥२४६॥]

[मू] वसणच्छेयं नासाइविंधणं पुच्छकन्नकप्परणं।
बंधणताडणडंभणदुहाइं तिरिएसुऽणंताइं॥२४७॥

[वृषणच्छेदं नासिकादिवेधनं पुच्छकर्णकर्तनम्।
बन्धनताडनदम्भनदुःखानि तिर्यक्ष्वनन्तानि॥२४७॥]

कैर्हेतुभिः पुनरपि एतत्तिर्यगायुः सामान्येन बध्यते इत्याह-

[मू] मुद्धजणवंचणेणं, कूडतुलाकूडमाणकरणेण।
अट्टवसट्टोवगमेण देहघरसयणचिंताहिं॥२४८॥

[मुग्धजनवञ्चनेन कूटतुलाकूटमानकरणेन।
आर्तवशार्तोपगमेन देहगृहस्वजनचिन्ताभिः॥२४८॥]

[मू] कूडक्कयकरणेणं[२], अणंतसो नियडिनडियचित्तेहिं।
सावत्थीवणिएहिं, व तिरियाउं बज्झए एवं॥२४९॥

[कूटक्रयकरणेनानन्तशो निकृतिनटितचित्तैः।
श्रावस्तीवणिग्भिरिव तिर्यगायुर्बध्यते एवम्॥२४९॥]

[अव] स्पष्टे। भावार्थः कथातो ज्ञेयः। सा चेयम्-

[श्रावस्तीवणिक्कथा]

श्रावस्त्यां पुर्यां सोमवरुणमहेश्वरास्त्रयो वणिजो मैत्रीमापन्नाः कूटतुलादिकारिणः।

---

१. **वि** इति पा. प्रतौ।, २. **कहणेणं** इति पा. प्रतौ।

अन्यदा देशान्तरं त्रयोऽपि वणिजो धनार्जनाय गताः। मुग्धजनवञ्चनादिभिस्तैः पञ्च रत्नानि पञ्चलक्षमूल्यान्यर्जितानि गृहीत्वा स्वपुरमायान्ति। किञ्चिन्मिथः कूटप्रपञ्चेन वञ्चनां चिकीर्षवो भणन्ति–"रत्नानि बहिरत्र निधाय सम्प्रति पुरमध्ये गम्यते, रात्रौ ग्रहीष्यन्ते रत्नानि यथा शौक्लिका न पश्यन्ति" तैस्तथा कृते केनाप्यन्येन तानि निहितानि ज्ञातानि पञ्च पाषाणखण्डानि क्षिप्त्वा रत्नानि गृहीतानि। रात्रौ सोमेन समागत्यान्धकारे पञ्च पाषाणखण्डानि क्षिप्त्वाग्रेतनानि तानि गृहीतानि। एवमपरैरपि कृतम्। प्रातर्विलोकितं तैः पाषाणखण्डानि पश्यन्ति। जाता विलक्षास्ते। बहिर्गत्वा विलोकितं तैः। तत्र पाषाणखण्डानि पश्यन्ति। मिथः कलहायन्ते। रत्नान्येव ध्यायन्ति। कालेन मृत्वा तिर्यग्गतौ गताः। अनन्तं कालं भ्रान्ताः॥ इति श्रावस्तीवणिक्कथा॥ इति तिर्यग्गतेरवचूरिः॥

तदेवं तिर्यग्गतिस्वरूपमभिधाय मनुष्यगतिप्रस्तावनामाह-

[मू] कालमणंतं एगिंदिएसु संखेज्जयं पुणियरेसु।
काऊण[1] केइ मणुया, होंति अतो तेण ते भणिमो॥२५०॥

[कालमनन्तमेकेन्द्रियेषु सङ्ख्येयं पुनःइतरेषु।
कृत्वा केचित् मनुजा भवन्ति अतः तेन तान् भणामः॥२५०॥]

यथाप्रतिज्ञातमेवाह-

[मू] कम्मेयरभूमिसमुब्भवाइभेएणऽणेगहा मणुया।
ताण विचिंतसु जइ अत्थि किं पि[2] परमत्थओ सोक्खं॥२५१॥

[कर्मेतरसमुद्भवादिभेदेनानेकधा मनुजाः।
तेषां विचिन्तय यदि अस्ति किमपि परमार्थतः सौख्यम्॥२५१॥]

[मू] गब्भे बालत्तणयम्मि जोव्वणे तह य वुड्ढभावम्मि।
चिंतसु ताण सरूवं, निउणं चउसु वि अवत्थासु॥२५२॥

[गर्भे बालकत्वे यौवने तथा च वृद्धभावे।
चिन्तय तेषां स्वरूपं निपुणं चतसृष्वप्यवस्थासु॥२५२॥]

[अव] मनुष्या द्विविधाः। कर्मभूमिजा अकर्मभूमिजाश्च। कर्मभूमिजा भरतैरावत-विदेहपञ्चकजाः। अकर्मभूमिजा हैमवतहरिवर्षदेवकुरूत्तरकुरुरम्यकैरण्यवतपञ्चक-

१. **होऊण** इति पा. प्रतौ।, २. **किंचि अत्थि** इति पा. प्रतौ।

भेदात् त्रिंशद्विधाः। षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपभेदभिन्नाश्च। एवं च समूर्च्छिमगर्भजपर्याप्ता-पर्याप्तादयोऽपि समयोक्ता भेदा द्रष्टव्याः। इत्येवं तावदनेकविधा मनुष्या भवन्ति। तेषामपि चिन्तय सम्यक्स्वरूपं यदि परमार्थतः किमपि सौख्यमस्तीति भावः॥२५१॥२५२॥

[मू] मोहनिवनिबिडबद्धो, कत्तो वि हु कड्ढिउं असुइगब्भे।
चोरो व्व चारयगिहे, खिप्पइ जीवो अणप्पवसो॥२५३॥

[मोहनृपनिबिडबद्धः कुतोऽपि खलु कृष्ट्वा अशुचिगर्भे।
चौर इव चारकगृहे क्षिप्यते जीवोऽनात्मवशः॥२५३॥]

[अव] कुतो = नरकतिर्यगादिगतिभ्यः समाकृष्यानात्मवशश्चौर इव चारकगृहेऽशुचिस्वरूपे गर्भः क्षिप्यते जीव इति॥२५३॥

गर्भोत्पन्नः किमाहारयतीत्याह-

[मू] सुक्कं पिउणो माऊए सोणियं तदुभयं पि संसट्ठं।
तप्पढमयाएँ जीवो, आहारइ तत्थ उप्पन्नो॥२५४॥

[शुक्रं पितुः मातुः शोणितं तदुभयमपि संसृष्टम्।
तत्प्रथमतया जीव आहारयति तत्रोत्पन्नः॥२५४॥]

[अव] तच्च तदुभयं शुक्रशोणितरूपं संस्पृष्टम् = मिलितं तत्र गर्भे उत्पन्नो जन्तुरभ्यवहरति। कयेत्याह–तच्च तत्प्रथमं च तद्भावस्तत्ता तया प्रथममुत्पन्न इति॥२५४॥

ततः केन क्रमेण शरीरं निष्पद्यते तदित्याह-

[मू] सत्ताहं कललं होइ, सत्ताहं होइ अब्बुयं।
अब्बुया जायए पेसी, पेसीओ य घणं भवे॥२५५॥

[सप्ताहं कललं भवति सप्ताहं भवति अर्बुदम्।
अर्बुदाज्जायते पेशी पेशितश्च घनं भवेत्॥२५५॥]

[अव] सप्ताहोरात्राणि यावत् शुक्रशोणितसमुदायमात्रं कललं भवति। ततः सप्ताहोरात्राणि अर्बुदा भवति। ते एव शुक्रशोणिते किञ्चित् स्त्यानीभूतत्वं प्रतिपद्येते इति। ततोऽपि चार्बुदा[त्] पेशी मांसखण्डरूपा भवति। ततश्चानन्तरं सा घनं समचतुरस्रमांसखण्डं भवति॥२५५॥

[मू] होइ पलं करिसूणं, पढमे मासम्मि बीयए पेसी।
होइ घणा तइए उण, माऊए दोहलं जणइ॥२५६॥

[भवति पलं कर्षोनं प्रथमे मासे द्वितीये पेशी।
भवति घनः तृतीये पुनः मातुः दौहृदं जनयति॥२५६॥]

[अव] इह च ततः शुक्रशोणितमुत्तरोत्तरपरिणाममासादयत् प्रथमे मासे प्रसिद्धं पलं कर्षोनं भवन्ति। ***पलं च कर्षचतुष्टयं स्याद्*** इति वचनात् त्रयः कर्षाः स्युरिति भावः। द्वितीये तु मासे मांसपेशी घनाघनस्वरूपा भवति, समचतुरस्रं मांसखण्ड जायत इत्यर्थः। तृतीये मासे तु मातुर्दौहदं जनयतीत्यर्थः॥२५६॥

[मू] जणणीए अंगाइं, पीडेइ[१] चउत्थयम्मि मासम्मि।
करचरणसिरंकूरा, पंचमए पंच जायंति॥२५७॥

[जनन्या अङ्गानि पीडयति चतुर्थे मासे।
करचरणशिरोऽङ्कुराः पञ्चमे पञ्च जायन्ते॥२५७॥]

[मू] छट्ठम्मि पित्तसोणियमुवचिणेइ सत्तमम्मि पुण मासे।
पेसिं पंचसयगुणं, कुणइ सिराणं च सत्तसए॥२५८॥

[षष्ठे पित्तशोणितपित्तशोणितमुपचिनोति सप्तमे पुनर्मासे।
पेशीं पञ्चशतगुणं करोति सिराणां च सप्त शतानि॥२५८॥]

[मू] नव चेव य धमणीओ, नवनउइं लक्ख रोमकूवाणं।
अद्धुट्ठा कोडीओ, समं पुणो केसमंसूहिं॥२५९॥

[नव चैव च धमन्यो नवनवतिर्लक्षा रोमकूपानाम्।
अर्धचतुर्थाः कोटयः समं पुनः केशश्मश्रुभ्याम्॥२५९॥]

[अव] नवनवतिलक्षाणि रोमकूपानां भवन्ति। श्मश्रुकेशैर्विना। तैस्तु सह सार्धास्तिस्रो कोट्यो रोमकूपानां जायन्ते॥२५९॥

[मू] निप्फन्नप्पाओ पुण, जायइ सो अट्ठम्मि मासम्मि।
ओयाहाराईहि य, कुणइ सरीरं समग्गं पि॥२६०॥

[निष्पन्नप्रायः पुनर्जायते सोऽष्टमे मासे।
ओजआहारादिभिश्च करोति शरीरं समग्रमपि॥२६०॥]

---

१. **पीणेइ** इति पा. प्रतौ।

[अव] अष्टमे मासे तु शरीरमाश्रित्य निष्पन्नप्रायो जीवो भवति। शुक्रशोणितसमुदाय ओज इत्युच्यते। तस्यौजस आहार ओजआहारः, आदिशब्दात् लोमादिपरिग्रहः। तैः सर्वैरपि आहारैः समग्रमपि शरीरं भवति॥२६०॥

[मू] दुन्नि अहोरत्तसए, संपुण्णे सत्तसत्तरी चेव।
गब्भगओ वसइ जिओ, अद्धमहोरत्तमन्नं च॥२६१॥

[द्वे अहोरात्रशते सम्पूर्णां सप्तसप्ततिं चैव।
गर्भगतो वसति जीवोऽर्धमहोरात्रमन्यच्च॥२६१॥]

[अव] अहोरात्रशते सप्तसप्तत्यधिके गर्भगतश्च जीवो वसति। सार्द्धसप्तदिनान्नव मासाँश्च यावद्वसतीत्यर्थः॥२६१॥

कियन्तः पुनर्जीवा एकस्याः स्त्रियो गर्भे एकहेलयैवोत्पद्यन्ते? कियतां च पितॄणामेकः पुत्रो भवतीत्याह-

[मू] उक्कोसं नवलक्खा, जीवा जायंति एगगब्भम्मि।
उक्कोसेण नवण्हं, सयाण जायइ सुओ एक्को॥२६२॥

[उत्कृष्टं नव लक्षा जीवा जायन्ते एकगर्भे।
उत्कृष्टेन नवानां शतानां जायते सुत एकः॥२६२॥]

[अव] एकस्याः स्त्रियो गर्भे एको द्वौ च त्रयो वोत्कृष्टतस्तु नवलक्षाणि जीवानामुत्पद्यन्ते। निष्पत्तिं च प्राय एको द्वौ वा गच्छतः। शेषास्त्वल्पजीवितत्वाद् एव म्रियन्ते। तथोत्कृष्टानां नवानां पितृशतानामेकः पुत्रो जायते। एतदुक्तं भवति–कस्याश्चिद् दृढसंहननायाः कामातुरायाश्च योषितो यदा द्वादशमुहूर्तमध्ये उत्कर्षतो नवभिः पुरुषैः शतैः सह सङ्गमो भवति तदा तद्बीजे यः पुत्रो भवति स नवानां पितृशतानां पुत्रो भवति॥२६२॥

गर्भादपि केचिज्जीवा नरकं केचित्तु देवलोकं गच्छन्तीति दर्शयति-

[मू] गब्भाउ वि काऊणं, संगामाईणि गरुयपावाइं।
वच्चंति के वि नरयं, अन्ने उण जंति सुरलोयं॥२६३॥

[गर्भादपि कृत्वा सङ्ग्रामादीनि गुरुकपापानि।
व्रजन्ति केऽपि नरकमन्ये पुनर्यान्ति सुरलोकम्॥२६३॥]

[अव] सुगमा। नवरं पूर्वभविकवैक्रियलब्धिसम्पन्नः कोऽपि

राजपत्न्यादिगर्भसम्भूतः प्रौढतां प्राप्तः परचक्रागमं श्रुत्वा गर्भ एव व्यवस्थितो बहिर्जीवप्रदेशान्निष्कास्य वैक्रियकरितुरगरथपदातीन् विधाय सङ्ग्रामं कृत्वा रौद्राध्यवसायो गर्भादपि मृत्वा नरकं याति। कश्चित् तु मातुर्मुनिसमीपे धर्मश्रवणं कुर्वन्त्यास्तद्गर्भे स्थितो धर्मं श्रुत्वा शुभाध्यवसायस्तत एव देवलोकं गच्छति इति भावार्थः॥२६३॥

[मू] नवलक्खाण वि मज्झे, जायइ एगस्स दुण्ह व समत्ती।
सेसा पुण एमेव य, विलयं वच्चंति तत्थेव॥२६४॥

[नवलक्षाणामपि मध्ये जायते एकस्य द्वयोर्वा समाप्तिः।
शेषाः पुनरेवमेव च विलयं व्रजन्ति तत्रैव॥२६४॥]

[अव] व्यवहारदेशना चेयम्। निश्चयतस्तु ततोऽधिकन्यूनं वा भवतीति भावः॥२६४॥]

एवं दुःखितः कियन्तं कालं गर्भे वसतीत्याह-

[मू] सुयमाणीए माऊइ सुयइ जागरइ जागरंतीए।
सुहियाइ हवइ सुहिओ, दुहियाए दुक्खिओ गब्भो॥२६५॥

[स्वपत्यां मातरि स्वपिति जागर्ति जाग्रत्याम्।
सुखितायां भवति सुखितो दुःखितायां दुःखितो गर्भः॥२६५॥]

[मू] कइया वि हु उत्ताणो, कइया वि हु होइ एगपासेण।
कइया वि अंबखुज्जो, जणणीचेट्ठाणुसारेण॥२६६॥

[कदाचिदपि खलु उत्तानः कदापि खलु भवति एकपार्श्वेन।
कदापि आम्रकुब्जो जननीचेष्टानुसारेण॥२६६॥]

[मू] इय चउपासो[१] बद्धो, गब्भे संवसइ दुक्खिओ जीवो।
परमतिमिसंधयारे, अमेज्झकोत्थलयमज्झे व॥२६७॥

[इति चतुःपाशो बद्धो गर्भे संवसति दुःखितो जीवः।
परमतमिस्रान्धकारे अमेध्यकोत्थलमध्य इव॥२६७॥]

[मू] सूईहिं अग्गिवन्नाहिं भिज्जमाणस्स जंतुणो।
जारिसं जायए दुक्खं गब्भे अट्ठगुणं तओ॥२६८॥

---

१. **चउपासे** इति पा. प्रतौ।

[सूचीभिरग्निवर्णाभिः भिद्यमानस्य जन्तोः।
यादृशं जायते दुःखं गर्भेऽष्टगुणं ततः॥२६८॥

[मू] पित्तवसमंससोणियसुक्कट्ठिपुरीसमुत्तमज्झम्मि।
असुइम्मि किमि व्व ठिओ, सि जीव ! गब्भम्मि निरयसमे॥२६९॥

[पित्तवशामांसशोणितशुक्रास्थिपुरीषमूत्रमध्ये।
अशुचौ कृमिरिव स्थितोऽसि जीव ! गर्भे निरयसमे॥२६९॥[१]]

[अव] इति एवं कोऽपि दुःखितः पापकारी वातपित्तादिदूषिते देवादिस्तम्भिते वा गर्भे द्वादशसंवत्सराणि निरन्तरं तिष्ठति। कथम्भूते? शुक्रशोणितादिभ्योऽशुचिद्रव्येभ्यो प्रभव उत्पत्ति स तथा तस्मिन्निति अशुचिस्वरूप एव शुक्रशोणितेऽशुचिरूपे = मलसञ्चयाविले इत्यर्थः। भवस्थितिश्चैषा कायस्थितिमाश्रित्य कोऽपि द्वादशवर्षाणि जीवित्वा तदन्ते च मृत्वा तथाविधकर्मवशात् तत्रैव गर्भस्थिते कलेवरे समुत्पद्य पुनर्द्वादशवर्षाणि जीवतीत्येवं चतुर्विंशति वर्षाण्युत्कर्षतो गर्भजन्तुरवतिष्ठते। एतदप्यु(नु)क्तमपि स्वयमेव द्रष्टव्यम्॥२६५॥२६६॥२६७॥२६८॥२६९॥

गर्भाच्च योनिमुखे[न] निर्ग[च्छतस्] तस्य सम्यक्स्वरूपस्येतरस्य च स्वरूपमाह-

[मू] इय कोइ पावकारी, बारस संवच्छराइं गब्भम्मि।
उक्कोसेणं चिट्ठइ, असुइप्पभवे असुइयम्मि॥२७०॥

[इह कश्चित् पापकारी द्वादश संवत्सरान् गर्भे।
उत्कृष्टेन तिष्ठति अशुचिप्रभवेऽशुचौ॥२७०॥]

[मू] तत्तो पाएहिं सिरेण वा वि सम्मं विणिग्गमो तस्स।
तिरियं णिग्गच्छंतो, विणिवायं पावए जीवो॥२७१॥

[ततः पादाभ्यां शिरसा सम्यग् विनिर्गमस्तस्य।
तिर्यग् निर्गच्छन् विनिपातं प्राप्नोति जीवः॥२७१॥]

[अव] ततो गर्भाद्योनिमुखे पादाभ्यां शीर्षेण वा तस्य जीवस्य निर्गमो भवति। अथ कथमपि तिर्यग्व्यवस्थितो निर्गच्छति तदा जननी गर्भश्च द्वावपि विनाशं प्राप्नुतः॥२७०॥२७१॥

---

१. गब्भाओ निहरंतस्स जोणिजंतनिपीलणे। सहसाहस्सियं दुक्खं कोडाकोडिगुणं वि वा॥
(छाया-गर्भाद् निःसरतो योनियन्त्रनिपीलने। शतसाहस्रिकं दुःखं कोटाकोटिगुणमपि वा॥) एषा गाथा अधिका क्वचिद् मूले मु. ब.।

[मू] गब्भदुहाइं दट्ठुं, जाईसरणेण नायसुरजम्मो।
सिरितिलयइब्भतणओ, अभिग्गहं कुणइ गब्भत्थो॥२७२॥

[गर्भदुःखानि दृष्ट्वा जातिस्मरणेन ज्ञातसुरजन्मा।
श्रीतिलकेभ्यतनयोऽभिग्रहं करोति गर्भस्थः॥२७२॥]

[श्रीतिलकसुतकथा]

[अव] कथानकं चेदम्–मगधदेशे कुल्लागप्रदेशे सिरिदत्तो वणिग् धनवान्जिनधर्मरतो ज्ञातसंसारपरमार्थः तस्यान्यदा भार्यावैराग्यात् श्रीदत्तो दीक्षां प्रपद्यते। अधीतसूत्रो दुष्करतपःपरः परीषहसहः जितेन्द्रियकषायो निष्प्रतिकर्मशरीरः स्मशाने प्रतिमया तस्थौ। इतश्च तन्निश्चलतां दृष्ट्वा शक्रः प्रशशंस। एकः सुरोऽश्रद्दधानोऽत्रागत्य श्रीदत्ताभिधमुनिं भीमाट्टहासकरण-करि-व्याघ्र-भीमभुजङ्गसर्वतोमुखदवानलज्वा-लाप्रचण्डपवन-धूलिपुञ्ज-वज्रमुखकीटिकावृश्चिकादिभिः प्रतिकूलैरुपसर्गैरुपद्रवन् क्षोभयामास। परं स न चुक्षोभ। सन्तुष्टो देवः क्षमयित्वा स्वर्गतः। श्रीदत्तोऽपि चिरं चारित्रमाराध्य सप्तमं स्वर्गं गतः। इतश्च साकेतपुरे श्रीतिलकव्यवहारिणो जिनधर्मरतस्य भार्या यशोमत्याः कुक्षौ सप्तमस्वर्गात् च्युत्वा पुत्रत्वेनोत्पद्यते। अष्टमे मासे गर्भस्थ एव जनन्यां धर्मं शृण्वन्त्यां सोऽपि शृणोति। जातिस्मरणमुत्पन्नम्। जातमात्रे मया प्रव्रज्यासमये सा प्रव्रज्या गृह्यते इत्यभिग्रहमगृह्णत्। तत्र पद्म इति नाम कृतम्। अष्टवार्षिकः७२(द्वासप्तति) कलाकुशलो मातर(तृ)पितरावापृच्छय गुरुपार्श्वे प्रव्रज्य तपः कृत्वा शिवं प्राप्तः॥ इति श्रीतिलकसुतकथा॥

ननु नवमासमात्रान्तरितमपि प्राक्तनं भवं जीवः किं न स्मरतीत्याह-

[मू] अइविस्सरं रसंतो, जोणीजंताओ कह वि णिप्फिडइ।
माऊऍ अप्पणोऽवि य, वेयणमउलं जणेमाणो॥२७३॥

[अतिविस्वरं रसन् योनियन्त्रात् कथमपि निर्गच्छति।
मातुरात्मनोऽपि च वेदनामतुलां जनयन्॥२७३॥]

[मू] जायमाणस्स जं दुक्खं मरमाणस्स जंतुणो।
तेण दुक्खेण संतत्तो न सरइ जाइमप्पणो॥२७४॥

[जायमानस्य यद् दुःखं म्रियमाणस्य जन्तोः।
तेन दुःखेन सन्तप्तो न स्मरति जातिमात्मनः॥२७४॥]

[अव] ननु य एते जायमानाः पुत्रादयो दृश्यन्ते ते किं गर्भे व्यवस्थिताः तद्भावेन

ज्ञायन्ते उत न? इत्यत्र उच्यते, ज्ञायन्ते। कथमिति चेत्, आगमात्। कथम्भूतादित्याह-

[मू] दाहिणकुच्छीवसिओ, पुत्तो वामाए पुण हवइ धूया।
उभयंतरम्मि वसिओ, नपुंसओ जायए जीवो॥२७५॥

[दक्षिणकुक्षौ उषितः पुत्रः वामायां पुनर्भवति दुहिता।
उभयान्तरे उषितो नपुंसको जायते जीवः॥२७५॥]

[मू] छुहियं पिवासिसं वा, वाहिग्घत्थं च अत्तयं कहिउं।
बालत्तणम्मि न तरइ, गमइ रुयंतो च्चिय वराओ॥२७६॥

[क्षुधितं पिपासितं वा व्याधिग्रस्तं वा आत्मानं कथयितुम्।
बालत्वे न शक्नोति गमयति रुदन्नेव वराकः॥२७६॥]

[मू] खेलखरंटियवयणो, मुत्तपुरीसाणुलित्तसव्वंगो।
धूलिभुरुंडियदेहो, किं सुहमणुहवइ किर बालो ?॥२७७॥

[श्लेष्मखरण्टितवदनो मूत्रपुरीषानुलिप्तसर्वाङ्गः।
धूलिलिप्तदेहः किं सुखमनुभवति किल बालः ?॥२७७॥]

[मू] खिवइ करं जलम्मि वि, पक्खिवइ मुहम्मि कसिणभुयगं पि।
भुंजइ अभोज्जपेज्जं, बालो अन्नाणदोसेण॥२७८॥

[क्षिपति करं ज्वलनेऽपि प्रक्षिपति मुखे कृष्णभुजङ्गमपि।
भुङ्क्ते अभोज्यापेयं बालोऽज्ञानदोषेण॥२७८॥]

[मू] उल्लसइ भमइ कुक्कुयइ कीलइ जंपइ बहुं असंबद्धं।
धावइ निरत्थयं पि हु, निहणंतो भूयसंघायं॥२७९॥

[उच्छलति भ्रमति कूजति क्रीडति जल्पति बहु असम्बद्धम्।
धावति निरर्थकमपि खलु निघ्नन् भूतसङ्घातम्॥२७९॥]

[मू] इय असमंजसचेट्ठियअन्नाणऽविवेयकुलहरं गमियं।
जीवेणं बालत्तं, पावसयाइं कुणंतेण॥२८०॥

[इति असमञ्जसचेष्टिताज्ञानाविवेककुलगृहं गमितम्।
जीवेन बालत्वं पापशतानि कुर्वाणेन॥२८०॥]

[मू] बालस्स वि तिव्वाइं, दुहाइं दट्ठूण नियतणयस्स।
बलसारपुहइवालो, निव्विन्नो भवनिवासस्स॥२८१॥

[बालस्यापि तीव्राणि दुःखानि दृष्ट्वा निजकतनयस्य।
बलसारपृथ्वीपालो निर्विण्णो भवनिवासात्॥२८१॥]

[बलसारकथा]

[अव] कथानकमिदम्–ललितपुरे बलसारो राजा, ललिताङ्गी राज्ञी, तयोरनपत्यता दुःखम्। अन्यदा निशीथे वेणुवीणारवमधुरं गीतं श्रुत्वा तदनुसारेण स वने प्राप्तः। प्रेक्षते स्म तत्र विद्याधरान् जिनायतने सङ्गीतं कुर्वन्तः। ते च सङ्गीतं कृत्वा निर्गताः। इतश्च खेचरा अपि {दे}समायाताः। लग्नमुभयोर्युद्धम्। तानि बलानि युध्यमानानि दूरं गतानि। स्थिता एका खेचरी। इतश्चैकः खेचरः तस्यापहाराय तत्रागतः। तया पूत्कारः कृतः। राजा प्रधावितः। खेचरेण सह युद्धं चक्रे। निहतः खेचरः। भूपोऽपि प्रहारविधुरो जातः। इतश्च खेचरीभर्त्ता समायातः। तेन राजा संरोहिण्यौषध्या सज्जीकृतः। [कथितश्च स्ववृत्तान्तः]"वैताढ्ये सुवर्णकेतुखेचरेन्द्रस्य चन्द्रशेखरनामाहं सुतः। मयि वैरिणा समं युद्धव्यापृतेऽसौ मम भार्या द्विषापह्रियमाणा त्वया रक्षिता।" ततो मनश्चिन्तितदायिनीमौषधिमर्पयित्वा गतः। खेचरो राजा स्वगृहमायातः। औषधिप्रभावात् पुत्रो जातः भुवनसारनामा। एको मासः सञ्जातः। दाहशिरोऽर्तिशूलमूत्रोच्चारनिरोधाध्मातदाहशोषकासश्वासादिरोगैः पीडितः। कृताः प्रभूता उपचाराः। न जातो गुणः। मत्स्य इव स बालो महार्तिग्रस्तो तल्लोवेल्लिं कुर्वन् मृतः। राजा तद्दुःखदुःखितः स्वपुत्रस्वल्पजीवितत्वे हेतुं ज्ञानिपार्श्वे पृच्छति। ज्ञानी स्माह–"प्राग्भवे तव पुत्रजीवेन मिथ्यादृशाज्ञानतपः कृतम्, स्नानादिना जीवहिंसा कृता, तेनाल्पायुर्जातः" इति श्रुत्वा बलसारः प्रव्रज्य शिवं गतः॥ इति बलसारकथा॥२८१॥

[मू] तरुणत्तणम्मि पत्तस्स धावए दविणमेलणपिवासा।
सा का वि जीई न गणइ देवं धम्मं गुरुं तत्तं॥२८२॥

[तरुणत्वे प्राप्तस्य धावति द्रविणमेलनपिपासा।
सा कापि यस्यां न गणयति देवं धर्मं गुरुं तत्त्वम्॥२८२॥]

[मू] तो मिलइ कह वि अत्थे[१], जइ तो मुज्झइ तयं पि पालंतो।
बीहेइ राइतक्करअंसहराईण निच्चं पि॥२८३॥

[ततो मेलयति कथमपि अर्थान् यदि ततो मुह्यति तकमपि पालयन्।
बिभेति राजतस्करांशहरादिभ्यो नित्यमपि॥२८३॥]

[मू] वड्ढंते उण अत्थे, इच्छा वि कह वि तह दूरं।
जह मम्मणवणिओ इव, संतेऽवि धणे दुही होइ॥२८४॥

---

१. **अत्थो** इति पा. प्रतौ।

[वर्द्धमाने पुनः अर्थे वर्धते इच्छापि कथमपि तथा दूरम्।
यथा मम्मणवणिगिव सत्यपि धने दुःखी भवति॥२८४॥]

[अव] स्पष्टा। मम्मणश्रेष्ठिकथा प्रसिद्धत्वान्नालेखि॥२८४॥

[मू] लद्धं पि धणं भोत्तुं, न पावए वाहिविहुरिओ अन्नो।
पत्थोसहाइनिरओ, त्ति केवलं नियइ नयणेहिं॥२८५॥

[लब्धमपि धनं भोक्तुं न प्राप्नोति व्याधिविधुरितोऽन्यः।
पथ्यौषधादिनिरत इति केवलं पश्यति नयनाभ्याम्॥२८५॥]

[मू] जइ पुण होइ न पुत्तो, अहवा जाओ वि होइ दुस्सीलो।
तो तह झिज्झइ अंगे, जह कहिउं केवली तरइ॥२८६॥

[यदि पुनर्भवति न पुत्रोऽथवा जातोऽपि भवति दुःशीलः।
ततः तथा खिद्यतेऽङ्गे यथा कथयितुं केवली शक्नोति॥२८६॥]

[अव] पथ्यं च औषधं च आदिशब्दात् शस्त्रकर्मपरिग्रहस्तन्निरत इति कृत्वा तल्लब्धं धनं हृदये महार्तध्यानमुद्वहन् केवलं नेत्राभ्यामेव निरीक्षते, न तु खादितुं पातुं वा तच्छक्नोति। तथा च सति महद्दुःखं तस्योपजायत इत्यर्थः॥२८५॥

[मू] अन्ने उण संजुत्ता, रत्तुप्पलपत्तकोमलतलेहिं।
सोणनहसयललक्खणलक्खियकुम्मुन्नयपएहिं॥२८७॥

[अन्ये पुनः संयुक्ता रक्तोत्पलपत्रकोमलतलैः।
शोणनखसकललक्षणलक्षितकूर्मोन्नतपादैः॥२८७॥

[मू] सुसिलिट्ठगूढगुप्फा, एणीजंघा गइंदहत्थोरू।
हरिकडियला पयाहिणसुरसलिलावत्तनाभीया॥२८८॥

[सुश्लिष्टगूढगुल्फा एणीजङ्घा गजेन्द्रहस्तोरवः।
हरिकटीतटाः प्रदक्षिणसुरसलिलावर्तनाभिकाः॥२८८॥]

[मू] वरवइरवलियमज्झा, उन्नयकुच्छी सिलिट्ठमीणुयरा।
कणयसिलायलवच्छा, पुरगोउरपरिहभुयदंडा॥२८९॥

[वरवज्रवलितमध्या उन्नतकुक्षयः श्लिष्टमीनोदराः।
कनकशिलातलवक्षसः पुरगोपुरपरिघभुजदण्डाः॥२८९॥]

[मू] वरवसहुन्नयखंधा, चउरंगुलकंबुगीवकलिया य।
सद्दूलहणू बिंबीफलाहरा ससिसमकवोला॥२९०॥

[वरवृषभोन्नतस्कन्धाः चतुरङ्गुलकम्बुग्रीवाकलिताश्च।
शार्दूलहनवो बिम्बीफलाधराः शशिसमकपोलाः॥२९०॥]

[मू] कुंददलधवलदसणा, विहगाहिवचंचुसरलसमनासा।
पउमदलदीहनयणा, अणंगधणुकुडिलभूलेहा॥२९१॥

[कुन्ददलधवलदशना विहगाधिपचञ्चुसरलसमनासिकाः।
पद्मदलदीर्घनयना अनङ्गधनुःकुटिलभ्रूरेखाः॥२९१॥]

[मू] रइरमणंदोलयसरिससवण अद्धिंदुपडिमभालयला।
भरहाहिवछत्तसिरा, कज्जलघणकसिणमिउकेसा॥२९२॥

[रतिरमणान्दोलकसदृशश्रवणा अर्धेन्दुप्रतिमभालतलाः।
भरताधिपच्छत्रशिरसः कज्जलघनकृष्णमृदुकेशाः॥२९२॥]

[मू] संपुन्नससहरमुहा, पाउसगज्जंतमेहसमघोसा।
सोमा ससि व्व सूरा, व सप्पहा कणयमिव रुइरा॥२९३॥

[सम्पूर्णशशधरमुखाः प्रावृड्गर्जन्मेघसमघोषाः।
सौम्याः शशिन इव सूर्या इव सप्रभाः कनकमिव रुचिराः॥२९३॥

[मू] पाणितलाइसु ससिसूरचक्कसंखाइलक्खणोवेया।
वज्जरिसहसंघयणा, समचउरंसा य संठाणा॥२९४॥

[पाणितलादिषु शशिसूरचक्रशङ्खादिलक्षणोपेताः।
वज्रर्षभसंहननाः समचतुरस्राश्च संस्थानाः॥२९४॥]

[अव] शोणाः = आरक्ता नखा येषु तानि च सकललक्षणलक्षितानि च कूर्मवदुन्नतानि च पदानि पादा इत्यर्थः। तैः संयुक्ता भूत्वा क्षणमात्रेणैव कुष्ठक्षयादिरोगैर्विधुरीक्रियन्ते। यथा राजतनयनृपविक्रमवत् सकलजनशोचनीयाः स्युः। नवमदशमगाथयोः सम्बन्धः–कथं भूतैः पादैः? इत्याह–रक्तोत्पलपत्रवत् कोमलानि तलानि येषु ते तथा, तैः सुश्लिष्टौ गूढौ गुल्मौ चरणमणिबन्धौ येषां ते तथा, एणी तस्या जङ्घा येषां ते, गजेन्द्रस्य हस्तः= करस्तद्वद् वृत्तावनुपूर्वीहीना ऊरू येषां ते, सुरसलिला सुरसरिद् गङ्गेत्यर्थः तस्या जलभ्रमणरूपः सुरसलिलावर्तवन्नाभिर्येषां ते, वरम् = रूपलक्षणसम्पन्नतया प्रधानं वज्रवदिन्द्रायुधवद् वलितं= सङ्क्षिप्तं मध्यं येषां ते, तथोन्नताः कुक्षयः, तथा श्लिष्टं सुसङ्गतं मीनस्येवोदरं येषां ते, कनकशिलावद्विस्तीर्णं वक्षो येषां ते, पुरस्य = नगरस्य गोपुरं = प्रतोलीद्वारं तत्र योऽसौ परिघोऽर्गलास्तद्वत् भुजदण्डो येषां ते,

वरवृषभस्येवोन्नतत्वात् स्कन्धो येषां ते, चतुरङ्गुलप्रमाणा या शंखवद्वृत्तया त्रिरेखाङ्कितत्वेन च तदुपमया ग्रीवया कलितास्ते, शार्दूलस्य = व्याघ्रस्येव हनुः = चिबुकं येषां ते, बिम्बी = गोल्ही[१] तत्फलवदारक्तौ अधरौ येषां ते, शशी = चन्द्रः सम्पूर्णतया कान्तियुक्तत्वेन तत्समौ कपोलौ येषां ते, कुन्ददलवद्धवला दन्ता येषां ते, विहगाधिपो = गरुडस्तच्चञ्चुवत् सरला = समा = सर्वत्राविषमा नासा येषां ते, पद्मदलवद्दीर्घनयना आरोपितानङ्गवचक्रधनुरिव कुटिले भ्रूरेखे येषां ते, रतिरमणः = कामस्तस्यान्दोलकसदृशौ श्रवणौ येषां ते, अर्धेन्दुप्रतिमं भालं येषां ते, पश्चात् पदद्वयस्य कर्मधारयः। भरताधिपश्चक्री तच्छत्राकारं शिरो येषां ते, कज्जलं घनमेघास्तद्वत् कृष्णा मृदवः केशा येषां ते। शेषं सुगमम्॥२९४॥

[मू] लायन्नरूवनिहिणो, दंसणसंजणियजणमणाणंदा।
इय गुणनिहिणो होउं, पढमेच्चिय जोव्वणारंभे॥२९५॥

[लावण्यरूपनिधयो दर्शनसञ्जनितजनमनआनन्दाः।
इति गुणनिधयो भूत्वा प्रथमे एव यौवनारम्भे॥२९५॥]

[मू] तह विहुरिज्जंति खणेण कुट्ठक्खयपमुहभीमरोगेहिं।
जह होंति सोयणिज्जा, निवविक्कमरायतणुओ व्व॥२९६॥

[तथा विधुर्यन्ते क्षणेन कुष्ठक्षयप्रमुखभीमरोगैः।
यथा भवन्ति शोचनीया नृपविक्रमराजतनुज इव॥२९६॥]

[अव] स्पष्टे। भावार्थः कथागम्यः।

[नृपविक्रमकथा]

सा चेयम्–पाटलीपुरे हरितिलको राजा, गौरी राज्ञी, विक्रमः सुतः ३२(द्वात्रिंशत्) लक्षणलक्षितगात्रः स्वर्णवर्णः सौभाग्यनिधिश्चन्द्रमण्डलवत्सकलजनानन्दनो यौवनं प्राप। पित्रैकदिने द्वात्रिंशद् राजकन्याः परिणायितः। भार्यायोग्याः ३२(द्वात्रिंशद्) आवासाः कारिताः। तेषां मध्ये निरूपमविक्रमनृपयोग्यं सप्तभूमं धवलगृहं कारितम्। कुमारो यावता भोगसमर्थः समजनि। तावताकस्मादेव सर्वाङ्गे तस्य गलत्कुष्ठरोगो जातः। तीव्रा शीर्षाक्षिवेदना, दन्तपीडा उदीर्णाः, जातो गलरोगसमुदयः, उत्स्यूना जिह्वा, स्फुटितमोष्ठयुगम्, वहति कर्णयोः पूयप्रवाहः, प्रवृद्धो गण्डमालो, जातो हस्तपादाभ्यां

१. **गिलोडी** इति भाषायाम् अभि. चि. ११८५

स्तम्भः, गलिता अङ्गुल्यः, स्फुटितं नखजालं, प्रकटिताः कासश्वासादिरोगाः, उत्पन्नं कुक्षिशूलं, वृद्धो जलोदरो, प्रसृतः सर्वाङ्गे महादाहः, न तु जातो गुणः केनाप्युपायेन, गता जीविताशा॥ इतश्च धनञ्जययक्षस्य रोगशान्त्यर्थं कुमारो मानयति। अत्रान्तरे केवली समायातः। राजा कुमाररोगहेतुं पृच्छति। ज्ञानी स्माह–"अपरविदेहे रत्नस्थलपुरे पद्माक्षभूपेन कायोत्सर्गस्थमुनिर्बाणेन हतः। स सर्वार्थसिद्धिं गतः। सामन्तादिभिः पापोऽयमिति राजा उत्थापितः। पुत्रस्य राज्यं दत्तम्, राजा एकाकी वने भ्रमति। पुनरन्यं मुनिं दृष्ट्वोपसर्गं कुर्वन्नाह–सुयशा इत्युक्त्वा तेजोलेश्यया दग्धः सप्तमनरकं गतः। तत उद्धृत्य मत्स्यः, पुनः सप्तमनरकम्, एवमेकैकनरके वारद्वयं तिर्यग्भवान्तरितो भ्रान्तोऽनन्तकालम्। ततो नरभवं प्राप्य तापसव्रतमाराध्य अयं तव पुत्रो जातः। भुक्तं बहुकर्म स्तोकैरेव दिनैर्जिनधर्मप्रभावान्नीरोगो भावी।" कुमारः श्रुत्वा सम्यग्दृष्टिर्जातः। नीरोगोऽभूत्। महिष१००(शत)याचनादिना यक्षेण क्षोभितोऽपि न क्षुब्धः। क्रमेण राज्यमासाद्य समये प्रव्रज्य सिद्धः। इति नृपविक्रमकथा॥२९६॥

[मू] अन्ने उण सव्वंगं, गसिया जररक्खसीइ जायंति।
रमणीण सज्जणाण य, हसणिज्जा सोअणिज्जा य॥२९७॥

[अन्ये पुनः सर्वाङ्गं ग्रस्ताः जराराक्षस्या जायन्ते।
रमणीनां सज्जनानां च हसनीयाः शोचनीयाश्च॥२९७॥]

[अव] अन्ये तु तरुणा विभवरूपादिगुणान्विता अपि भूत्वा पश्चादप्यकस्माज्जराराक्षसीग्रस्ताः, रमणीनां हसनीयाः, सज्जनानां शोचनीयाश्च जायन्ते॥२९७॥

अन्ये तु ये विभविनो नयपरा नीतिमन्तश्चेत्यर्थः। तेषामपि केवलं गर्भवासबाल्यत्वे तारुण्यमपि प्रथम एव यौवनारम्भेऽनास्पदमेव[१]। ये तु दारिद्र्योपहता अनीतिमन्तश्च तेषामनीतिमतां परयुवतिरमणपरद्रव्यहरणादिनिरतानां यानी{या}हभवे दुःखानि तानि को वर्णयितुं शक्नोति? इत्याह-

[मू] इय विहवणयपराण वि, तारुण्णं पि हु विडंबणट्ठाणं।
जे उण दारिद्दहया, अनीइमंताण ताणं तु॥२९८॥

[इति विभवनयपराणामपि तारुण्यमपि खलु विडम्बनस्थानम्।
ये पुर्नदारिद्र्यहता अनीतिमतां तेषां तु॥२९८॥]

---

१. विडम्बनास्पदमेव इति वृत्तौ।

[मू] परजुवइरमणपरदव्वहरणवहवेरकलहनिरयाणं।
दुन्नयधणाण निच्चं, दुहाइं को वन्निउं तरइ ?॥२९९॥

[परयुवतिरमणपरद्रव्यहरणवधवैरकलहनिरतानाम्।
दुर्नयधनानां नित्यं दुःखानि को वर्णयितुं शक्नोति ?॥२९९॥

[अव] स्पष्टे॥२९९॥

तदेवमनीतिमतां स्वरूपमुक्तम्। अथ दारिद्र्योपहतानां लेशतो दुःखमुपदर्शय-न्नाह-

[मू] नत्थि घरे मह दव्वं, विलसइ लोओ पयट्टइ छणो त्ति।
डिंभाइ रुयंति तहा[१], हद्धी किं देमि घरिणीए ?॥३००॥

[नास्ति गृहे मम द्रव्यं विलसति लोकः प्रवर्तते क्षण इति।
डिम्भा रुदन्ति तथा हा धिक् ! धिक् किं ददामि गृहिण्यै ?॥३००॥]

[मू] देंति न मह ढोयं पि हु, अत्तसमिद्धीइ गव्विया सयणा।
सेसा वि हु धणिणो परिहवंति न हु देंति अवयासं॥३०१॥

[ददति न मह्यं ढौकमपि खलु आत्मसमृद्ध्या गर्विताः स्वजनाः।
शेषा अपि खलु धनिनः परिभवन्ति न खलु ददति अवकाशम्॥३०१॥]

[मू] अज्ज घरे नत्थि घयं, तेल्लं लोणं वा इंधणं वत्थं।
जाया व अज्ज तउणी, कल्ले किह होहिइ कुडुंबं ?॥३०२॥

[अद्य गृहे नास्ति घृतं तैलं लवणं वा इन्धनं वस्त्रम्।
जातो वा अद्य निर्वाहः कल्ये कथं भविष्यति कुटुम्बम् ?॥३०२॥]

[मू] वड्ढइ घरे कुमारी, बालो तणओ विढप्पइ न अत्थे।
रोगबहुलं कुडुंबं, ओसहमोल्लाइयं नत्थि॥३०३॥

[वर्धते गृहे कुमारी बालस्तनय न उपार्जयति न अर्थान्।
रोगबहुलं कुटुम्बमौषधमूल्यादिकं नास्ति॥३०३॥]

[मू] उक्कोया[२] मह घरिणी, समागया पाहुणा बहू अज्ज।
जिन्नं घरं च हट्टं, झरइ जलं गलइ सव्वं[३] पि॥३०४॥

[उत्कोपा मम गृहिणी समागताः प्राघूर्णका बहवोऽद्य।
जीर्णं गृहं च हट्टं क्षरति जलं गलति सर्वमपि॥३०४॥]

---

१. **घरे** इति पा. प्रतौ।, २. **उड्डोया** इति प्रा. प्रतौ।, ३. **सयलं** इति प्रा. प्रतौ।

[मू] कलहकरी मह भज्जा, असंवुडो परियणो पहू विसमो।
देसो अधारणिज्जो, एसो वच्चामि अन्नत्थ॥३०५॥

[कलहकारिणी मम भार्या असंवृत्तः परिजनः प्रभुर्विषमः।
देशश्च अधारणीय एष व्रजाम्यन्यत्र॥३०५॥]

[मू] जलहिं पविसेमि महिं, तरेमि धाउं धमेमि अहवा वि।
विज्जं मंतं साहेमि देवयं वा वि अच्चेमि॥३०६॥

[जलधिं प्रविशामि महीं तरामि धातुं धमामि अथवापि।
विद्यां मन्त्रं साधयामि देवतां वापि अर्चामि॥३०६॥]

[मू] जीवइ अज्ज वि सत्तू, मओ य इट्ठो पहू य मह रुट्ठो।
दाणिग्गहणं मग्गंति विहविणो कत्थ वच्चामि ?॥३०७॥

[जीवत्यद्यापि शत्रुः मृतश्च इष्टः प्रभुश्च मम रुष्टः।
इदानीं ग्रहणं मार्गयन्ति विभविनः कुत्र व्रजामि ?॥३०७॥]

[मू] इच्चाइ महाचिंताजरगहिया निच्चमेव य दरिद्दा।
किं अणुहवंति सोक्खं ?, कोसंबीनयरिविप्पो व्व॥३०८॥

[इत्यादिमहाचिन्ताज्वरगृहीता नित्यमेव च दरिद्राः।
किमनुभवन्ति सौख्यम् ? कौशाम्बीनगरीविप्र इव॥३०८॥]

[अव] नत्थि. इत्यादि नवगाथाः पाठसिद्धाः।

कथानकं चेदम्-

[सोमिलद्विजकथा]

कौशाम्ब्यां सोमिलो द्विज आजन्मदरिद्रः। भार्यापुत्रपुत्र्यादिकुटुम्बं बहु। अन्यदा धनार्जनाय देशान्तरं गतः। वाणिज्यादिरहितं न भोगं योगिनमद्राक्षीत्। द्विजं चिन्तातुरं पृच्छति। 'का चिन्ता तव?' 'दारिद्र्यं चिन्ताकारि' स आह-'त्वमीश्वरं करोमि, यदहं कथयामि तत् त्वया कार्यम्।' द्वावपि पर्वतनिकुञ्जे गतौ। योग्याह–'एष हेमरसः शीतातपादिसहमानैः शुष्ककन्दमूलफलाशिभिः शमीपत्रपुरैर्मील्यते।' द्वाभ्यामपि ततस्तथैव रसो गृहीतः। भृतं तुम्बम्। निर्गतौ वनात्। योग्याह–"भो! अप्रमत्तेन तुम्बं धार्यं, दुःखेण षण्मासैर्मीलितोऽयं रसः।" इत्येवं पुनः पुनः कथने रुष्टो विप्रः। ढोलितं तुम्बं सागपत्रैः इतस्ततः, क्षिप्तो रसः सर्वो गतस्ततो योग्यन्यत्र तमयोग्यं ज्ञात्वा। गृहागतः

भार्यया निर्भर्त्सितः। गृहान्निष्कासितोः दारिद्र्यदुःखेन निधनमुपगतः। इति सोमिल-द्विजकथा॥३०८॥

तदेवं सर्वप्रकारैस्तारुण्यावस्थायाः सुखाभावमुपदर्श्योपसंहरन् वृद्धावस्थामभि-धातुकाम आह-

[मू] इय विहवीण दरिद्दाण वा वि तरुणत्तणे वि किं सोक्खं ?।
दुहकोडिकुहरं चिय, वुड्ढत्तं नूण सव्वेसिं॥३०९॥

[इति विभविनां दरिद्राणां वापि तरुणत्वेऽपि किं सौख्यम् ?।
दुःखकोटिकुलगृहमेव वृद्धत्वं नूनं सर्वेषाम्॥३०९॥]

[अव] स्पष्टा॥३०९॥

यथा च वृद्धत्वं दुःखकोटिकुलगृहं तथा प्रागेव दर्शितमित्याह-

[मू] एयस्स पुण सरूवं, पुव्विं पि हु वन्नियं समासेणं।
वोच्छामि पुणो किंचि वि, ठाणस्स असुन्नयाहेउं॥३१०॥

[एतस्य पुनः स्वरूपं पूर्वमपि खलु वर्णितं समासेन।
वक्ष्यामि पुनः किञ्चिदपि स्थानस्याशून्यताहेतवे॥३१०॥]

[अव] स्पष्टा। नवरमेतस्य वृद्धत्वस्य पूर्वमशरणत्वभावनायाम् **अह अन्नदिणे.**(गाथा-३४) इत्याद्युक्तत्वात्॥३१०॥

यथाप्रतिज्ञातमेवाह-

[मू] थरहरइ जंघजुयलं, झिज्झइ दिट्ठी पणस्सइ सुइ वि।
भज्जइ अंगं वाएण होइ सिंभो वि अइपउरो॥३११॥

[कम्पते जङ्घायुगलं क्षीयते दृष्टिः प्रणश्यति श्रुतिरपि।
भज्यते अङ्गं वातेन भवति श्लेष्मापि अतिप्रचुरः॥३११॥]

[मू] लोयम्मि अणाएज्जो, हसणिज्जो होइ सोयणिज्जो य।
चिट्ठइ घरम्मि[१] कोणे, पडिउं मंचम्मि कासंतो॥३१२॥

[लोके अनादेयो हसनीयो भवति शोचनीयश्च।
तिष्ठति गृहे कोणे पतित्वा मञ्चे कासन्॥३१२॥]

[अव] स्पष्टा॥३११॥

---

१. **घरस्स** इति पा. प्रतौ।

[मू] वुड्ढत्तम्मि य भज्जा, पुत्ता धूया वधूयणो वा वि।
जिणदत्तसावगस्स व, पराभवं कुणइ अइदुसहं॥३१३॥

[वृद्धत्वे च भार्याः पुत्रा दुहितरो वधूजनो वापि।
जिनदत्तश्रावकस्येव पराभवं करोति अतिदुःसहम्॥३१३॥]

[अव] स्पष्टा। कथा चेयम्-

[जिनदत्तश्रावककथा]

श्रावस्त्यां पुर्यां जिनदत्तः श्राद्धः। समृद्धाश्चत्वारः पुत्राः पित्रा परिणायिता। गृहचिन्तां सर्वां ते कुर्वन्ति। जिनदत्तमित्रं विमलश्रेष्ठी। एकदा जिनदत्तेन मित्रवारितेनापि सर्वापि श्रीः पुत्रायत्ता कृता। पुत्रा व्यवसायाय व्यापृताः। स्वस्वभार्याणां कथयन्ति–पितुः शुश्रूषा कार्या। ताभिः प्रतिपन्नम्। कुर्वन्ति सर्वा अपि श्वशुरस्य। क्रमेण ता निरादरा जाताः। स सीदति। सुतेभ्यः कथयति निजदुःस्थताम्। तेऽपि यावत् तासां कथयन्ति तावता समुदायेन कलकलायमाना वदन्ति–"एष वृद्धो विकलो अस्माकं कृतमपि विपरीतं मन्यते, रतिं न लभते।" ततः पुत्रैरालोच्य प्रच्छन्नमेकः पुरुषः प्रहितः सम्यग् विलोकनाय। ततस्ताभिर्धूर्ताभिर्ज्ञातस्तद्दृष्टौ सारां सविशेषां कुर्वन्ति। सोऽपि तेषां वक्ति–'एता भक्तिं कुर्वन्ति।' सुतैः पिता पुनरपि पृष्टः। वधूनामवज्ञां कथयति। सुतैश्चिन्तितं वृद्धत्वविकलोऽयम्। अन्यदा सुहृदाह–"भप्र(मित्रम्!) प्रागपि मया त्वं वारितः श्रियं तु सुतायत्तां मा कुरु, सम्प्रति किं स्याद्? गते जले कः खलु सेतुबन्धः? इति वचनात्, तथाप्युपायं करिष्यामि येन तव सुखं स्यात्, न पुनर्धर्मव्ययादिकम् एतावता भव्यम्।" ततो मित्रेण गृहे गत्वा टिक्किरीटकान् कृत्वा ग्रन्थो बद्ध्वानीय तस्मै दत्ताः। सोऽपि वृद्धो वध्वाः(वधूं) कथयति–"यन्मया लोभातिरेकात् विटङ्ककसहस्रं सुतानां नार्पितम्, अत्र खट्वाः पादतले निधायमानमस्ति, मम मरणान्तरं त्वया ग्राह्यम्।" सा हृष्टात्यादरेण भक्तिं कुरुते। एवमपरासामपि रहसि तथैवोक्तम्। ता अपि सादरा जाताः। श्रेष्ठी सुखीबभूव। अन्यदा पञ्चत्वं प्राप। सुतैः श्मशाने नीतः। गृहे स्नानवेलायां ज्येष्ठा वधूः ज्वरमिषं कृत्वा गृहमध्ये स्थिता। अन्याः स्नानं कुर्वन्ति। ज्येष्ठा भूमिं खनित्वा धनग्रन्थिं गृह्णाति। तावदन्या अप्यागता मिलिताः कलहायन्ते अन्योऽन्यम्, धनकृते सर्वा अपि धनग्रन्थौ लग्नाः तमाकर्षन्ति। सम्मुखं त्रुटितो ग्रन्थिः। दृष्टा टिक्किरीटङ्काः–अहो! वञ्चिताः स्म इति विलक्षा जाता। वदन्ति–"अहो! अस्मद्भक्तिसदृशमेव कृतं तेन इति॥" इति

जिनदत्तश्रावककथा॥३१३॥

तदेवं गर्भवासबालतारुण्यवार्धक्यलक्षणासु चतसृष्वप्यवस्थासु चिन्त्यमानं मनुष्येष्वपि न किञ्चित् सुखमस्ति। यदपि राजादयः केऽपि आत्मनि तन्मन्यन्ते, तदपि मिथ्याभिमानोपकल्पितमेव, न तु तत्त्वत इति दर्शयति–

[मू] चउसुं पि अवत्थासुं, इय मणुएसुं विचिंतयंताणं।
नत्थि सुहं मोत्तूणं, केवलमभिमाणसंजणियं॥३१४॥

[चतसृष्वपि अवस्थासु इति मनुजेषु विचिन्तयताम्।
नास्ति सुखं मुक्त्वा केवलमभिमानसञ्जनितम्॥२१४॥]

[अव] स्पष्टा॥३१४॥

ननु मनुष्याणामागमे दश दशाः श्रूयन्ते, अत्र तु चतुस्र एवोक्तास्तास्ततः कथं न विरोधः? इत्याह-

[मू] मणुयाण दस दसाओ, जाओ समयम्मि पुण पसिद्धाओ।
अंतब्भवंति ताओ, एयासु वि ताओ पुण एवं॥३१५॥

[मनुजानां दश दशा याः समये पुनः प्रसिद्धाः।
अन्तर्भवन्ति ता एतास्वपि ताः पुनरेवम्॥३१५॥]

[अव] याः पुनः समये एव दश दशा मनुष्याणां प्रसिद्धास्ता एतास्वपि चतसृष्वप्यवस्थास्वन्तर्भवन्ति। ततो न विरोधः। न हि बालतरुणवृद्धत्वेभ्योऽन्यत्र काश्चिद्दशा वर्तते इत्यर्थः॥३१५॥

काः पुनस्ताः? इत्याह। कियत्प्रमाणा? इत्याह-

[मू] बाला किड्डा मंदा, बला य पन्ना य हाइणि पवंचा।
पब्भारमुम्मुही सायणी य दसमी य कालदसा॥३१६॥

[बाला क्रीडा मन्दा बला च प्रज्ञा च हायनी प्रपञ्चा।
प्राग्भारोन्मुखी शायनी दशमी च कालदशाः॥३१६॥]

[अव] स्पष्टा। नवरं किञ्चिल्लिख्यते यथा-
बालस्यै यमवस्था धर्मधर्मिणोरभेदाद् बाला १।
क्रीडाप्रधाना दशा क्रीडा २।

मन्दा विशिष्टबलबुद्धिकार्योपदर्शनासमर्थो भोगानुभूतावेव समर्थो यस्यां दशायां सा मन्दा ३।

यस्यां पुरुषस्य बलं स्यात् सा बलयोगाद् बला ४।

प्रज्ञावाञ्छितार्थसम्पादनकुटुम्बाभिवृद्धिविषया तद्योगाद्दशा प्रज्ञा५।

हापयति पुरुषमिन्द्रियाणि मनाक्स्वार्थग्रहणाप्रभूणि करोति हापनी६॥

प्रपञ्चयति = विस्तारयति खेलकासादि प्रपञ्चा७।

प्राग्भारमीषदवनतमुच्यते तदेव गात्रं यस्यां सा प्राग्भारा८।

मोचनं = मुक् जराराक्षसीसमाक्लान्तशरीरगृहस्य मुचं प्रति मुखमाभिमुख्यं यस्यां सा मुन्मुखी९।

स्वापयति = निद्रायन्तं करोति सा सायनी१०॥३१६॥

[मू] दसवरिसपमाणाओ, पत्तेयमिमाओ तत्थ बालस्स।
पढमदसा बीया उ, जाणेज्जसु कीलमाणस्स॥३१७॥

[दशवर्षप्रमाणाः प्रत्येकमिमास्तत्र बालस्य।
प्रथमदशा द्वितीया पुनः जानीयाः क्रीडतः॥२१७॥]

[मू] तइया भोगसमत्था, होइ चउत्थीए पुण बलं विउलं।
पंचमियाए पन्ना, इंदियहाणी उ छट्ठीए॥३१८॥

[तृतीया भोगसमर्था भवति चतुर्थ्यां पुनर्बलं विपुलम्।
पञ्चम्यां प्रज्ञा इन्द्रियहानिस्तु षष्ठ्याम्॥३१८॥]

[मू] सत्तमियाइ दसाए, कासइ निट्ठुहइ चिक्कणं खेलं।
संकुइयवली पुण अट्ठमीए जुवईण य अणिट्ठो॥३१९॥

[सप्तम्यां दशायां कासति निष्ठीवति स्निग्धं श्लेष्माणम्।
सङ्कुचितवलिः पुनरष्टम्यां युवतीनां चानिष्टः॥३१९॥]

[मू] नवमी नमइ सरीरं, वसइ य देहे अकामओ जीवो।
दसमीएँ सुयइ वियलो, दीणो भिन्नस्सरो खीणो॥३२०॥

[नवम्यां नमति शरीरं वसति च देहे अकामको जीवः।
दशम्यां स्वपिति विकलो दीनो भिन्नस्वरः क्षीणः॥३२०॥]

[अव] शेषा स्पष्टा॥३२०॥

कियद्भ्यो वर्षेभ्यो पुनरूर्ध्वं गर्भं स्त्रियो न धारयन्ति पुमाँश्चाबीजो भवति इति प्रसङ्गतो निरूपयितुमाह-

[मू] पणपन्नाइ परेणं, महिला गब्भं न धारए उयरे।
पणसत्तरीइ परओ, पाएण पुमं भवेऽबीओ॥३२१॥

[पञ्चपञ्चाशतः परेण महिला गर्भं न धारयति उदरे।
पञ्चसप्ततेः परतः प्रायः पुमान् भवेदबीजः॥३२१॥]

[अव] सुगमा॥३२१॥

कियत्प्रमाणायुषामेतन्मानं द्रष्टव्यमित्याह-

[मू] वाससयाउयमेयं, परेण जा होइ पुव्वकोडीओ।
तस्सद्धे अमिलाणा, सव्वाउयवीसभागो उ॥३२२॥

[वर्षशतायुष्कमेतत् परेण या भवति कोटिः।
तस्यार्द्धे अम्लाना सर्वायुष्कविंशतिभागस्तु॥३२२॥

[अव] वर्षशतायुषामैदंयुगीनानाम् एतद्गर्भधारणादिकालमानमुक्तं द्रष्टव्यम्। परेण तर्हि का वार्ता? इत्याह–**परे.।** वर्षशतात् परतो वर्षशतं द्वयं त्रयं चतुष्टयं चेत्यादि यावन्महाविदेहादिमनुष्याणां या पूर्वकोटिः सर्वायुषः स्यात्, तस्य सर्वायुषोऽर्द्धं तदर्द्धम-म्लाना गर्भधारणायोग्या स्त्रीणां योनिर्द्रष्टव्या, पुंसां पुनः सर्वस्यापि पूर्वकोटिपर्यन्त-स्यायुषो विंशतितमो भागोऽबीजः॥३२२॥

[मू] तम्हा मणुयगईए, वि सारं पेच्छामि एत्तियं चेव।
जिणसासणं जिणिंदा, महरिसिणो नाणचरणधणा[१] ॥३२३॥

[तस्माद् मनुजगतावपि सारं पश्यामि इयदेव।
जिनशासनं जिनेन्द्रा महर्षयो ज्ञानचरणधनाः॥३२३॥]

[मू] पडिवज्जिऊण चरणं, जं च इहं केइ पाणिणो धन्ना।
साहंति सिद्धिसोक्खं, देवगईए व वच्चंति॥३२४॥

[प्रतिपद्य चरणं यच्च इह केऽपि प्राणिनो धन्याः।
साधयन्ति सिद्धिसौख्यं देवगतौ वा व्रजन्ति॥३२४॥]

---

१. धरा इति पा. प्रतौ।

[मू] तेणेव पगइभद्दो, विणयपरो विगयमच्छरो सदओ।
मणुयाउयं निबंधइ, जह धरणीधरो सुनंदो य॥३२५॥

[तेनैव प्रकृतिभद्रो विनयपरो विगतमत्सरः सदयः।
मनुजायुष्कं निबध्नाति यथा धरणीधरः सुनन्दश्च॥३२५॥]

[अव] स्पष्टा। भावार्थः कथानकगम्यः तदिदम्-

[धरणीधरसुनन्दकथा]

श्रीपुरनगरे धरणीधरसुनन्दौ गृहपती प्रकृतिभद्रौ विनीतौ सरलौ दानिनौ दयापरौ। अन्यदा दयया साधुं भिल्लैरूपद्रूयमाणं मोचितवन्तौ क्रमेण मृत्वा वीरपुरे वज्रसिंहभूपस्य रुक्मिणीदेव्याः कुक्षौ तौ पुत्रावुत्पन्नौ। तस्याः सामन्तरुधिरपूर्णकुण्डस्नानदोहदः सञ्जातः। स अलक्तकरसेनापूरिष्ट। तत्कुण्डस्नानोत्तीर्णा च देवी भारण्डेन मांसबुद्ध्यापहृता। अरण्ये नीता सा उटजे स्थिता सुतद्वयं प्रसूता। सिंहसिन्धुराभिधानौ तौ जातौ प्रौढौ हस्तिव्याघ्रादिभिः समं क्रीडतः। अन्यदा वशीकृतश्वेतगजेन्द्रारूढौ तौ पल्लीपतिभील्लाभिभूयमानं कञ्चित् सार्थवाहं विमोच्य पल्लीशं हत्वा स्वयं तत्र स्वामिनौ जातौ। जनन्या सहितौ राज्यं कुरुतः। अन्यदा तत्प्रसिद्धिं ज्ञात्वा वज्रसिंहो राजा श्वेतगजं दूतप्रेषणेन याचते। तौ ते नार्पयतः। वज्रसिंहः सर्वबलेन तत्रागात्। द्वावपि तौ युद्धाय सम्मुखं चलतः। माता निवारयति। वत्सौ युवयोरसौ पिता। सर्वं स्वरूपं प्रोक्तम्। ततस्तौ सविशेषं युद्धायाभिमुखं गतौ राजानं जित्वा पादयोः पतितौ। जातः सर्वेषां हर्षः। राजा तयो राज्यं दत्त्वा प्राव्राजीत्। तावेकच्छत्रं राज्यं कृत्वा गुरुपार्श्वे प्रव्रज्य तपः कृत्वा सिद्धौ। इति धरणीधरसुनन्दाख्यानम्॥३२५॥ मनुष्यगतेरवचूरिः॥

मनुष्येभ्यश्च समृद्ध्यायुष्कादिभिर्देवाः प्रधाना इति मनुष्यगतेरुपरि देवगतिं बिभणिषुराह-

[मू] देवगइं चिय वोच्छं, एत्तो भवणवइवंतरसुरेहिं।
जोइसिएहिं वेमाणिएहिं जुत्तं समासेण॥३२६॥

[देवगतिं चैव वक्ष्ये इतो भवनपतिव्यन्तरसुरैः।
ज्योतिष्कैर्वैमानिकैर्युक्तां समासेन॥३२६॥]

[अव] सुगमा॥३२६॥

[मू] दसविहभवणवईणं, भवणाणं होंति सव्वसंखाए।
कोडीओ सत्त बावत्तरीए लक्खेहिं अहियाओ॥३२७॥

[दशविधभवनपतीनां भवनानां भवन्ति सर्वसङ्ख्यया।
कोट्यः सप्त द्विसप्तत्या लक्षैरधिकाः॥३२७॥]

[अव] भवनपतयश्च दशधा भवन्ति। तेषां भवनानां द्विसप्ततिलक्षाधिकाः सप्त कोटयो भवन्ति। तेषां भवनपतीनां दशधात्वमित्थं भावनीयम्।

असुरा[१] नाग[२] सुवन्ना[३], विज्जू[४] अग्गी[५] अ दीव[६] उवही[७] अ।
दिसि[८] पवण[९] थणिअ[१०] दसविह, भवणवई तेसि दु दु इंदा॥

(बृहत्सङ्ग्रहणी-१९)

दसभेआ हुंति भवणवइ त्ति[१]॥३२७॥

अथ भवनानां एवं संस्थानादिस्वरूपमाह-

[मू] ताइं पुण भवणाइं, बाहिं वट्टाइं होंति सयलाइं।
अंतो चउरंसाइं, उप्पलकन्नियनिभा हेट्ठा॥३२८॥

[तानि पुनर्भवनानि बहिर्वृत्तानि भवन्ति सकलानि।
अन्तः चतुरस्राणि उत्पलकर्णिकानिभानि अधः॥३२८॥]

[मू] सव्वरयणामयाइं, अट्टालयभूसिएहिं तुंगेहिं।
जंतसयसोहिएहिं, पायारेहिं व गूढाइं॥३२९॥

[सर्वरत्नमयानि अट्टालकभूषितैस्तुङ्गैः।
यन्त्रशतशोभितैः प्राकारैरिव गूढानि॥३२९॥]

[मू] गंभीरखाइयापरिगयाइं किंकरगणेहिं गुत्ताइं[२]।
दिप्पंतरयणभासुरनिविट्ठगोउरकवाडाइं॥३३०॥

[गम्भीरखातिकापरिगतानि किङ्करगणैर्गुप्तानि।
दीप्यमानरत्नभास्वरनिविष्टगोपुरकपाटानि॥३३०॥]

---

१. असुरा१ नाग२ सुवन्ना३ विज्जू४ अग्गी५ अ दीव६ उदही७ अ दिसि८ वाउ तहा९ थणिआ१० दसभेआ हुंति भवणवई॥ इति हेम. मल. वृत्तौ। तथा स्तनिता दशभेदा भवन्ति भवनपतयः॥

२. **गुत्ताहिं** इति पा. प्रतौ।

[मू] दारपडिदारतोरणचंदनकलसेहिं भूसियाइं च।
रयणविणिम्मियपुत्तलियखंभसयणासणेहिं च॥३३१॥

[द्वारप्रतिद्वारतोरणचन्दनकलशैर्भूषितानि च।
रत्नविनिर्मितपुत्तलिकास्तम्भशयनासनैश्च॥३३१॥]

[मू] कलिहाइ रयणरासीहि दिप्पमाणाइ सोमकंतीहि।
सव्वत्थ विइन्नदसद्धवन्नकुसुमोवयाराइं॥३३२॥

[कलितानि रत्नराशिभिर्दीप्यमानानि सौम्यकान्तिभिः।
सर्वत्र विकीर्णदशार्धवर्णकुसुमोपचाराणि॥३३२॥]

[मू] बहुसुरहिदव्वमीसियसुयंधगोसीसरसनिसित्ताइं।
हरिचंदणबहलथबक्कदिन्नपंचंगुलितलाइं॥३३३॥

[बहुसुरभिद्रव्यमिश्रितसुगन्धगोशीर्षरसनिषिक्तानि।
हरिचन्दनबहलस्तबकदत्तपञ्चाङ्गुलितलानि॥३३३॥]

[मू] डज्झंतदिव्वकुंदुरुतुरुक्ककिण्हगुरुमघमघंताइं।
वरगंधवट्टिभूयाइं सयलकामत्थकलियाइं॥३३४॥

[दह्यमानदिव्यकुन्दुरुतुरुष्ककृष्णागरुमघमघायमानानि।
वरगन्धवर्तिभूतानि सकलकामार्थकलितानि॥३३४॥]

[मू] पुक्खरिणीसयसोहिय, उववणउज्जाणरम्मदेसेसु।
सकलत्तामरनिव्विवरविहियकीलाससहस्साइं॥३३५॥

[पुष्करिणीशतशोभितोपवनोद्यानरम्यदेशेषु।
सकलत्रामरनिर्विवरविहितक्रीडासहस्राणि॥३३५॥]

[मू] ठाणट्ठाणारंभियगेयज्झुणिदिन्नसवणसोक्खाइं।
वज्जंतवेणुवीणामुइंगरवजणियहरिसाइं॥३३६॥

[स्थानास्थानारब्धगेयध्वनिदत्तश्रवणसौख्यानि।
वाद्यमानवेणुवीणामृदङ्गरवजनितहर्षाणि॥३३६॥]

[मू] हरिसुत्तालपणच्चिरमणिवलयविहूसियऽच्छरसयाइं।
निच्चं पमुइयसुरगणसंताडियदुंदुहिरवाइं॥३३७॥

[हर्षोत्तालप्रनृत्यन्मणिवलयविभूषिताप्सरःशतानि।
नित्यं प्रमुदितसुरगणसन्ताडितदुन्दुभिरवाणि॥३३७॥]

[मू] दसदिसिविणिग्गयामलरविसमहियतेयदुरवलोयाइं।
बहुपुन्नपावणिज्जाइं पुन्नजणसेवियाइं च॥३३८॥

[दशदिग्विनिर्गतामलरविसमधिकतेजोदुरवलोकानि।
बहुपुण्यप्रापणीयानि पुण्यजनसेवितानि च॥३३८॥]

[मू] पत्तेयं चिय मणिरयणघडियअट्ठसयपडिमकलिएणं।
जिणभवणेण पवित्तीकयाइं मणनयणसुहयाइं॥३३९॥

[प्रत्येकं चैव मणिरत्नघटिताष्टशतप्रतिमाकलितेन।
जिनभवनेन पवित्रीकृतानि मनोनयनसुखदानि॥३३९॥]

[अव] इत्येकादशगाथाः स्पष्टार्थाः। नवरं बहिर्वृत्तानीत्यादीनि मनोनयनसुखकराणीत्येतत्पर्यन्तानि भवनानां विशेषणानि। तत्र च दीप्यमानरत्नभासुराणि निविष्टानि गोपुरेषु प्रतोलीद्वारेषु कपाटानि। तथा द्वारेषु प्रतिद्वारेषु च तोरणैश्चन्दनकलशैश्च भूषितानि। तथा रत्नविनिर्मितैः पुत्तलिकाशयनासनेषु शोभितानि। तथा रत्नराशिभिः कलितानि सौम्यकान्तिभिर्दीप्यमानानि वितीर्णो = दत्तो दशार्द्धवर्णैः कुसुमैरुपचारो येषु तानि। बहुसुरभिद्रव्यमिश्रितेन सुगन्धगोशीर्षश्रीखण्डरसेन निषिक्तानि। हरिचन्दनस्य बहलस्तबकैर्दत्तानि पञ्चाङ्गुलितलानि येषु। एवं सुखोन्नेयमिति। शेषाः सुगमार्थाः॥३३९॥

अथ व्यन्तराणां नगरसङ्ख्यामाह-

[मू] तह चेव संठियाइं, संखाईयाइं रयणमइयाइं।
नयराइ वंतराणं, हवंति पुव्वुत्तरूवाइं॥३४०॥

[तथा चैव संस्थितानि सङ्ख्यातीतानि रत्नमयानि।
नगराणि व्यन्तराणां भवन्ति पूर्वोक्तरूपाणि॥३४०॥]

[अव] बहिर्वृत्तान्यन्तश्चतुरस्राण्यधस्तु पद्मकर्णिकानि भवनानि यथा प्रोक्तानि तथैवैतान्यपि संस्थितानि केवलं सङ्ख्यायामेतान्यसङ्ख्येयानि द्रष्टव्यानि। शेष स्वरूपं पूर्ववदिति॥३४०॥

अथ ज्योतिष्कविमानान्याह-

[मू] फलिहरयणामयाइं, होंति कविट्ठद्धसंठियाइं च।
तिरियमसंखेज्जाइं, जोइसियाणं[१] विमाणाइं॥३४१॥

[स्फाटिकरत्नमयानि भवन्ति कपित्थार्द्धसंस्थितानि च।
तिर्यगसङ्ख्येयानि ज्योतिष्काणां विमानानि॥३४१॥]

---

१. **जोइसियाइं** इति पा. प्रतौ।

[अव] यस्मात्तिर्यल्लोके, बहिरेतानि [न] भवन्तीत्यर्थः॥३४१॥

अथ सङ्ख्यया वैमानिकदेवानां विमानानि निरूपयितुमाह-

[मू] तेवीसाहिय सगनउइसहस्स चुलसीइसयसहस्साइं।
वेमाणियदेवाणं, होंति विमाणाइं सयलाइं॥३४२॥

[त्रयोविंशत्यधिकानि सप्तनवतिसहस्राणि चतुरशीतिशतसहस्राणि।
वैमानिकदेवानां भवन्ति विमानानि सकलानि॥३४२॥]

[अव] एतानि यथाक्रमं सौधर्मादिषु इत्थं ज्ञेयानि।

बत्तीसट्ठावीसा, बार अड चउरो सयसहस्सा य।
चत्ता[१]चत्तालीसा, छच्च सहस्सा सहस्सारे॥ (बृहत्सङ्ग्रहणी-९२)
आणयपाणयकप्पे, चत्तारिसयारणाचुए तिन्नि।
सत्त विमाणसयाइं, चउसु एएसु कप्पेसु॥ (त्रै.दी.-३१०,१५८)
सत्त विमाणसयाइं, चउसु एएसु कप्पेसु॥ (त्रै.दी.-३१०,१५८)
एकारसोत्तर हिट्ठमए सत्तोत्तरं च मज्झिमए।
सयमेगं उवरिमए, पंचेव अणुत्तरविमाणे॥[२]

एतैः सर्वैर्मिलितैर्यथोक्तसङ्ख्या भवति। अथ एतेषामेव विस्तरादिस्वरूपमाह-

[मू] संखेज्जवित्थराइं, होंति असंखेज्जवित्थराइं च।
कलियाइं रयणनिम्मियमहंतपासायपंतीहिं॥३४३॥

[सङ्ख्येयविस्तराणि भवन्त्यसङ्ख्येयविस्तराणि च।
कलितानि रत्ननिर्मितप्रासादमहापङ्क्तिभिः॥३४३॥]

[मू] धयचिंधवेजयंतीपडायमालाउलाइं रम्माइं।
पउमवरवेइयाइं, नाणासंठाणकलियाइं॥३४४॥

[ध्वजचिह्नवैजयन्तीपताकामालाकुलानि रम्याणि।
पद्मवरवेदिकानि नानासंस्थानकलितानि॥३४४॥]

---

१. **पण्णा** इति मु. अ.

२. द्वात्रिंशदष्टाविंशतयः द्वादशाष्टौ च चत्वारि च शतसहस्राणि। चतुश्चत्वारिंशत् षट् च सहस्राणि सहस्रारे॥ आनतप्राणतकल्पयोः चत्वारि शतान्यारणाच्युतयोः त्रिणि। तत्र विमानशतानि चतुःस्वप्येतेषु कल्पेषु॥ एकादशोत्तरमधस्तने सप्तोत्तरं च मध्यमके। शतमेकमुपरिमके पञ्चैवानुत्तरविमाने॥

[मू] वन्नियभवणसमिद्धीओऽणंतगुणरिद्धिसमुदयजुयाइं।
सुणमाणाण वि सुहयाइं सेवमाणाण किं भणिमो ?॥३४५॥

[वर्णितभवनसमृद्धयोऽनन्तगुणसमृद्धिसमुदययुतानि।
शृण्वतामपि सुखदानि सेवमानानां किं भणामः ?॥३४५॥]

[अव] प्राकाररूपा पद्मवरवेदिका विद्यते येष्वित्यर्थः। वृत्तचतुरस्रादिभिर्नानासंस्थानैः कलितानि। शेषं निगूढार्थम्॥३४५॥

निरूपिता लेशतो देवलोकाः। अथ येन कृतेन जीवास्तेषूत्पद्यन्ते। तदाह-

[मू] छउमत्थसंजमेणं, देसचरित्तेणऽकामनिज्जरया।
बालतवोकम्मेण य, जीवा वच्चंति दियलोयं॥३४६॥

[छद्मस्थसंयमेन देशचारित्रेणाकामनिर्जरया।
बालतपःकर्मणा च जीवा व्रजन्ति देवलोकम्॥३४६॥]

[अव] छद्मस्थानां संयमः तेन जीवा देवलोकं व्रजन्ति। निवृत्तछद्मानो जीवा मोक्षमेव यान्ति इति छद्मस्थ-संयमग्रहः। तथा देशविरत्याकामस्यानभ्युपगमवतो निर्जरतयाकामनिर्जरया बालतपःकर्मणा च देवलोकं जीवा गच्छन्ति।

अथ क्रमेणोदाहरणानि प्राह-

[मू] सेयवियानरनाहो, सेट्ठी य धणंजओ विसालाए।
जंबूतामलिपमुहा, कमेण एत्थं उदाहरणा॥३४७॥

[श्वेतम्बिकानरनाथः श्रेष्ठी च धनञ्जयो विशालायाम्।
जम्बुकतामलीप्रमुखाः क्रमेणात्रोदाहरणानि॥३४७॥]

[अव] छद्मस्थसंयमेन श्वेताम्बिकानरनाथो दिवमुपययौ। देशविरत्या तु धनञ्जयः श्रेष्ठी। अकामनिर्जरया जम्बुकः शृगालः। बालतपःकर्मणा तामलिश्रेष्ठी। प्रमुखग्रहणेनामी, अनन्ताः सर्वत्रान्येऽपि द्रष्टव्याः। अथ क्रमेणैतेषां कथानकानि तेषु प्रथमं-

[श्वेताम्बिकाराजकथा]

यथा श्वेताम्बिकापुर्यां विजयो राजा। सागरमित्रः श्रेष्ठी। स एकदा जलधौ धनार्जनाय पोतेन व्रजन् मार्गे क्वापि द्वीपे शून्येऽनलग्रहणार्थमुत्तीर्णः। तत्र निरुपमरूपं बालकं गृहीत्वा स्वपुरे क्रमेणायातः। तस्य बालकस्य सागरदत्त इति नाम कृतम्।

जातोऽष्टवार्षिकः। राजपुत्रोचितक्रीडया क्रीडति। शिक्षिताः सर्वाः कला धनुर्वेदादिकाः। जातस्तस्य सुयशा नृपपुत्रो मित्रम्। तेन सह राजसभायां याति। राज्ञापि तस्य कलाकौशलं गुणांश्च दृष्ट्वा गुणसागर इति नाम दत्तम्। सुताया रत्नवत्यास्तत्र कुमारेऽनुरागो जातः। स्थाने मत्पुत्र्या अनुराग इति राजापि हृष्टः। परं तस्य कुलगोत्राद्यपरि ज्ञानाद्विषण्णः। इतश्च केनापि गुणसागरोऽपहृत्याम्बुधौ क्षिप्तो, रत्नवती क्वापि पर्वते मुक्ता जलनिधौ अपतत्। दैवयोगाद् धरणेन्द्रेण दृष्टो गृहीतभणितश्च, "भद्र! रोहितकपुरे धरणो राजा, धनदत्तो मन्त्री। एकदा येन नन्दनव्यवहारिणं दण्डितवान्। धनापहारो जातो ग्रहिलो नन्दनः। अन्यदा राजा स्थाविराचार्याणां पार्श्वे धर्मं श्रुत्वा प्रवव्राज, धनदत्तोऽपि। द्वावपि तपः कुरुतः। धनदत्तोऽहं मृत्वा धरणेन्द्रो जातः। राजा तु मम सामानिकः। स च ततश्च्युत्वा कुशस्थल-पुरेऽभिचन्द्रस्य पुत्रो जातः। इतश्च नन्दनश्रेष्ठी कालेन स्वस्थीभूतस्तापसव्रतं पालयित्वा सौधर्मे देवो जातः। पूर्ववैरेण तेन स बालोऽपहृत्याम्बुधौ द्वीपान्तर्मुक्तः। स च त्वं सागरश्रेष्ठिना प्राप्तः पुनरपि तेन देवेन सम्प्रत्यत्र क्षिप्तः। रत्नवती तु पर्वते। तत्र सा विद्याधरेण दृष्टा प्रार्थ्यमानापि सा तं नेच्छति त्वदेकचित्ता।" इत्युक्त्वा धरणेन्द्रेण पूर्वभवस्नेहेन पठितसिद्धा विद्या दत्ताः प्रभूतास्तस्मै। तेन विद्याबलेन विमानं कृत्वा आरुह्य च तत्र पर्वते खेचरं जित्वा रत्नवतीयुतः स्वपुरमागतः। रत्नवती परिणीता। इतश्च केवली तत्रायातः। राज्ञा गुणसागरस्य कुलादि पृष्टः सन् यथा धरणेन्द्रेणोक्तं तथैवोक्तवान्। राजा हृष्टः। गुणसागराय राज्यं दत्त्वा सपुत्रस्तपस्यां ललौ। ज्ञानिना प्रोक्तं श्रुत्वाभिचन्द्रोऽपि स्वराज्यं तस्मै दत्त्वा व्रतमादत्त। गुणसागरो राज्यद्वयं कुरुते। अन्यदा वान्तमाहारं श्वानं भुञ्जानं दृष्ट्वा राज्ञाचिन्ति-

वंताइं धीरेहिं रज्जाइं[1] हरिसिउं अ भुंजामि।
अच्छरियं जं पुरिसं भणन्ति मं सुणयचरिअं पि॥ (८२)
ता इण्हिं पि हु मग्गं ताण य वज्जामि धीरपुरिसाणं।
इहरा निरत्थयं चिअ भमिहामि भवं महाघोरं॥[2] (८५)

(हेम.मल.वृत्ति)

---

१. अत्र मु.अ. प्रतौ एवंरूपः पाठः दृश्यते- **अहयं पि तारिसो च्चिय वंताइं वीरपुरुसेहिं** ॥८१॥
रज्जाइं जेण भुंजामि तुट्ठचित्तो अचिंतियसरूवो। अच्छरियं जं पुरिसं भणन्ति मं सुणयचरिअं पि ॥८२॥

२. वान्तानि धीरैः राज्यानि हर्षित्वा च भुनज्मि। आश्चर्यं यत्पुरुषं भणन्ति माम् श्वचरितमपि॥
ततः इदानीमपि खलु मार्गं तेषां प्रव्रजामि धीरपुरुषाणाम्। इतरथा निरर्थकं चैव भ्रमिष्यामि भवं महाघोरम् ॥

ततः पुत्राय राज्यं दत्त्वा प्रवव्राज। अधीतसूत्रार्थः एकाकिप्रतिमामाप्रपन्नो दृष्टस्तेन सुरेण वैरिणा स प्रतिमास्थः। प्रारब्धा रौद्रा उपसर्गाः। स तूपशमश्रेणिमारुढो एकादशं गुणस्थानं प्राप। मृत्वानुत्तरविमाने देवो जातः। ततो विदेहे सिद्धिं गमी।

छउमत्थसंजमेणं उत्तमदेवत्तमेव सम्पत्तो।
केवलसंजमिणो च्चिअ जीवा सिज्झन्ति सव्वेवि॥[१] (११०)

(हेम.मल.वृत्ति)

॥इति श्वेताम्बिकाराजकथा॥

देशचारित्रेण देवतापौ धनञ्जयश्रेष्ठिकथा

[धनञ्जयश्रेष्ठिकथा]

कुणालायां श्रीतनयश्रेष्ठी। तस्य चत्वारः पुत्राः। तेषु लघीयान् धनञ्जयनामा विनयादिगुणवान् अध्यापकपार्श्वे शाकिनीयोगिनीभूतादिनिग्रहकारिणी विद्या अधीतवान्। अन्यदा यौवनं प्राप्तः। स पुरमध्ये भ्रमन् गतो द्यूतपार्श्वे द्रम्मपञ्चशतीं हारयित्वा गृहमायातः। पित्रापि निर्भर्त्स्य वस्त्रालङ्काराद्युद्वास्य कोपीनवसनः कृतः। हसितो भातृजायादिभिः स्वार्जितान्येव वस्त्राणि परिधास्यामीति प्रतिज्ञातवान्। निर्गतो गेहाद् वल्कलवसनः फलाहारो भ्रमन् विशालापुर्यामासन्नो रात्रौ वृक्षकोटरं प्रविश्य स्थितः। इतश्च षोडश स्त्रियः कृत्तिकाकरा वृक्षादवतीर्य भूमौ प्राप्ताः। एकश्च साकारस्तरुणः सुरूपपुरुषो निगडितकरचरणस्तत्रानीतस्ताभिः। तास्तं वदन्ति "अरे इष्टदेवतं स्मर" इति धनञ्जयः पश्यति। कृपया कोटरान्निग्रहकरीं विद्यां स्मृत्वा सर्वा योगिन्यः खरीकृताः। मोचितः स स्माह–"भद्र ! प्रविशालानगरीशस्यारिसिंहस्य सुतोऽहमिन्द्रनाम एताभिर्योगिनीभिर्बद्ध्वात्रानीतः ततस्त्वया मोचितः।" ततः स सर्वा खरीः हक्कयित्वा नृपसुतेन सह विशालायां गतः। प्रतोलीद्वारे वाणिज्यकारकाणां खरीः मूल्येन समर्पयति। इन्द्रकुमारः पुत्रमरणशोकार्तं निजकुटुम्बं स्वदर्शनेन यथास्थितस्वरूपकथनेन प्रत्याययति। सर्वे नृपादयो हृष्टाः। धनञ्जयेन कृपया योगिन्यो मुक्ताः। गतास्ता देशान्तरम्। इन्द्रो धनञ्जयसङ्गत्या साधुपार्श्वे धर्मं श्रुत्वा श्राद्धो जातः। द्वावपि धर्मं कुरुतः। अन्यदेन्द्रो राजा जातः। धनञ्जयो मन्त्री जातः। प्रभूतपरि-

१. छद्मस्थसंयमेन उत्तमदेवत्वमेव सम्प्राप्तः। केवलसंयमिनश्चैव जीवा: सिद्ध्यन्ति सर्वेऽपि॥

ग्रहारम्भादिभयादनिच्छन्नपि धनञ्जयः श्राद्धधर्ममाराध्याच्युते द्वाविंशति-सागरायुर्देवो जातः॥ इति धनञ्जयश्रेष्ठिकथा॥

[अव] अकामनिर्जरया देवत्वावाप्तौ जम्बुककथा-

[जम्बुककथा]

मथुरायां जितशत्रु राजा, तस्य काली नाम्नी वेश्या पट्टराज्ञी। तत्पुत्रः कालकुमारः सर्वान्यायकुलगृहम्।

निच्चं[1] हरइ धणाइं, जणस्स पाडइ घरेसु खत्ताइं।
लुट्टइ वट्टासु जणं, धारइ बंदेसु गहिऊणं॥६॥
विद्धंसइ नारिजणं, बला वि गिण्हेइ सारवत्थूणि।
कालो च्चिअ पच्चक्खो, अहिए च्चिय वट्टइ जणस्स॥७॥ [2]

(हेम.मल.वृत्ति)

अन्यदा धवलगृहस्थो वनस्थजम्बुकशब्दं श्रुत्वा स्वजनै जम्बुकं बद्ध्वा आनाय्य कशादिभिस्ताडयति। खिं खिं कुर्वाणो जम्बुको मृत्वाकामनिर्जरया देवो जातः। इतश्च पौरैः कुमारस्य अन्याया राज्ञे विज्ञप्ताः। राजा राज्ञीदाक्षिण्यात् किमपि न कथयति। तद्व्यतिकरं ज्ञात्वा सविशेषं जनानुपाद्रवत्। अन्यदा साधूनामुपाश्रये गतः, भीताः साधवः व्याख्यानं मुक्त्वा मौनेन स्थिताः। ततः कालः पृच्छति धर्मम्। गुरवः कथयन्ति-

नरएसु महारंभेण तह महाधणपरिग्गहेणावि।
पंचिंदिअहिंसाए, कुणिमाहारेण वच्चंति॥२२॥
मायासीलत्तेण य कुडतुलाकूडमाणकरणेणं।
कूडक्कयाइअलिएण, जंति सीआलाइतिरिएसु॥२३॥
अंधा बहिरा दुंटा, परसंतावेण हुंति मणुएसु।
देवेसु अ दोहग्गं किब्बिसियत्ताइ पावंति॥२४॥

---

१. **'तत्तो ह'** इति मु. अ.।

२. नित्यं हरति धनानि जनस्य गृहेषु पातयति क्षात्राणि। लुण्टयति वर्त्मसु जनान् रोधयति बन्धेषु गृहीत्वा॥ विध्वंसयति नारीजनं बलादपि गृह्णाति सारवस्तूनि। कालश्चैव प्रत्यक्षः अहिते चैव वर्तते जनस्य॥

इअ पावकारिणो परिभमंति पुणरुत्तमेव भवचक्के।
दुःखेहिं अणंतेहिं तिव्वेहिं सया न मुंचंति॥२५॥[1] (हेम.मल.वृत्ति)

इति गुरुभाषितं श्रुत्वा कालश्चिन्तयति। स्तोकान्येवैतैः पापस्थानान्युक्तानि, मया तु बहूनि कृतानि, ततोऽवश्यं मया नरक एव गन्तव्यमिति संवेगमापन्नः पितरं तपस्यार्थमापृच्छति। 'अहो! शृङ्गेण शृङ्खलोत्तीर्णः, निर्गच्छत्वेष रोगः' इति पित्रोत्साहितः प्रवव्राज। गीतार्थो जातः। हरिषा(अर्शो) रोगार्तो भेषजं न कुरुते। निष्प्रतिकर्मशरीर एकाकी विहारं प्रपन्नः। मुग्मिल्लगिरौ(मुद्गशैलनगरे) प्राप्तः। तत्र तस्य भगिनीपतिर्नृपो देव्या सह वन्दनायागतः। ततो देव्या तस्य रोगो ज्ञातः कथमपि पृष्ट्वा तदपहरणचूर्णमिश्रभक्तं दत्तम्। स न वेत्ति पतितान्यशींसि। निर्विण्णो भक्तं प्रत्याख्याति। जम्बुकदेवेन शृगालीभूय पूर्ववैरेण कदर्थितः सम्यगधिसह्य देवो जातः॥ इति जम्बुकाख्यानकम्॥

बालतपःकर्मणि तामलिप्त्यां तामलिप्तश्रेष्ठिकथा।

[तामलिप्तश्रेष्ठिकथा]

तामलिर्गृहपतिः। स वृद्धः ज्येष्ठपुत्रे कुटुम्बभारं न्यस्य तापसः षष्ठतपस्कारकः पारणे जलचरस्थलचरखचराणां भागत्रयं दत्त्वावशिष्टं तुर्यभागं (२१) एकविंशतिवारं जलधौतं भुञ्जानो षष्टिवर्षसहस्राणि बालतपः कृत्वा प्रान्ते गृहीतावानः(नशनः) बलीन्द्रमरणे बलिचञ्चाराजधानीदेवदेवीभिर्निदानाय भृशं लोभ्यमानोऽपि निदानमकृत्वा ईशानेन्द्रो जातः। तच्छरीरावज्ञां कुर्वाणा असुरा ईशानेन्द्रेण भाषिताः स्वस्थानं प्रापुः॥ इति तामलिप्तश्रेष्ठिकथा॥

[मू] अन्ने वि हु खंतिपरा, सीलरया दाणविणयदयकलिया।
पयणुकसाया भुवणो, व्व भद्दया जंति सुरलोयं॥३४८॥

[अन्येऽपि खलु क्षान्तिपराः शीलरता दानविनयदयाकलिताः।
प्रतनुकषाया भुवन इव भद्रका यान्ति परलोकम्॥३४८॥]

---

१. नरकेषु महारम्भेण तथा महाधनपरिग्रहेणापि। पञ्चेन्द्रियहिंसया कुणिमाहारेण व्रजन्ति॥
मायाशीलत्वेन कूटतुलाकूटमानकरणेन। कूटक्रीताद्यलिकेन यान्ति श्वानादितिर्यक्षु॥
अन्धा बधिराः परसन्तापेन भवन्ति मनुजेषु। देवेष्वपि दौर्भाग्यं किल्बिषिकत्वादि प्राप्नुवन्ति॥
इति पापकारिणः परभ्रमन्ति पुनरावृत्त्यैव भवचक्रे। दुःखैरनन्तैः तीव्रैः सदा न मुच्यन्ते॥

[अव] सुगमा॥ कथेयम्-

[भुवनव्यवहारिकथा]

यथा-काम्पिल्यपुरे कुशस्थलश्रेष्ठी। तस्य चत्वारः पुत्राः। कनीयान् भुवनो यथोक्तगुणवान्। अन्यदा वृद्धैर्बन्धुभिः "दानव्यसनं त्यज" इति तस्योक्तम्। "नो चेत् पृथग् भव।" स ऊचे "दानं न त्यजामि, पृथग् भविष्यामि।" पितरि वारयत्यपि तैः पृथक्कृतः। ते भागं धनस्यार्पयन्ति। स न लाति। वृद्धाः प्राहुः–"भागं तर्हि ह्रदे क्षिप्यते, वयं न स्थापयामः।" ततस्तेन गृहीतो भागः। सर्वधनं धर्मे व्ययित्वा एकं जीर्णप्रासादमुद्धृत्य स्वबलेन धनार्जनाय देशान्तरं गतः। एको योगी मिलितः। स भुवनं प्राह "त्वामीश्वरं करोमि" इति। ततो कल्पप्रमाणेन द्वावपि गिरिविवरे प्रविष्टौ। तत्रैकं देवं बहुदेवपरिवृतं पश्यतः। योगी क्षुब्धो देवेन दूरे क्षिप्तः। अक्षुब्धं भुवनं स प्राह–"यस्त्वया प्रासादः समुद्धृतः स पूर्वं मया कारितः।" ततस्तेन देवेनोत्पाद्य काम्पिल्यपुरे मुक्तः। सुवर्णमये रत्नकोटियुते धवलगृहे स्थापितः। धनं बन्धुभ्योऽर्पयति। स दानभोगाभ्यां युक्तः। अन्यदा मत्सरेण वृद्धबन्धुना राज्ञोऽग्रे ज्ञापितम्–"भुवनेन तव निधानं लब्धम्।" राज्ञा भुवनो धृतः। सर्वं गृहीतम्। कारासु क्षिप्तः। इतश्च तेन देवेन पुरोपरि शिलाविकुर्वणादिना भापितेन राज्ञा क्षमयित्वा मुक्तोऽसौ भुवनः। बन्धवो धृताः। भुवनेन मोचिताः। भुवनः पुनर्बहुदेवदत्तधनो दानादिना श्रीजिनधर्ममाराध्य देवलोकं गतः॥ इति भुवनव्यवहारिकथानकम्॥३४८॥

[मू] उप्पण्णाण य देवेसु ताण आरब्भ जम्मकालाओ।
उप्पत्तिकमो भन्नइ, जह भणिओ जिणवरिंदेहिं॥३४९॥

[उत्पन्नानां च देवेषु तेषामारभ्य जन्मकालात्।
उत्पत्तिक्रमो भण्यते यथा भणितो जिनवरेन्द्रैः॥३४९॥]

[मू] उववायसभा वररयणानिम्मिया जम्मठाणममराण।
तीसे मज्झे मणिपेढियाए रयणमयसयणिज्जं॥३५०॥

[उपपातसभा वररत्ननिर्मिता जन्मस्थानममराणाम्।
तस्या मध्ये मणिपीठिकायां रत्नमयशयनीयम्॥३५०॥]

[मू] तत्थुववज्जइ देवो, कोमलवरदेवदूसअंतरिए।
अंतोमुहुत्तमज्झे, संपुन्नो जायए एसो॥३५१॥

[तत्रोत्पद्यते देवः कोमलवरदेवदूष्यान्तरिते।
अन्तर्मुहूर्तमध्ये सम्पूर्णो जायते एषः॥३५१॥]

[मू] अह सो उज्जोयंतो, तेएण दिसाओ पवररूवधरो।
सुत्तविउद्ध व्व खणेण उट्ठिओ नियइ पासाइं॥३५२॥

[अथ स उद्योतयन् तेजसा दिशः प्रवररूपधरः।
सुप्तविबुद्ध इव क्षणेन उत्थितः पश्यति पार्श्वानि॥३५२॥

[मू] सामाणियसुरपमुहो, तत्तो सव्वो वि परियणो तस्स।
आगंतुं अभिणंदइ, जयविजएणं कयंजलिओ॥३५३॥

[सामानिकसुरप्रमुखः ततः सर्वोऽपि परिजनस्तस्य।
आगत्याभिनन्दति जयविजयेन कृताञ्जलिकः॥३५३॥]

[मू] इंदसमा देविड्ढी, देवाणुपिएहिं पाविया एसा।
अणुभुंजंतु जहिच्छं, समुवणयं निययपुन्नेहिं॥३५४॥

[इन्द्रसमा देवर्द्धिः देवानुप्रियैः प्राप्ता एषा।
अनुभुनक्तु यथेच्छं समुपनतं निजकपुण्यैः॥३५४॥]

[मू] अह सो विम्हियहियओ, चिंतइ दाणं तवं च सीलं वा।
किं पुव्वभवे विहियं, मए इमा जेण सुररिद्धी ?॥३५५॥

[अथ स विस्मितहृदयः चिन्तयति दानं तपो वा शीलं वा।
किं पूर्वभवे विहितं मया इयं येन सुरर्द्धिः॥३५५॥]

[मू] इय उवउत्तो पेच्छइ, पुव्वभवं तो इमं विचिंतेइ।
किं एत्थ मज्झ किच्चं, पढमं ? ता[१] परियणो भणइ॥३५६॥

[इति उपयुक्तः प्रेक्षते पूर्वभवं तत इदं विचिन्तयति।
किमत्र मम कृत्यं प्रथमम् ? तावत् परिजनो भणति॥२५६॥]

[मू] अट्ठसयं पडिमाणं, सिद्धाययणे तहेव सगहाओ।
कयअभिसेया पूएह सामि ! किच्चाणिमं पढमं॥३५७॥

[अष्टशतं प्रतिमानां सिद्धायतने तथैव सक्थीनि।
कृताभिषेकाः पूजयत स्वामिन् ! कृत्यानामिदं प्रथमम्॥३५७॥]

[अव] सगहाओ। सक्थास्तीर्थकरदंष्ट्रा रत्नमयस्तम्भोपरि हीरकसमुद्गकं क्षिप्त्वा तिष्ठन्ति। ततः सिद्धायतनेऽष्टोत्तरं शतं प्रतिमाणाम्, तथा सुधर्मसभागतस्तीर्थ-

---

१. **तो** इति पा. प्रतौ।

करदंष्ट्राँश्च स्वामिन्! कृताभिषेकाः सन्तः पूजयन्त यदेवं कृत्यानां प्रथममिदं कृत्य-मित्यर्थः॥३५७॥

[मू] अह सो सयणिज्जाओ, उट्ठइ परिहेइ देवदूसजुयं।
मंगलतूररवेहिं, पढंततूरबंदिवंदेहिं॥३५८॥

[अथ स शयनीयाद् उत्तिष्ठति परिदधाति देवदूष्ययुगम्।
मङ्गलतूररवैः पठत्सुरबन्दिवृन्दैः॥३५८॥]

[मू] हरयम्मि समागच्छइ, करेइ जलमज्जणं तओ विसइ।
अभिसेयसभाए अणुपयाहिणं पुव्वदारेणं॥३५९॥

[ह्रदं समागच्छति करोति जलमज्जनं ततो विशति।
अभिषेकसभायामनुप्रदक्षिणं पूर्वद्वारेण॥३५९॥]

[अव] स्वच्छप्रधानसलिलसम्पूर्णह्रदे समागच्छति। तत्र जलमज्जनं कृत्वा ततोऽभिषेकसभां प्रदक्षिणीकृत्य पूर्वद्वारेण विशति प्रविशतीत्यर्थः॥३५९॥

अभिषेकविधिक्रममेवाह-

[मू] अह आभिओगियसुरा, साहाविय तह विउव्वियं चेव।
मणिमयकलसाईयं, भिंगाराई य उवगरणं॥३६०॥

[अथ आभियोगिकसुराः स्वाभाविकं तथा विकुर्वितं चैव।
मणिमयकलशादिकं भृङ्गारादिकं च उपकरणम्॥३६०॥]

[अव] नन्दण इति यावद्गाथाः सुगमाः। नवरं मागधवरदामप्रभासतीर्थतोयानि मृत्तिकां च समयक्षेत्रेऽर्धतृतीयद्वीपसमुद्रलक्षणे पञ्चसु भरतैरावतेषु गृह्णन्ति। पञ्चसु भरतेषु गङ्गासिन्धुसरितामादिशब्दात्पञ्चसु ऐरवतेषु रक्तारक्तवतीसरिताम्, तथापरासामपि सकलानां हैमवतैरण्यवतादिक्षेत्रवर्तिनीनां रोहिताशासुवर्णकूला-दीनामुभयतटवर्त्तिनीं मृत्तिकां तोयानि गृह्णन्ति। गङ्गा-सिन्धु-रक्ता-रक्तवती सरित्मृत्तिकाजलग्रहणा[नन्तरं] च क्षुल्लकहिमवच्छिखरिपर्वतप्रमुखेषु कुलगिरीन्द्रेषु गत्वा सर्वाणि माल्यानि = कुसुमानि, सर्वान् गन्धद्रव्यविशेषान् गन्धान् = सिद्धार्थान् सर्षपाँस्तथा सर्वा औषधीः सुगन्धिमहलयाग्रन्थपर्णकादिरूपाः[१] (?), तथा सर्वाण्यपि तुम्बराणि शरीरस्निग्धत्वापनोदाय द्रव्याणि गृह्णन्ति। इत्युक्तो गाथायाः सम्बन्धः। एवं

---

१. **सुगन्धिमहलवाङ्गृङ्घिपर्णकादिरूपाः** इति हेम.मल.वृत्ति.मु.अ.।

चतुर्थवृत्तवैताढ्यशैलशिखरेष्वपि गत्वा तुम्बरादीनि[१] गृह्णन्ति। तथा पञ्चविदेहविजयेषु यानि मागधादितीर्थानि तेषु सलिलमुपनयन्ति। ततो वक्षस्कारगिरिषु भद्रशालवने च तुम्बरादीनि गृह्णन्ति। ततो नन्दन-सोमनस-पाण्डुकवनेषु क्रमेण तुम्बरादीनि, सरसगोशीर्षश्रीखण्डं च गृह्णन्ति। सोमनसे विशेषतः सरससुरभिकुसुमदामग्रहणं कुर्वन्ति। पण्डुकवने तु सुरभिगन्धान्वितानि गन्धद्रव्याणि गृहीत्वा तुम्बरादिभिः सह विमिश्रयन्तीत्यर्थः॥३६०॥

[मू] घेत्तूण जंति खीरोयहिम्मि तह पुक्खरोयजलहिम्मि।
दोसु वि गिण्हंति जलाइं तह य वरपुंडरीयाइं॥३६१॥

[गृहीत्वा यान्ति क्षीरोदधौ तथा पुष्करोदजलधौ।
द्वयोरपि गृह्णन्ति जलानि तथा च वरपुण्डरीकाणि॥३६१॥]

[मू] मागहवरदामपभासतित्थतोयाइं मट्टियं च तओ।
समयक्खेत्ते भरहाइगंगसिंधूण सरियाणं॥३६२॥

[मागधवरदामप्रभासतीर्थतोयानि मृत्तिकां च ततः।
समयक्षेत्रे भरतादिगङ्गासिन्धूनां सरिताम्॥३६२॥]

[मू] रत्तारत्तवईणं, महानईणं तओऽवराणं पि।
उभयतडमट्टियं तह, जलाइं गिण्हंति सयलाणं॥३६३॥

[रक्तारक्तवतीनां महानदीनां ततोऽपरासामपि।
उभयतटमृत्तिकां तथा जलानि गृह्णन्ति सकलानाम्॥३६३॥]

[मू] गंतूण चुल्लहिमवंतसिहरिपमुहेसु कुलगिरिंदेसु।
सव्वाइं तुवरओसहिसिद्धत्थयगंधमल्लाइं॥३६४॥

[गत्वा क्षुल्लहिमवच्छिखरिप्रमुखेषु कुलगिरीन्द्रेषु।
सर्वाणि तुवरौषधिसिद्धार्थकगन्धमाल्यानि॥३६४॥]

[मू] गिण्हंति वट्टवेयड्ढसेलसिहरेसु चउसु एमेव।
विजएसु जाइं मागहवरदामपभासतित्थाइं॥३६५॥

[गृह्णन्ति वृत्तवैताढ्यशैलशिखरेषु चतुर्षु एवमेव।
विजयेषु यानि मागधवरदामप्रभासतीर्थानि॥३६५॥]

---

१. **तुवरादीनि** इति हेम. मल.वृत्ति.मु.अ.। अग्रेऽपि।

[मू] गिण्हंति सलिलमट्टियमंतरनइसलिलमेव उवणेंति।
वक्खारगिरीसु वणम्मि भद्दसालम्मि तुवराइं॥३६६॥

[गृह्णन्ति सलिलमृत्तिकामन्तरनदीसलिलमेव उपनयन्ति।
वक्षस्कारगिरिषु वने भद्रशाले तुवराणि॥३६६॥]

[मू] नंदणवणम्मि गोसीसचंदणं सुमणदाम सोमणसे।
पंडगवणम्मि गंधा, तुवराईणि य विमीसंति॥३६७॥

[नन्दनवने गोशीर्षचन्दनं सुमनोदाम सौमनसे।
पाण्डकवने गन्धान् तुवरादीनि च विमिश्रयन्ति॥३६७॥]

[मू] तो गंतुं सट्ठाणं, ठविउं सीहासणम्मि ते देवं।
वरकुसुमदामचंदणचच्चियपउमप्पिहाणेहिं॥३६८॥

[ततो गत्वा स्वस्थानं स्थापयित्वा सिंहासने तं देवम्।
वरकुसुमदामचन्दनचर्चितपद्मपिधानैः॥३६८॥]

[मू] कलसेहि ण्हवंति सुरा, केई गायंति तत्थ परितुट्ठा।
वायंति दुंदुहीओ, पढंति बंदि व्व पुण अन्ने॥३६९॥

[कलशैः स्नपयन्ति सुराः केचिद् गायन्ति तत्र परितुष्टाः।
वादयन्ति दुन्दुभीन् पठन्ति बन्दिन इव पुनरन्ये॥३६९॥]

[मू] रयणकणयाइवरिसं, अन्ने कुव्वंति सीहनायाइं।
इय महया हरिसेणं, अहिसित्तो तो समुट्ठेउं॥३७०॥

[रत्नकनकादिवर्षमन्ये कुर्वन्ति सिंहनादादि।
इति महता हर्षेण अभिषिक्तः ततः समुत्थाय॥३७०॥]

[मू] उद्धुयमुयंगदुंदुहिरवेण सुरयणसहस्सपरिवारो।
सोऽलंकारसभाए, गंतुं गिण्हइ अलंकारे॥३७१॥

[उद्धूतमृदङ्गदुन्दुभिरवेण सुरजनसहस्रपरिवारः।
सोऽलङ्कारसभायां गत्वा गृह्णात्यलङ्कारान्॥३७१॥]

[मू] गंतुं ववसायसभाए वायए रयणपोत्थयं तत्तो।
तवणिज्जमयक्खरऽमरकिच्चनयमग्गपायडणं॥३७२॥

[गत्वा व्यवसायसभायां वाचयति रत्नपुस्तकं ततः।
तपनीयमयाक्षरममरकृत्यनयमार्गप्रकटनम्॥३७२॥]

[मू] पूओवगरणहत्थो, नंदापोक्खरिणिविहियजलसोओ।
सिद्धाययणे पूयइ, वंदइ भत्तीए जिणबिंबे॥३७३॥

[पूजोपकरणहस्तो नन्दापुष्करिणीविहितजलशौचः।
सिद्धायतने पूजयति वन्दते भक्त्या जिनबिम्बानि॥३७३॥]

[मू] गंतूण सुहम्मसभं, तत्तो अच्चइ जिणिंदसगहाओ[१]।
सीहासणे तहिं चिय, अत्थाणे विसइ इंदो व्व॥३७४॥

[गत्वा सौधर्मसभां ततोऽर्चति जिनेन्द्रसक्थीनि।
सिंहासने तत्रैव आस्थाने विशति इन्द्र इव॥३७४॥]

[अव] ततः सौधर्मसभायां गत्वा तीर्थकरदंष्ट्राः पूजयन्तीत्यर्थः। शेषा सुगमार्थाः॥३७४॥ तदेवममराणामभिषेकविधिस्तत्कृत्यविधिश्चोक्तः लेशतः, साम्प्रतं तेषामेवोत्पन्नानां यत्स्वरूपं भवति तदभिधित्सुराह-

[मू] इय सुहिणो सुरलोए, कयसुकया सुरवरा समुप्पन्ना।
रयणुक्कडमउडसिरा, चूडामणिमंडियसिरग्गा॥३७५॥

[इति सुखिनः सुरलोके कृतसुकृताः सुरवराः समुत्पन्नाः।
रत्नोत्कटमुकुटशिरसश्चूडामणिमण्डितशिरोऽग्राः॥३७५॥]

[मू] गंडयललिहंतमहंतकुंडला कंठनिहियवणमाला।
हारविराइयवच्छा, अंगयकेऊरकयसोहा॥३७६॥

[गण्डतललिहन्महाकुण्डलाः कण्ठनिहितवनमालाः।
हारविराजितवक्षसः अङ्गदकेयूरकृतशोभाः॥३७६॥]

[मू] मणिवलयकणयकंकणविचित्तआहरणभूसियकरग्गा।
मुद्दारयणंकियसयलअंगुली रयणकडिसुत्ता॥३७७॥

[मणिवलयकनककङ्कणविचित्राभरणभूषितकराग्राः।
मुद्रारत्नाङ्कितसकलाङ्गुलया रत्नकटिसूत्राः॥३७७॥]

[मू] आसत्तमल्लदामा, कणयच्छविदेवदूसनेवत्था।
वरसुरहिगंधकयतणुविलेवणा सुरहिनिम्माया॥३७८॥

[आसक्तमाल्यदामानः कनकच्छविदेवदूष्यनेपथ्याः।
वरसुरभिगन्धकृततनुविलेपनाः सुरभिर्निर्माताः॥३७८॥]

---

१. **सहगाओ** इति पा. प्रतौ।

[मू] आजम्मवाहिजरदुत्थवज्जिया निरुवमाइं सोक्खाइं।
भुंजंति समं सुरसुंदरीहिं अविचलियतारुन्ना॥३७९॥

[आजन्मव्याधिजरादुःस्थतावर्जिताः निरुपमाणि सौख्यानि।
भुञ्जन्ति समं सुरसुन्दरीभिः अविचलिततारुण्याः॥३७९॥]

[मू] नाणासत्तीइ तुलंति मंदरं कंपयति महिवीढं।
उच्छल्लंति समुद्दा, वि कामरूवाइं कुव्वंति॥३८०॥

[नानाशक्त्या तोलयन्ति मन्दरं कम्पयन्ति महीपीठम्।
उच्छालयन्ति समुद्रानपि कामरूपाणि कुर्वन्ति॥३८०॥]

[मू] सच्छंदयारिणो काणणेसु कीलंति सह कलत्तेहिं।
अणुणो गुरुणो लहुणो, दिस्समदिस्सा य जायंति॥३८१॥

[स्वच्छन्दचारिणः काननेषु क्रीडन्ति सह कलत्रैः।
अणवो गुरवो लघवो दृश्या अदृश्याश्च जायन्ते॥३८१॥]

[मू] बत्तीसपत्तबद्धाउ विविहनाडयविहीउ पेच्छंता।
कालमसंखं पि गमंति पमुइया रयणभवणेसु॥३८२॥

[द्वात्रिंशत्पात्रबद्धान् विविधनाटकविधीन् प्रेक्षन्ते।
कालमसङ्ख्यमपि गमयन्ति प्रमुदिता रत्नभवनेषु॥३८२॥]

[अव] इयति गाथां यावत्सुगमाः। नवरमङ्गदो बाहुरक्षकः केयूरस्तु बाह्वाद्याभरणविशेष इति॥३८२॥

अथ देवानामीदृशानि सुखानि तर्हि कथं संसारे प्रतिपतन्ति[१]? यतो देवगतिमाश्रित्य तस्याप्युक्तन्यायेन सुखान्वितत्वादित्याह-

[मू] इअ रिद्धिसंजुयाण वि, अमराणं नियसमिद्धिमासज्ज।
पररिद्धिं अहियं पेच्छिऊण झिज्जंति अंगाइं॥३८३॥

[इति ऋद्धिसंयुतानामपि अमराणां निजसमृद्धिमासाद्य।
परर्धिमधिकां प्रेक्ष्य क्षीयन्ते अङ्गानि॥३८३॥]

[मू] उन्नयपीणपयोहरनीलुप्पलनयणचंदवयणाइं।
अन्नस्स कलत्ताणि य, दट्ठूण वियंभइ विसाओ॥३८४॥

---

१. **प्रतिपदं निन्द्यते ?** इति हेम.मल.वृत्ति.मु.अ.। अयमेव पाठोऽर्थानुसारित्वात् सम्यक्।

[उन्नतपीनपयोधरनीलोत्पलनयनचन्द्रवदनानि।
अन्यस्य कलत्राणि च दृष्ट्वा विजृम्भते विषादः॥३८४॥]

[मू] एगगुरुणो सगासे, तवमणुचिन्नं मए इमेणावि।
हद्धी मज्झ पमाओ, फलिओ एयस्स अपमाओ॥३८५॥

[एकगुरोः सकाशे तपोऽनुचीर्णं मयानेनापि।
हा ! धिक् मम प्रमादः फलित एतस्य अप्रमादः॥३८५॥]

[मू] इय झूरिऊण बहुयं, कोइ सुरो अह महिड्ढियसुरस्स।
भज्जं रयणाणि व अवहिऊण मूढो पलाएइ॥३८६॥

[इति विषद्य बहुकं कश्चित् सुरोऽथ महर्द्धिकसुरस्य।
भार्यां रत्नानि वा अपहृत्य मूढः पलायते॥३८६॥]

[मू] तत्तो वज्जेण सिरम्मि ताडिओ विलवमाणओ दीणो।
उक्कोसेणं वियणं, अणुभुंजइ जाव छम्मासं॥३८७॥

[ततो वज्रेण शिरसि ताडितो विलपन् दीनः।
उत्कृष्टेन वेदनामनुभुनक्ति यावत् षण्मासान्॥३८७॥]

[मू] ईसाइ दुही अन्नो, अन्नो वेरियणकोवसंतत्तो।
अन्नो मच्छरदुहिओ, नियडीए विडंबिओ अन्नो॥३८८॥

[ईर्ष्यया दुःखी अन्यः अन्यः वैरिजनकोपसन्तप्तः।
अन्यो मत्सरदुःखितो निकृत्या विडम्बितोऽन्यः॥३८८॥]

[मू] अन्नो लुद्धो गिद्धो, य मुच्छिओ रयणदारभवणेसु।
अभिओगजणियपेसत्तणेण अइदुक्खिओ अन्नो॥३८९॥

[अन्यो लुब्धो गृद्धश्च मूर्छिता रत्नदारभवनेषु।
अभियोगजनितप्रेष्यत्वेन अतिदुःखितोऽन्यः॥३८९॥]

[मू] पज्जंते उण झीणम्मि आउए निव्वडंततणुकंपे।
तेयम्मि हीयमाणे, जायंते तह विवज्जासे॥३९०॥

[पर्यन्ते पुनः क्षीणे आयुषि निष्पद्यमानतनुकम्पे।
तेजसि हीयमाने जायन्ते तथा विपर्यासे॥३९०॥]

[मू] आणं विलुंपमाणे[१], अणायरे सयलपरियरजणम्मि।
तं रिद्धिं पुरओ पुण, दारिद्दभरं नियंताणं॥३९१॥

[आज्ञां विलुम्पति अनादरे सकलपरिकरजने।
तामृद्धिं पुरतः पुनः दारिद्र्यभरं पश्यताम्॥३९१॥]

[मू] रयणमयपुत्तियाओ, व सुवन्नकंतीओ तत्थ भज्जाओ।
पुरओ उण काणं कुज्जियं च असुइं च बीभत्थं॥३९२॥

[रत्नमयपुत्रिका इव सुवर्णकान्तीस्तत्र भार्याः।
पुरतः पुनः काणां कुब्जिकां चाशुचिं च बीभत्साम्॥३९२॥]

[मू] तत्थ वि य दुव्विणीयं, किलेसलंभं पियं मुणंताणं।
तत्थ मणिच्छियआहारविसयवत्थाइसुहियाणं॥३९३॥

[तत्रापि च दुर्विनीतां क्लेशलभ्यां प्रियां जानताम्।
नास्ति मनइप्सिताहारविषयवस्त्रादिसुखि(हि)तानाम्॥३९३॥]

[मू] पुरओ परघरदासत्तणेण विण्णायउयरभरणाणं।
रमियाइं तत्थ रमणिज्जकप्पतरुगहणदेसेसु॥३९४॥

[पुरतः परगृहदासत्वेन विज्ञातोदरभरणानाम्।
रतानि तत्र रमणीयकल्पतरुगहनदेशेषु॥३९४॥]

[मू] पुरओ गब्भे य ठिइं, दट्ठुं दुट्ठाइ रासहीए वा।
सा उप्पज्जइ अरई, सुराण जं मुणइ सव्वन्नू॥३९५॥

[पुरतो गर्भे च स्थितिं दृष्ट्वा डुम्ब्या रासभ्या वा।
सा उत्पद्यते अरतिः सुराणां यज्जानाति सर्वज्ञः॥३९५॥]

[अव] यद्यपि राजादीनामिव देवतानां समृद्ध्यादिजनितं व्यवहारतस्तु सुखं श्रूयते, तथापि निश्चयत ईर्ष्याविषादमत्सराद्यभिभूतत्वात्तेषां दुःखमेवेति प्राह-

[मू] अज्ज वि य सरागाणं, मोहविमूढाण कम्मवसगाणं।
अन्नाणोवहयाणं, देवाण दुहम्मि का संका ?॥३९६॥

[अद्यापि च सरागाणां मोहविमूढानां कर्मवशगानाम्।
अज्ञानोपहतानां देवानां दुःखे का शङ्का ?॥३९६॥]

---

१. **विलंघमाणे** इति पा. प्रतौ।

[अव] वीतरागा एव भगवन्तः सुखिनो भवन्ति। देवाश्चाविरतत्वात्सरागाः मोहोऽत्र मदीया समृद्धिर्मदीयं कलत्रमित्यादि ममत्वरूपः तेन विमूढा विपर्यासं नीताः। कर्माणि ज्ञानावरणादीन्यष्टौ तद्वशगाः। अज्ञानं वस्तुनिश्चयाभावरूपं तेनोपहताः। तेषां चैवम्भूतानां देवानां दुःखे का शङ्का? न काचिदपीत्यर्थः॥३९६॥

मिथ्यादृष्टिदेवाः पुरतो दारिद्र्यभरं रासभीगर्भोत्पत्त्यादिकं दृष्ट्वा भवन्तु दुःखिताः, सम्यग्दृष्टीनां तु चक्रवर्त्यादिकुलेषु उत्पत्तिस्तेषां कुत एतद्दोषसम्भवः? इत्याह-

[मू] सम्मद्दिट्ठीण वि गब्भवासपमुहं दुहं धुवं चेव।
हिंडंति भवमणंतं, च केइ गोसालयसरिच्छा॥३९७॥

[सम्यग्दृष्टीनामपि गर्भावासप्रमुखं दुःखं ध्रुवं चैव।
हिण्डन्ते भवमनन्तं च केचिद् गोशालकसदृशाः॥३९७॥]

[अव] यद्यपि सम्यग्दृष्टयः प्रायेण हीनस्थानेषु नोत्पद्यन्ते तथापि गर्भवासदुःखं तेषामवस्थितमेव। किं च सम्यग्दृष्टयोऽपि गोशालकसदृशाः सम्यक्त्वं वान्त्वा ततश्च्युत्वा केचिदर्द्धपुद्गलपरावर्तलक्षणम् अनन्तसंसारं पर्यटन्ति। तत्रानन्तं दुःखमनुभवन्ति। यस्य सुखस्यान्ते दुःखमनुभूयते तत्कथं सुखमुच्यते? यतः **'कह तं भ**[१]**.'** इति। गोशालककथा प्रसिद्धा॥३९७॥

तस्माद्देवगतावपि न किञ्चित् सारतां पश्यामः। किं सर्वेषाम्? नेत्याह-

[मू] तम्हा देवगईए, वि जं तित्थयराणं समवसरणाई।
कीरइ वेयावच्चं, सारं मन्नामि तं चेव॥३९८॥

[तस्माद् देवगतावपि यत् तीर्थकराणां समवसरणादि।
क्रियते वैयावृत्यं सारं मन्ये तच्चैव॥३९८॥]

[अव] स्पष्टा॥३९८॥॥इति देवगतेरवचूरिः।

[मू] एत्थ य चउगइजलहिम्मि परिब्भमंतेहिं सयलजीवेहिं।
जायं मयं च सहिओ, अणंतसो दुक्खसंघाओ[२] ॥३९९॥

---

१. **कह तं भण्णइ सोक्खं सुचिरेण वि जस्स दुक्खमल्लियइ। जं च मरणावसाणे भवसंसाराणुबंधं च ॥**
(इति हेम.मल.वृत्ति.मु.अ.।)
[**छाया-**कथं तद् भण्यते सौख्यं सुचिरेणापि यस्य दुःखं प्राप्यते। यच्च मरणावसाने भवसंसारानुबन्धं च ॥]

२. **दुहसमुग्घाओ** इति पा. प्रतौ।

[अत्र च चतुर्गतिजलधौ परिभ्राम्यद्भिः सकलजीवैः।
जातं मृतं च सोढोऽनन्तशो दुःखसङ्घातः॥३९९॥]

[अव] इति चतुर्गतिकजलधौ संसारे इत्यर्थः। परिभ्राम्यद्भिः सकलजीवैरेकैकस्यामपि गतौ जातं मृतं चानन्तशोऽनन्तवारा इत्यर्थः। शारीरमानसिकदुःखसङ्घातश्चानन्तशः सोढ इति॥३९९॥

[मू] सो नत्थि पएसो तिहुयणम्मि तिलतुसतिभागमेत्तोऽवि।
जाओ न जत्थ जीवो, चुलसीईजोणिलक्खेसु॥४००॥

[स नास्ति प्रदेशः त्रिभुवने तिलतुषत्रिभागमात्रोऽपि।
जातो न यत्र जीवः चतुरशीतियोनिलक्षेषु॥४००॥]

[मू] सव्वाणि सव्वलोए, अणंतखुत्तो वि रूविदव्वाइं।
देहोवक्खरपरिभोयभोयणत्तेण भुत्ताइं॥४०१॥

[सर्वाणि सर्वलोके अनन्तकृत्वोऽपि रूपिद्रव्याणि।
देहोपस्करपरिभोगभोजनत्वेन भुक्तानि॥४०१॥]

[अव] इहानादौ संसारे चतुसृष्वपि गतिषु अनन्तशः पर्यटता जीवेन [सर्वस्मिन्नपि लोके यानि] कानिचित्सर्वाण्यपि द्रव्याणि समस्तपुद्गला[स्तिकाया]-त्मकानि तान्यनन्तकृत्वोऽनन्तवारा एकैकजीवेन भुक्तानि। कथमित्याह–देहत्वेन = शरीरतया परिणमय्य भुक्तानि तथोपस्कराः = शय्यासनभाजनादयस्तद्भावेन, तथा परिभुज्यते इति परिभोगो वस्त्रसुवर्णवनितावाहनादिस्तद्रूपेण, तथा भोजनमशनस्वादि-मादि तदात्मना चानन्तशः परिभुक्तानीत्यर्थः॥४०१॥

[मू] मयरहरो व्व जलेहिं, तह वि हु दुप्पूरओ इमो अप्पा।
विसयामिसम्मि गिद्धो, भवे भवे वच्चइ न तत्तिं॥४०२॥

[मकरधर इव जलैस्तथापि खलु दुष्पूरकोऽयमात्मा।
विषयामिषे गृद्धो भवे भवे व्रजति न तृप्तिम्॥४०२॥]

[मू] इय भुत्तं विसयसुहं, दुहं च तप्पच्चयं अनंतगुणं।
इण्हिं भवदुहदलणम्मि जीव ! उज्जमसु जिणधम्मे॥४०३॥

[इति भुक्तं विषयसुखं दुःखं च तत्प्रत्ययमनन्तगुणम्।
इदानीं भवदुःखदलने जीव ! उद्यच्छ जिनधर्मे॥४०३॥]

॥इति पञ्चमी भावनावचूरिः॥

[षष्ठी अशुचिभावना]

अथ संसारस्य दुःखस्वरूपत्वेऽपि शरीराश्रितं सुखं प्राणिनो भविष्यति, तस्य शुचिस्वरूपत्वाद् इत्याशङ्क्य तदशुचित्वप्रतिपादनपरां षष्ठीमशुचित्वभावनां बिभणिषुराह-

[मू] बीयट्ठाणमुवट्ठंभहेयवो चिंतिउं सरूवं च।
को होज्ज सरीरम्मि वि, सुइवाओ मुणियतत्ताणं ?॥४०४॥

[द्वितीयस्थानमुपष्टम्भहेतून् चिन्तयित्वा स्वरूपं च।
को भवेत् शरीरेऽपि शुचिवादो ज्ञाततत्त्वानाम् ?॥४०४॥]

[अव] शरीरबीजं = शुक्रस्थानं स्वजनन्युदरम्, अवष्टम्भहेतवोऽपि तस्य मातृशुक्रशोणितादयः। एतानि सर्वाणि विचिन्त्य, तथा स्वयं शरीरस्य मांसशोणितास्थि-चर्मादिसमुदायरूपं विचिन्त्य विदितवेद्यानां शरीरेऽपि निर्विवादप्रत्यक्षाशुचिवस्तु-स्तोममये कः शुचिवादः? न कश्चिदित्यर्थः॥४०४॥

अथ शरीरबीजादीन् तत्र एव व्याचिक्षीसुराह-

[मू] बीयं सुक्कं तह सोणियं च ठाणं तु जणणिगब्भम्मि।
ओयं तु उवट्ठंभस्स कारणं तस्सरूवं तु॥४०५॥

[बीजं शुक्रं तथा शोणितं च स्थानं तु जननीगर्भे।
ओजस्तु उपष्टम्भस्य कारणं तत्स्वरूपं तु॥४०५॥]

[अव] बीजं = कारणं तच्च शरीरस्य पितुः शुक्रं मातुः शोणितञ्च। स्थानं तस्यादौ जननीगर्भे। शुक्रशोणितसमुदाय ओज उच्यते।शरीरोपष्टम्भस्यापि प्रथमतस्तदेव हेतुः॥४०५॥

स्वरूपं तु तस्य शरीरस्याह-

[मू] अट्ठारस पिट्ठिकरंडयस्स संधीओ होंति देहम्मि।
बारस पंसुलियकरंडया इहं तह छ पंसुलिए॥४०६॥

[अष्टादश पृष्ठिकरण्डकस्य सन्धयो भवन्ति देहे।
द्वादश पांशुलिकाकरण्डकाका इह तथा षट् पांशुलिकाः॥४०६॥]

[मू] होइ कडाहे सत्तंगुलाइं जीहा पलाइं पुण चउरो।
अच्छीओ दो पलाइ, सिरं च भणियं चउकवालं॥४०७॥

[भवति कटाहे सप्ताङ्गुलानि जिह्वा पलानि पुनश्चत्वारि। अक्षिणी द्वे पले शिरश्च भणितं चतुष्कपालम्॥४०७॥]

[अव] देहे मनुष्यशरीरे पृष्ठिकरण्डकस्य पृष्ठिवंशस्याष्टादशग्रन्थिरूपाः सन्धयो भवन्ति, यथा वंशस्य पर्वाणि तेषु चाष्टादशसु सन्धिषु मध्ये द्वादशेभ्यः सन्धिभ्यो द्वादश पांसुलिका निर्गत्योभयपार्श्वावावृत्त्य वक्षःस्थलमध्योर्द्ध्ववर्त्यस्थिनि लगित्वा पल्ल-काकारतया परिणमन्ति। अत आह–इह शरीरे द्वादश पांशुलिकारूपाः करण्डका वंशका भवन्ति। **तह त्ति**। तथा तस्मिन्नेव पृष्ठिवंशे शेषषट्सन्धिभ्यः षट् पांसुलिका निर्गत्य पार्श्वद्वयमावृत्य हृदयस्योभयतो वक्षःपञ्जरादधस्ताच्छिथिलकुक्षेस्तूपरिष्टात् परस्परा-सम्मिलितास्तिष्ठन्ति, अयञ्च कटाह इत्युच्यते। जिह्वामुखाभ्यन्तरवर्तिमांस-खण्डरूपा दैर्घ्येणात्माङ्गुलतः सप्ताङ्गुलानि भवन्ति। तौल्ये तु मगधदेशे प्रसिद्धपलेन चत्वारि पलानि भवन्ति। अक्षिमांसगोलकौ तु द्वे पले शिरस्त्वस्थिखण्डैश्चतुर्भिः कला-पैर्निष्पद्यते॥४०७॥

तथा-

[मू] अद्धुट्ठपलं हिययं, बत्तीसं दसणअट्ठिखंडाइं।
कालेज्जयं तु समए, पणवीस पलाइं निद्दिट्ठं॥४०८॥

[अर्धचतुर्थपलं हृदयं द्वात्रिंशद् दशनास्थिखण्डानि।
कालेयकं तु समये पञ्चविंशतिपलानि निर्दिष्टम्॥४०८॥]

[अव] हृदयान्तरवर्तिमांसमर्द्धपलत्रयं भवति। द्वात्रिंशच्च मुखे दन्तास्थिखण्डानि प्रायः प्राप्यन्ते। कालिज्जयं तु वक्षान्तर्गूढमांसविशेषरूपं च पञ्चविंशतिपलान्यागमे उक्तमिति॥४०८॥

[मू] अंताइ दोन्नि इहइं, पत्तेयं पंच पंच वामाओ।
सट्ठसयं संधीणं, मम्माण सयं तु सत्तहियं॥४०९॥

[अन्त्रे द्वे इह प्रत्येकं पञ्च पञ्च व्यामे।
षष्टिशतं सन्धीनां मर्मणां शतं तु सप्ताधिकम्॥४०९॥]

[अव] द्वौ चाप्यन्त्राणि प्रत्येकं पञ्च पञ्च वामप्रमाणानि, सन्धयोऽङ्गुल्या-द्यस्थिखण्डमेलापकस्थानानि मर्माणि शङ्खाणिकाचियरकादीनि। शेषं स्पष्टम्॥४०९॥

[मू] सट्ठसयं तु सिराणं, नाभिप्पभवाण सिरमुवगयाणं।
रसहरणिनामधिज्जाण जाणऽणुग्गहविघाएसु॥४१०॥

[षष्टिशतं तु सिराणां नाभिप्रभवाणां शिरउपगतानाम्।
रसहरणीनामधेयानां जानीहि यासामनुग्रहविघातयोः॥४१०॥]

[मू] सुइ चक्खुघाणजीहाणऽणुग्गहो होइ तह विघाओ य।
सट्ठसयं अन्नाण वि, सिराणऽहोगामिणीण तहा॥४११॥

[श्रुतिचक्षुर्घ्राणजिह्वानामनुग्रहो भवति तथा विघातश्च।
षष्टिशतमन्यासामपि सिराणामधोगामिनीनां तथा॥४११॥]

[अव] इह पुरुषशरीरे नाभिप्रभवानि शिराणां = स्नसानां सप्तशतानि भवन्ति। तत्र षष्ट्यधिकं शतं शिराणां नाभेः शिरसि गच्छति। ताश्च रसहरणीति नामधेयाः। यासां चानुग्रहविघातयोर्यथासङ्ख्यं श्रुतिचक्षुरादीनामनुग्रहो विघातश्च भवति। तथाधःपादतलगतानामनुपघाते जङ्घाबलकारिणीनां स्नसानां षष्ट्यधिकं शतं भवति। उपघाते तु ता एव शिरोवेदनान्धत्वादीनि कुर्वन्ति। शेषं स्पष्टमेवेत्यर्थः॥४१०॥४११॥

अथ स्त्रीनपुंसकयोः कियत्य एता भवन्तीत्याशङ्क्याह-

[मू] पायतलमुवगयाणं, जंघाबलकारिणीणीणुवग्घाए।
उवघाए सिरि वियणं, कुणंति अंधत्तणं च तहा॥४१२॥

[पादतलमुपगतानां जङ्घाबलकारिणीनामनुपघाते।
उपघाते शिरसि वेदनां कुर्वन्ति अन्धत्वं च तथा॥४१२॥]

[मू] अवराण गुदपविट्ठाण होइ सट्ठं सयं तह सिराणं।
जाण बलेण पवत्तइ, वाऊ मुत्तं पुरीसं च॥४१३॥

[अपरासां गुदाप्रविष्टानां भवति षष्टिशतं तथा सिराणाम्।
यासां बलेन प्रवर्तते वायुर्मूत्रं पुरीषं च॥४१३॥]

[मू] अरिसाउ पंडुरोगा[१], वेगनिरोहो य ताणमुवघाए।
तिरियगमाण सिराणं, सट्ठसयं होइ अवराणं॥४१४॥

[अर्शांसि पाण्डुरोगा वेगनिरोधश्च तेषामुपघाते।
तिर्यग्गमानां सिराणां षष्टिशतं भवति अपरासाम्॥४१४॥]

---

१. **रोगो** इति पा. प्रतौ।

[मू] बाहुबलकारिणीओ, उवघाए कुच्छिउयरवियणाओ।
कुव्वंति तहऽन्नाओ, पणवीसं सिंभधरणीओ॥४१५॥

[बाहुबलकारिण्यः उपघाते कुक्ष्युदरवेदनाः।
कुर्वन्ति तथान्याः पञ्चविंशतिः श्लेष्मधारिण्यः॥४१५॥]

[मू] तह पित्तधारिणीओ, पणवीसं दस य सुक्कधरणीओ।
इय सत्त सिरसयाइं, नाभिप्पभवाइं पुरिसस्स॥४१६॥

[तथा पित्तधारिण्यः पञ्चविंशतिर्दश च शुक्रधारिण्यः।
इति सप्तसिराशतानि नाभिप्रभवाणि पुरुषस्य॥४१६॥]

[मू] तीसूणाइं इत्थीण वीसहीणाइं होंति संढस्स।
नव ण्हारूण सयाइ, नव धमणीओ य देहम्मि॥४१७॥

[त्रिंशन्न्यूनानि स्त्रीणां विंशतिहीनानि भवन्ति षण्ढस्य।
नव स्नायूनां शतानि नव धमन्यश्च देहे॥४१७॥]

[अव] स्पष्टैव॥४१७॥

तथा-

[मू] मुत्तस्स सोणियस्स य, पत्तेयं आढयं वसाए उ।
अद्धाढयं भणंती, पत्थं मत्थुलयवत्थुस्स॥४१८॥

[मूत्रस्य शोणितस्य च प्रत्येकमाढकं वसायास्तु।
अर्द्धाढकं भणन्ति प्रस्थं मस्तुलुङ्गवस्तुनः॥४१८॥]

[मू] असुइमलपत्थछक्कं, कुलओ कुलओ य पित्तसिंभाणं।
सुक्कस्स अद्धकुलओ, दुट्ठं हीणाहियं होज्जा॥४१९॥

[अशुचिमलप्रस्थषट्कं कुलकः कुलकश्च पित्तश्लेष्मणोः।
शुक्रस्यार्धकुलकः दुष्टं हीनाधिकं भवति॥४१९॥]

[अव] शरीरे सर्वदैव मूत्रस्य शोणितस्य च प्रत्येकमाढकं मगधदेशे प्रसिद्धं मानविशेषं भणन्ति।

उक्तं च-

दो असईओ पसई दो पसईओ सेईआ होइ।
चत्तारि सेइआओ कुलओ चत्तारि कूडवा पत्थो॥

चत्तारि पत्था आढयं, चत्तारि आढयो दोणो॥[१] इत्यादि

धान्यभृतोऽवाङ्मुखीकृतो हस्तोऽसतीत्युच्यते। वसायास्त्वर्द्धाढकं भणन्ति। मस्तकभेञ्जको मस्तु[लुङ्गवस्तु], अन्ये त्वाहुर्मेदःपिप्पिसादिर्मस्तुलिङ्गमिति, तस्यापि प्रस्थं यथोक्तं वदन्ति। अशुचिरूपो योऽसौ मलस्तस्य प्रस्थषट्कं भवति पित्तश्लेष्मणोः प्रत्येकं यथानिर्दिष्टरूपः कुलको भवति। शुक्रस्य त्वर्द्धकुलको भवति। एतच्च प्रस्थादिमानं बालकुमारतरुणादीनां **दो असईओ.** इत्यादि क्रमेणात्मीयहस्तेनानेतव्यम्। उक्तमानस्य शुक्रशोणितादि हीनाधिक्यं स्यात्तत्र वाताविदूषितत्वेनेत्यवसेयम्॥४१९॥

[मू] एक्कारस इत्थीए, नव सोयाइं तु होंति पुरिसस्स।
इय किं सुइत्तणं अट्ठिमंसमलरुहिरसंघाए ?॥४२०॥

[एकादश स्त्रिया नव श्रोत्राणि तु भवन्ति पुरुषस्य।
इति किं शुचित्वमस्थिमांसरुधिरसङ्घाते ?॥४२०॥]

[अव] द्वौ कर्णौ, द्वे चक्षुषी, द्वे घ्राणे, मुखं, स्तनौ, पायूपस्थे, चेत्येवमेकादश श्रोत्राणि स्त्रीणां भवन्ति। स्तनवर्जाणि शेषाणि नव पुरुषस्येति॥४२०॥

[मू] को कायसुणयभक्खे, किमिकुलवासे य वाहिखित्ते य।
देहम्मि मच्चुविहुरे, सुसाणठाणे य पडिबंधो ?॥४२१॥

[कः काकशुनकभक्ष्ये कृमिकुलवासे च व्याधिक्षेत्रे च।
देहे मृत्युविधुरे श्मशानस्थाने च प्रतिबन्धः ?॥४२१॥]

[अव] ततो जिनवचनवासितान्तःकरणानां देहे कः प्रतिबन्धः स्यात्? न कश्चिदित्यर्थः। काककुक्कुरादिभक्ष्ये केवलकृमिकुलावासे समस्तव्याधिक्षेत्रे मृत्युविधुरे मरणावस्थायां निःशेषकार्याक्षमे पर्यन्ते स्मशाने स्थानं यस्य तत्तथा॥४२१॥

[मू] वत्थाहारविलेवणतंबोलाईणि पवरदव्वाणि।
होंति खणेण वि असुईणि देहसंबंधपत्ताणि॥४२२॥

[वस्त्राहारविलेपनताम्बोलादीनि प्रवरद्रव्याणि।
भवन्ति क्षणेनापि अशुचीनि देहसम्बन्धप्राप्तानि॥४२२॥]

---

१. द्वौ असत्यौ पसती, द्वौ पसत्यौ सेतिका भवति। चत्वारः सेतिकाः कुलकः, चत्वारः कुलकाः प्रस्थः॥ चत्वारः प्रस्थाः आढकम्, चत्वारि आढकानि द्रोणः॥

[अव] स्पष्टा॥४२२॥

तदेवं विपर्यस्तो लोकस्तैलजलागुरुकर्पूरकुङ्कुममलयजरसताम्बूलवस्त्राभरणादिभिः संस्कृतं यत्शरीरं तत् शुचित्वेन व्यवस्यति। तात्त्विकमशुचित्वमनया **वत्थाहारत्ति** गाथयोपदर्शितम्। यान्यप्यमेध्यमृत्तिकाद्याधारतडागजलादीनि अशुचिरूपाणि लोको मन्यते तान्यपि संस्कारवशात् शुचित्वं प्रतिपद्यन्ते इत्याह-

[मू] असुहाणि वि जलकोद्दववत्थप्पमुहाणि सयलवत्थूणि।
सक्कारवसेण सुहाइ होंति कत्थइ खणद्धेणं॥४२३॥

[अशुभान्यपि जलकोद्रववस्त्रप्रमुखाणि सकलवस्तूनि।
संस्कारवशेन शुभानि भवन्ति कुत्रचित् क्षणार्धेन॥४२३॥]

[मू] इय खणपरियत्तंते, पोग्गलनिवहे तमेव इह वत्थुं।
मन्नामि सुइं पवरं, जं जिणधम्मम्मि उवयरइ॥४२४॥

[इति क्षणपरावर्तमाने पुद्गलनिवहे तदेव इह वस्तु।
मन्ये शुचिं प्रवरं यज्जिनधर्मे उपकरोति॥४२४॥]

[अव] इत्युक्तन्यायेन सर्वस्मिन् पुद्गलनिवहे प्रतिक्षणं परावर्तमाने [शुभे कर्पूरहारताम्बूलादौ देहादिसम्बन्धादशुभतां प्रतिपद्यमाने अ]शुभेऽपि मदनकोद्रवादौ शुभतामासादयति। किं शुचिस्वरूपं किं वाशुभं व्यपदिश्यताम्? इति शेषः। तत्किं सर्वथा किञ्चिदपि वस्तु शुचितयात्र न व्यपदेष्टव्यम् इत्याशङ्क्याह–**तमेव**. इत्यादि। तदेवेह वस्तु शुचिरूपं प्रधानं चाहं मन्ये यत् साधुदेहादिकं कुसुमविलेपनादिकं जिनधर्मे क्षान्त्यादिके जिनपूजादानशीलादिके चोपकुरुते, नान्यत्, तस्य सर्वस्यापि पापोपकारितया नरकादिभवहेतुत्वेन तत्त्वतोऽशुचिस्वरूपत्वादिति॥४२४॥

यतश्चैवं तस्मादुदाहरणगर्भं कृत्योपदेशमाह-

[मू] तो मुत्तूण दुगुंछं, उम्मायकरं कयंबविप्प व्व।
देहं च बज्झवत्थुं, च कुणह उवयारयं धम्मे॥४२५॥

[ततो मुक्त्वा जुगुप्सामुन्मादकारिणीं कदम्बविप्र इव।
देहं च बाह्यवस्तु च कुरु उपकारकं धर्मे॥४२५॥]

[अव] यस्मात्तदेव वस्तु शुचिस्वरूपं प्रधानं वा यज्जिनधर्मे उपकरोति, शेषमशुच्येव। तस्माज्जुगुप्सां मुक्त्वा कदम्बविप्र इव देहादिकं सर्वं धर्मोपकारि कुर्विति।

कथेयं यथा-

[कदम्बविप्रकथा]

काकन्द्यां पुर्यां सोमशर्माविप्रपुत्रः कदम्बोऽतिशौचवादी छायामात्रान्यस्पर्शे सचेलस्नानकारी पानीयपिशाच इति प्रसिद्धः वस्त्रान्तरस्थगितवदननासिकः सर्वत्र हुं हुम् इति कुर्वन् भ्रमति। ततो यौवने गलत्कुष्टप्रभृतिरोगैर्ग्रस्तः। नष्टः सर्वशौचवादः। अन्यदा निष्प्रतिकर्मशरीरान् मुनीन् दृष्ट्वा संवेगमापन्नः। 'अहो! एते एव शुचयो ये ब्रह्मचारिणः, ममापि यदि रोगशान्तिः स्यात्तदाहमीदृशो भवामि।' क्रमादुपशान्ते रोगे श्राद्धो जातः। कुटुम्बेऽप्यारोपितो धर्मः। सर्वं बाह्यं वस्तु धनकनकादिकं धर्मे नियुज्य प्रव्रजितस्तपः कृत्वा शिवमापेति कदम्बविप्रकथा॥४२५॥

इति षष्ठ्यशुचिभावनावचूरिः॥

[सप्तमी लोकभावना]

अथ सप्तमीं लोकभावनामाह-

[मू] चउदसरज्जू उड्ढायओ इमो वित्थरेण पुण लोगो।
कत्थइ रज्जं कत्थ वि, य दोन्नि जा सत्त रज्जूओ॥४२६॥

[चतुर्दशरज्जुक ऊर्द्ध्वायतोऽयं विस्तरेण पुनर्लोकः।
कुत्रचिद्रज्जु कुत्रापि च द्वे यावत्सप्त रज्जवः॥४२६॥]

[अव] सप्तमनरकतलादारभ्योर्द्ध्वलोकश्चतुर्दशरज्जुदीर्घो विस्तरतः क्वचिदेका रज्जुः क्वचिद्द्वयं सप्त यावदिति॥४२६॥

[मू] निरयावाससुरालयअसंखदीवोदहीहिं कलियस्स।
तस्स सहावं चिंतेज्ज धम्मज्झाणत्थमुवउत्तो॥४२७॥

[निरयावाससुरालयासङ्ख्यद्वीपोदधिभिः कलितस्य।
तस्य स्वभावं चिन्तयेद् धर्मध्यानार्थमुपयुक्तः॥४२७॥]

[मू] अहवा लोगसभावं, भावेज्ज भवंतरम्मि मरिऊण।
जणणी वि हवइ धूया, धूया वि हु गेहिणी होइ॥४२८॥

[अथवा लोकस्वभावं भावयेद् भवान्तरे मृत्वा।
जनन्यपि भवति दुहिता दुहितापि खलु गेहिनी भवति॥४२८॥]

[मू] पुत्तो जणओ जणओ वि नियसुओ बंधुणो वि होंति रिऊ।
अरिणो वि बंधुभावं पावंति अणंतसो लोए॥४२९॥

[पुत्रो जनको जनकोऽपि निजसुतो बन्धवोऽपि भवन्ति रिपवः।
अरयोऽपि बन्धुभावं प्राप्नुवन्ति अनन्तशो लोके॥४२९॥]

[मू] पियपुत्तस्स वि जणणी, खायइ मंसाइं भवपरावत्ते।
जह तस्स सुकोसलमुणिवरस्स लोयम्मि कट्ठमहो॥४३०॥

[प्रियपुत्रस्यापि जननी खादति मांसानि भवपरावर्ते।
यथा तस्य सुकोशलमुनिवरस्य लोके कष्टमहो॥४३०॥]

[अव] सुगमा। भावार्थः कथागम्यः सा चेयम्-

[सुकोसलमुनिकथा]

अयोध्यायां विजयो राजा, वज्रबाहुपुरन्दरौ पुत्रौ। वज्रबाहुर्नागपुरेशसुतां मनोरमां परिणीयोदयसुन्दरपालकयुतोऽयोध्यायामागच्छन् मुनिमेकमीक्षमाणः श्यालकेनोक्तः "त्वमपीदृशो भव इति, अहं तव सहायः।" वज्रबाहुः संवेगतो दीक्षां जग्राह। अपरे २६ (षड्विंशतिः) राजकुम(मा)रा मनोरमा प्रव्रज्य सिद्धाः। एतच्छ्रुत्वा विजयः पुरन्दरं राज्ये न्यस्य प्रव्रज्य सिद्धः। पुरन्दरोऽपि कीर्तिधरं राज्ये न्यस्य प्रव्रजितः। कीर्तिधरोऽपि सहदेवीयुतो राज्यं करोति। अन्यदा सूर्यं राहुणा ग्रस्यमानमवेक्ष्य वैराग्यमापन्नः। दीक्षामाददानो मन्त्रिभिः सुतोत्पत्तिं यावत्स्थापितः। सहदेव्यां सुकोसलनाम्नि सुते जाते स प्रवव्राज। सुकोसलो राज्यं करोति। अन्यदा कीर्तिधरो मुनिर्मध्याह्ने भिक्षार्थमयोध्यायां प्रविशन् सहदेव्या–'मा मत्सुत एनं दृष्ट्वा व्रती भवतु' इति लोकैर्निष्कासितस्तथा दृष्ट्वा सुकोसलाधात्री रोदति। सुकोसलेन पृष्टा सर्वं यथास्थितमकथयत्। ततो राजा मुनिवधपरान् जनान् निवार्य कीर्तिधरसमीपे गत्वा गर्भस्थसुतं राज्ये न्यस्य प्राव्राजीत्। सहदेवी पुत्रवियोगार्त्या विपद्य मुग्रिल्ल(?)गिरौ व्याघ्री जाता। कीर्तिधरसुकोसलावपि तत्रैव गिरौ चातुर्मासिकतपः कृत्वा पारणकदिने ग्रामं प्रतिस्थितौ व्याघ्र्या दृष्टौ, आगत्य सुकोसले पतिता। मुनी प्राणान्तिकमुपसर्गं ज्ञात्वा तत्रैव कायोत्सर्गे स्थितौ। सुकोसलो व्याघ्र्या भक्ष्यमाणः शिवमाप। कीर्तिधरोऽपि {स्वर्णमठितसुतदन्तजातजातिस्मृतिः गृहीतानशनौ सहस्रारं जग्मतुः} [संसारस्वभावभावनानिरतः घातिकर्माणि क्षपयित्वा केवलीभूय सिद्धः]॥ इति सुकोसलकथा॥४३०॥ इति लोकभावना सप्तमी॥

[अष्टमी आश्रवभावना]

अथ धर्मध्यानार्थमेवाष्टमी कर्माश्रवभावना प्रारभ्यते। तत्र संविग्नेन मुमुक्षुणा संसारक्लेशछेदे सर्वदैवेदं मनसि भावनीयमित्याह-

[मू] केवलदुहनिम्मविए, पडिओ संसारसायरे जीवो।
जं अणुहवइ किलेसं, तं आसवहेउयं सव्वं॥४३१॥

[केवलदुःखनिर्मापिते पतितः संसारसागरे जीवः।
यमनुभवति क्लेशं तद् आश्रवहेतुकं सर्वम्॥४३१॥]

[अव] केवलदुःखैर्निर्मितं = घटितं तदात्मके इत्यर्थः॥४३१॥

यैर्जीवः कर्माश्रवयति तान् सूत्रत एवाह-

[मू] रागद्दोसकसाया, पंच पसिद्धाइं इंदियाइं च।
हिंसालियाइयाणि य, आसवदाराइं कम्मस्स॥४३२॥

[रागद्वेषकषायाः पञ्च प्रसिद्धानीन्द्रियाणि च।
हिंसालीकादीनि च आश्रवद्वाराणि कर्मणः॥४३२॥]

[अव] आदिशब्दाच्चौर्यमैथुनपरिग्रहरात्रिभोजनादि। इदमुक्तं भवति–यथा कश्चिदुद्घाटितद्वारेऽपवरके मूलद्वारैर्गवाक्षजालैः पवनप्रेरितं रजः प्रविशति तथा जीवापवरकेऽपि॥४३२॥

[मू] रागद्दोसाण धिरत्थु जाण विरसं फलं मुणंतो वि।
पावेसु रमइ लोओ, आउरवेज्जो व्व अहिएसु॥४३३॥

[रागद्वेषयोः धिगस्तु ययोः विरसं फलं जानानोऽपि।
पापेषु रमते लोक आतुरवैद्य इव अहितेषु॥४३३॥]

[अव] रागद्वेषयोर्धिगस्तु ययोर्विरसं फलं जानन्नपि वराको लोकस्तदन्धीकृतः पापेषु रमते यथा व्याधितोऽपथ्येषु॥४३३॥

अथ क्रोधमानमायालोभानामाश्रवद्वारतामाविःकुर्वन्नाह-

[मू] धम्मं अत्थं कामं, तिन्नि वि कुद्धो जणो परिच्चयइ।
आयरइ ताइं जेहि, य दुहिओ इह परभवे होइ॥४३४॥

[धर्ममर्थं कामं त्रीण्यपि क्रुद्धो जनः परित्यजति।
आचरति तानि यैश्च दुःखित इह परभवे भवति॥४३४॥]

अथ क्रोधादीनां चतुर्णामपि क्रमेणोदाहरणान्याह-

[मू] पावंति जए अजसं, उम्मायं अप्पणो गुणब्भंसं।
उवहसणिज्जा य जणे, होंति अहंकारिणो जीवा॥४३५॥

[प्राप्नुवन्ति जगत्ययश उन्मादमात्मनो गुणभ्रंशम्।
उपहसनीयाश्च जने भवन्ति अहङ्कारिणो जीवाः॥४३५॥]

[मू] जह जह वंचइ लोयं, माइल्लो कूडबहुपवंचेहिं।
तह तह संचिणइ मलं, बंधइ भवसायरं घोरं॥४३६॥

[यथा यथा वञ्चयते लोको मायी कूटबहुप्रपञ्चैः।
तथा तथा सञ्चिनोति मलं बध्नाति भवसागरं घोरम्॥४३६॥]

[मू] लोभेणऽवहरियमणो, हारइ कज्जं समायरइ पावं।
अइलोभेण विणस्सइ, मच्छो व्व जहा गलं गिलिउं॥४३७॥

[लोभेनापहृतमना हारयति कार्यं समाचरति पापम्।
अतिलोभेन विनश्यति मत्स्य इव यथा गलं गीर्त्वा॥४३७॥]

[मू] कोहम्मि सूरविप्पो, मयम्मि आहरणमुज्झियकुमारो।
मायाइ वणियदुहिया, लोभम्मि य लोभनंदो त्ति॥४३८॥

[क्रोधे सुरविप्रो मदे आहरणमुज्झितकुमारः।
मायायां वणिग्दुहिता लोभे च लोभनन्द इति॥४३८॥]

[मू] होंति पमत्तस्स विणासगाणि पंचिंदियाणि पुरिसस्स।
उरगा इव उग्गविसा, गहिया मंतोसहीहिं विणा॥४३९॥

[भवन्ति प्रमत्तस्य विनाशकानि पञ्चेन्द्रियाणि पुरुषस्य।
उरगा इव उग्रविषा गृहीता मन्त्रौषधाभ्यां विना॥४३९॥]

[अव] क्रोधे सूरविप्र उदाहरणम्। मदो मानोऽहङ्कार इति यावत् तत्रोदाहरणम् उज्झितनामा कुमारः, मायायां वणिग्दुहिता, लोभे च लोभनन्दो नामा। उदाहरणानि यथा-

[सुरविप्रकथा]

वसन्तपुरे कनकप्रभो राजा, सुयशा पुरोहितः। सुरनामा तस्य सुतः सर्वविद्यापारगः परमत्यन्तं कोपनः सदाग्निरिव प्रज्वलँस्तिष्ठति, निष्ठुरभाषी कलहकरः राजसभायामपि सर्वैः सह कलहायते। अन्यदा पितर्युपरते राजा सकोपनत्वात्पुरोहितपदे न स्थापितः।

सूरभार्या रूपवती कलानिधिः। अन्यदा सूरेण कोऽपि पुरुषः स्वल्पापरोधे लकुटेन हतो मृतः। राज्ञा सूरो दण्डितो देशान्निष्कासितः। रूपवती तत्पत्नी अन्तःपुरे क्षिप्ता। सुरस्तापसव्रतमाराध्य राजवधनिदानं कृत्वा वायुकुमारो जातः। धूलीवर्षेण सर्वं वसन्तपुरं स्थलीकरोति। ततश्च्युत्वा डुम्बो जातः। ततो मृत्वा प्रथमनरके। ततोऽनन्तं भवं भ्रान्त्वा मगधदेशे क्वापि ग्रामे ग्रामकूटो जातः कोपपरः। अन्यदा भूपेन सह कलिं विधत्ते उच्चभाषणेन। रुष्टो राजा तं बद्ध्वा वृक्षशाखायामुल्लम्बयति। इतश्च तत्र प्रदेशे केवली प्राप्तः। राजा धर्मं श्रुत्वा पृच्छति–"भगवन् ! किं जिजीषुणा जेतव्यम्?" ज्ञानी स्माह–"राजन्! अन्तरङ्गादिसैन्यं क्रोधादिकम्, यतो दारुणदुःखविपाकाः क्रोधादयः।" उल्लम्बितग्रामकूटस्वरूपं मूलतो यथास्थितं प्रोक्तं सूरजन्मप्रभृतिकम्। तच्छ्रुत्वा बहवो लोकाः प्रतिबुद्धाः संयमं प्रतिपद्यन्ते॥ इति कोपे सुरविप्रकथा॥

[उज्झितकुमारकथा]

नन्दिपुरे रत्नसारो राजा तस्यापत्यानि न जीवन्ति। अन्यदा पुत्रो जातः। सूर्पेणोत्करडिकायाम् उज्झितः। दैववशान्न मृतः। तस्योज्झितकुमार इति नाम दत्तम्। स यौवनमाप, परमत्यन्ताहङ्कारी शैलस्तम्भ इव बाल्येऽपि मातापित्रोर्नतिं न कुरुते। स जगत्तृणवन्मन्यते। देवगुरून्न नमति। अन्यदा लेखशालायामुच्चासनस्थं कथाचार्यम्–'रे भिक्षाचर!' इत्यधिक्षिपन् चपेटयाहत्य भूमौ पातयति। ततो राज्ञा ज्ञात्वा धिक्कृतः स देशान्निर्ययौ। तापसाश्रमे गतः। पर्यस्थिकां बद्ध्वा मुनीनामग्रे आसीनः। तापसैर्विनयं कुरु इत्युक्तं ततो रुष्टस्ततोऽपि निर्गतः। मार्गे सिंहं दृष्ट्वा दर्पान्न पश्यति। सन्मुखम् एव गतः। सिंहेन भक्षितः। मृत्वा खरो जातः। ततः पुनरपि नन्दिपुरे पुरोहितस्य पुत्रो जातश्शैशवेऽपि १४(चतुर्दश) विद्यापारगः महाहङ्कारो मृत्वा तत्रैव गायनो डुम्बो जातः। पुरोधसस्तं दृष्ट्वा महास्नेहः। इतश्च केवली तत्रायातः पुरोधसा डुम्बपुत्रस्नेहकारणं पृष्टः। उज्झितकुमारप्रभृति सर्वमुक्तं केवलिना। एवमहङ्कारविपाकं श्रुत्वा राजादयो वैराग्यात्प्रव्रजिताः शिवमापुरिति॥ इति मदे उज्झितकुमारकथा॥

[वणिग्दुहितृकथा]

वाराणस्यां कमलश्रेष्ठिनो मायाबहुला पद्मिनी सुता। सा माता पित्रोर्विनयं कुरुते। तौ भृशं रञ्जितौ तद्वियोगं क्षणमपि नेच्छतः। अन्यदा चन्दननाम्नो वणिजः सा दत्ता। स गृहजामाता जातः। कमलश्रेष्ठिनि मृते पुत्राभावाच्चन्दन एव गृहपतिर्जातः। पद्मिनी

निरङ्कुशा तरुणैः सह रमते। मायाबहुला महासतीवद् भर्तारमनुवर्तते। तथा यथाच्छेकलोकोऽपि महासतीति तां प्रशंसति। अन्यदा पुत्रो जातः। सा स्तन्यपानं न कारयति। वक्ति च–"अहं सती परपुरुषसङ्गं कथं कुर्वे?" इति श्रुत्वा हृष्टः श्रेष्ठी। धात्रीमेकां कुरुते। अन्यदा चन्दनोऽट्टे व्यवहरति। एकस्तरुणो ब्राह्मणस्तस्याट्टे सम्प्राप्तः यावदुपविशति तावदट्टनिसृतं तृणं मस्तके लग्नम्। श्रेष्ठी भक्त्यापनयति। द्विजः प्राह–"श्रेष्ठिन्! जन्ममध्येऽपि मया परधनं तृणमात्रमपि न गृहीतमदत्तम् अद्य पुनरट्टान्मम मस्तके तृणं पतितम्, तस्करूपमिदम्, शिरः छेत्स्यामि।" क्षुरिकां कर्षयति। श्रेष्ठी वारयति। तुष्टेन श्रेष्ठिना ब्रह्मचारी निरीहः शुद्ध इति स्वावासे नीतः। स्वसहायत्वेन स्थापितः। अन्यदा तं गृहे रक्षकं मुक्त्वा धनार्जनाय देशान्तरं गतः। पद्मिनी तत्र विप्रे लग्नाः। चन्दनः कुसुमपुरं गतः। बहिरुद्याने एकं पक्षिणं काष्ठीभूतं निश्चेष्टं पश्यति। तस्मिन् तथास्थिते शेषाः पक्षिण उदरपूरणार्थं दिक्षु व्रजन्ति। ततः स पक्षी नीडस्थाण्डानि भक्षयति। तथैव पुनस्तिष्ठति। एवं प्रत्यहं कुर्वन् दृष्टश्चन्दनेन। अन्यदा चन्दनस्तरुगहने गतस्तत्रैकं तापसवेषचौरं तपस्तप्यमानं भूतानुकम्पया युगमात्रन्यस्तदृष्टिप्रमार्जनपूर्वं व्रजन्तं पश्यति स्म। तमेव अन्यदा वने क्रीडार्थमागतानां महेश्वरकन्यकानां विनाश्याभरणानि गृह्णन्तं ददर्श। चन्दनः स्वावासे गतः। इतश्च तापसो राज्ञा विगोप्यमानो विनाशितः। चन्दनः स्वपुरमागतः। प्रच्छन्नं स्वगृहे भार्यां तेन द्विजेन रममाणां पश्यति। विस्मितचित्त एवं पपाठ-

बालेनाऽचुम्बिता नारी, ब्राह्मणो नृपहिंसकः।
काष्ठीभूतो वने पक्षी, जीवानां रक्षको व्रती॥

आश्चर्याणीह चत्वारि, मयापि निजलोचनैः।
दृष्टान्यहो ततः कस्मिन्, विश्रुब्धं क्रियतां मनः?॥

ततः संवेगमापन्नः स्त्रीचरितं विचारयन् साधुपार्श्वे व्रती जातः। क्रमेण सिद्धः। अपरे चत्वारो मृत्वानन्तसंसारिणो जाताः॥ इति मायायां वणिग्दुहितृकथा॥

लोभे लोभनन्दो लोभातिरेकान्मृत्तिकावेष्टितसुवर्णकुशाग्राहककथा षडावश्यके प्रसिद्धा।तदेवं क्रोधादिकषायाणामाश्रवद्वारत्वमुपदर्शयन्नाह–यथा मन्त्रौषधाभ्यां विना उग्रविषा महाकृष्णसर्पा विनाशायैव भवन्ति तथेन्द्रियाण्यपि पुंसः प्रमत्तस्य तत्प्रतिविधानसन्तोषादिविरहितस्येहपरलोकयोर्विनाशकानि स्युरिति॥४३९॥

सर्वेषामिन्द्रियाणां यथाक्रममुदाहरणान्याह-

[मू] सोयपमुहाण ताण य दिट्ठंता पंचिमे जहासंखं।
रायसुयसेट्ठितणओ गंधमहुप्पियमहिंदा य॥४४०॥

[श्रोत्रप्रमुखाणां तेषां च दृष्टान्ताः पञ्च इमे यथासङ्ख्यम्।
राजसुतः श्रेष्ठितनयो गन्धमधुप्रियमहेन्द्राश्च॥४४०॥]

[अव] इह श्रोत्रविनाशहेतुत्वे राजसुतो दृष्टान्तः। चक्षुरिन्द्रिये श्रेष्ठिसुतकथा। घ्राणेन्द्रिये मधुप्रियोदाहरणम्। रसनेन्द्रिये मधुप्रियकथा। स्पर्शनेन्द्रियविपाके महेन्द्रकथा। राजसुतकथा यथा-

[राजसुतकथा]

ब्रह्मस्थलपुरे भुवनचन्द्रो राजा, रामः सुतः ७२(द्विसप्ततिः)कलाकुशलः। अन्यदा राज्ञा मन्त्री पृष्टः–"रामाय यौवराज्यपदं ददामि इति।" मन्त्र्याह–"नायं योग्यः।" को दोषः?" इति राज्ञोक्ते मन्त्र्याह–"अयमवशश्रोतेन्द्रियः प्रत्यहं गीतप्रियः।" राजा हसित्वाह–"मन्त्रिन्! राज्ञां गीतप्रियत्वं गुणः। अहो! तव चतुरता।" मन्त्र्याह–"देव! अत्यासक्तत्वं दोषः।"

जह अग्गीए लवो वि हु, पसरंतो दहइ गाम नगराई।
इक्किक्कमिंदिअं पि हु, तह पसरंतं समग्गगुणे॥१४॥ (हेम.मल.वृत्ति)

तत एतस्य लघुभ्रातुः सम्प्रतिजातस्य राजलक्षणलक्षितस्य यौवराज्यं दीयताम्" इति मन्त्रिणि कथयत्यपि राज्ञा रामस्यैव दत्तम्। क्रमेण राज्ञि मृते राम एव राजा जातः। कनीयान् भ्राता युवराजा। रामोऽहर्निशं गीतानि शृणोति। स्वयमपि गायति, करोत्यभिनवानि गीतानि, शिक्षयन्ति म्बादीन्, नित्यं गीतासक्त एवास्ते, न राज्यचिन्तां करोति। अन्यदा तरुणीडुम्बीभिर्गीतप्रसक्तस्तद्रूपमोहितोऽवगणय्य निजकुलादिमर्यादां ताः सेवतेऽनाचारी सततं तदासक्त एवास्ते। ततो मन्त्रिभिर्विचार्य तस्य लघुभ्राता महाबलो राज्ये स्थापितः। रामो निर्द्धाटितो देशाद्विदेशे भ्रान्त्वा मृत्वा हरिणो जातः गीतश्रवणासक्तो व्याधेन हतो जातो महाबलपुरोहितस्य पुत्रस्तथापि गीतप्रियः अवशश्रवणेन्द्रियः। अन्यदा महाबलनृपेण रात्रौ डुम्बकुटुम्बे गायति पार्श्वे स्थितः पुरोहितपुत्रो भणितः "यन्मम निद्रासमये एते गायन्तः स्थाप्याः। तेन सरसगीतासक्तेन न वारितः। पश्चाद्रात्रौ प्रबुद्धो राजा रुष्टस्तैलमुक्ताल्य(मुत्क्वाथ्य) तस्य कर्णयोः क्षिपति। स

मृतः। राज्ञः पश्चात्तापो जातः। यत्स्वल्पेऽप्यपराधे मया गुरुदण्डः कृत इति। इतश्च केवली तत्रायातः। राजा तं वन्दित्वा तस्य कथां पृच्छति। रामभवादारभ्य यथास्थितमाख्यातम्। अग्रतो भूयान् संसार इति श्रुत्वा श्रवणेन्द्रियविपाकं दारुणं दृष्ट्वा महाबलः प्रव्रजितः शिवमाप। इति श्रवणेन्द्रियविपाके राजसुतकथा।

[श्रेष्ठिसुतकथा]

विजयपुरे विश्वम्भरी भूपः, कुशलो मन्त्री, यशोधरः श्रेष्ठी, त्रयाणामन्योऽन्यं प्रीतिः। अन्यदा त्रयाणामपि त्रयः पुत्रा जाताः। यौवनमापुः। अन्यदा मन्त्री श्रेष्ठीनमाह–"यथा तव पुत्रो न भव्यः, यतो राजकुले व्रजन् राज्ञोऽन्तःपुरीं सुचिरः तृषितः प्रेक्षते, गच्छति काले अयं विनाशमपि करिष्यति, ततो वार्यताम्।" स श्रेष्ठीना वारितोऽपि न तिष्ठति। अन्यदा नृपेण सुचिरं सरागदृष्ट्या रमणीः प्रेक्षमाणो दृष्टः। हक्तितो बाढं निषिद्धो राजकुले तस्य प्रवेशोऽपि। ततश्च स चपलाक्ष इति प्रसिद्धो जातः। अन्यदा वणिक्पुत्रैः सह विदेशे प्रहितः। तत्रापि चक्षुरिन्द्रियपरवशः प्रासादारामवापीकूपादीन् प्रत्यहं विलोकते। अन्यदा प्रासादे क्वापि पाषाणपुत्रिकां दिव्यरूपां दृष्ट्वा तमेव पश्यन्नास्ते भोजनाद्यपि मुक्तम्। ततो वणिक्पुत्रैस्तादृश्येव वस्त्रमयी पुत्तलिका गोपयित्वा तत्स्थाने स्थापिता। स तां निरीक्षते। वणिक्पुत्रैः सा उत्तारके नीता स तामेव विलोकमानः पृष्ठिलग्नः समागात्। वणिक्पुत्रा व्यवसायं कृत्वा तां वस्त्रपुत्रिकां गृहीत्वा स्वपुरं प्रति चलिताः श्रेष्ठिपुत्रयुताः। मार्गे धाट्या लुण्टितः सार्थः। वस्त्रपुत्रिका गृहीताः। तामपश्यन् श्रेष्ठिसुतो ग्रहिलो जातः। अटव्यां भ्रमति। अन्यदा विजयपुरं प्राप्तः। अन्यदा राजाङ्गना वने क्रीडन्ती दृष्टा। तदेकदृष्टिरास्ते राजपुरुषैर्मारितो मृतः। एवमनेकभवं भ्रान्तः। इति चक्षुरिन्द्रियविपाके श्रेष्ठिसुतकथा।

[गन्धप्रियकथा]

पद्मखण्डपुरे राजा प्रजापतिः, ज्येष्ठपुत्रस्तस्य गन्धप्रियनामा यद्यत् सुगन्धिवस्तु तत् घ्राणेन्द्रियवशगो जिघ्रति। अन्यदा नद्यां क्रीडति। इतश्चापरमाता तन्मारणाय चूर्णयोगं महारौद्रं सुगन्धं पुटिकां बद्ध्वा क्षिप्त्वा पयसि प्रवाहयति। कुमारस्तां दृष्ट्वा गृह्णाति। वार्यमाणोऽपि गन्धमाघ्राय मृतः। भृङ्गो जातः। ततोऽनन्तं भवं भ्रान्तः। इति घ्राणेन्द्रियविपाके गन्धप्रियकथा।

[मधुप्रियकथा]

अथ रसनेन्द्रियविषये कथा, यथा–सिद्धार्थपुरे विमलश्रेष्ठी। तस्य रसनेन्द्रियवशगो मधुप्रियनामा पुत्रः तिक्तकटुकषायादिरसेषु गृद्धः प्रत्यहं प्रत्यहमपूर्वामपूर्वां रसवतीं कारयति। आसक्त्या तद्वैयग्र्येण व्यवसायादि न करोति। अन्यदा स चिन्तयति–'भुक्ता मया सर्वे रसाः, परमस्मत्कुलाभोज्यमांसमद्यरसौ नाद्यापि भुक्तौ, ततो यद्भवति तद्भवतु परं मद्यमांसादि भोक्तव्यमिति।' ततो मद्यमांसाद्यत्ति। मद्यं पिबति। वार्यमाणोऽपि न तिष्ठति। ततः पित्रा कालाक्षरितो देशान्तरे भ्रमति। मधुप्रिय इति लोकप्रसिद्धो जातः। अन्यदा रसनेन्द्रियपरवशतया महासक्तो जातः। प्रच्छन्नं लोकानां शत्रून्मारयित्वा भक्षयति। दृष्टस्तलारक्षेण बद्ध्वा विडम्ब्य शूलीमारोपितः। मृतो नरकादिष्वनन्तसंसारं भ्रान्तः। इति मधुप्रियकथा रसनेन्द्रियविषये।

[महेन्द्रराजकथा]

अथ स्पर्शेन्द्रियविषये कथा, यथा–अथ विश्वपुरे धरणेन्द्रो राजा राज्यं करोति। तस्य पुत्रः महेन्द्रः। मदनश्रेष्ठी पुत्रो मित्रम्। मदनस्य चन्द्रवदना भार्या। सान्यदा पतिमित्राय महेन्द्राय गृहे गता स्वयं हस्तेन ताम्बूलमर्पयति। तस्या हस्तस्पर्शं सुकुमारं ज्ञात्वा सोऽध्योपपन्नः। स्पर्शेन्द्रियपरवशतया ततस्तया सह हास्यं करोति। एवं प्रसङ्गतोऽनाचारमपि सेवते स्म। अन्यदा राजा महेन्द्रस्य राज्यं दातुमिच्छति। इतश्च महेन्द्रेण चन्द्रवदनासुकुमारस्पर्शलुब्धेन मदनं हन्तुं नियुक्ताः सेवकाः। ते मदनं प्रहारैर्जर्जरयन्ति। तलारक्षैर्दृष्टा राज्ञः पार्श्वे नीताः। राज्ञा पृष्टा नियुक्ताः–"केन यूयं प्रहिताः।" ते ऊचुः–"महेन्द्रकुमारेण।" ततो राज्ञा सम्यग्वृतान्तं ज्ञात्वा स देशान्निष्कासितः। चन्द्रवदनां लात्वा स गतो विदेशम्। मदनो वैद्यैः सज्जः कृतः। राजान्यपुत्राय राज्यं दत्त्वा प्रव्रज्य मोक्षं गतः। मदनोऽपि तथाविधिं स्त्रीचरित्रं दृष्ट्वा संविग्नः प्रव्रज्य वैमानिकदेवो जातः। चन्द्रवदनामहेन्द्रौ विदेशे भ्रमन्तौ चौरैर्निगृहीतौ। बब्बरकूले विक्रीतौ। तत्र रुधिराकर्षणवेदनां सहतः भवानन्तं भ्रान्तौ। इति स्पर्शेन्द्रियविपाके महेन्द्रराजकथा।

अथ हिंसादीनामाश्रवद्वारत्वं सदृष्टान्तमाह-

[मू] हिंसालियपमुहेहिं, य आसवदारेहिं कम्ममासवइ।
नाव व्व जलहिमज्झे, जलनिवहं विविहछिड्डेहिं॥४४१॥

[हिंसालीकप्रमुखैश्च आश्रवद्वारैः कर्म आश्रवति।
नौरिव जलधिमध्ये जलनिवहं विविधच्छिद्रैः॥४४१॥]

[मू] ललियंग-धणायर-वज्जसार-वणिउत्त-सुंदरप्पमुहा।
दिट्ठंता इत्थं पि हु, कमेण विबुहेहिं नायव्वा॥४४२॥

[ललिताङ्ग-धनाकर-वज्रसार-वणिक्पुत्र-सुन्दरप्रमुखाः।
दृष्टान्ता अत्रापि खलु क्रमेण विबुधैः ज्ञातव्याः॥४४२॥]

[अव] द्वे अपि पाठसिद्धे। तत्र प्राणातिपातेनैकान्तेनाशुभकर्माश्रवति। यथा पूर्वभवे गङ्गदत्तः। तन्निवृत्तिस्तु न तदाश्रवति। तथा तद्भवे एतद्भ्राता ललिताङ्ग एष व्यतिरेके दृष्टान्तः। अयमेव सूत्रे साक्षादुपात्तोऽन्वयदृष्टान्तस्तु गङ्गदत्तः स्वयमेव द्रष्टव्यः। मृषावादे धनाकरः। अदत्तादाने वज्रसारः। मैथुने वणिक्पुत्रः। परिग्रहे सुन्दराख्यानम्। कथानकानि यथा-

[ललिताङ्ग-गङ्गदत्तकथा]

धान्यसञ्चयपुरे द्वौ भ्रातरौ वनात् काष्ठभृतं शकटं लात्वा चलितौ। लघुः शकटं खेटयति। वृद्धोऽग्रेसरः मार्गे चक्खुलण्डीं[१] दृष्ट्वा वृद्धः प्राह–"शकटं टालनीयम्। यथेयं वराकी न म्रियते।' तत् श्रुत्वा सा हृष्टा। लघुश्चिन्तयति–'किमनया रक्षितया?' इति मध्ये एव खेटयति। विनष्टा सा वसन्तपुरे धनश्रेष्ठिनः सुता जाता। यौवने परिणायिता। अन्यदा ज्येष्ठबन्धुर्मृत्वा तस्याः सुतो जातः ललिताङ्ग इति नामा। कालान्तरे द्वितीयोऽपि तस्याः कुक्षाववातरत्। प्रद्वेषात् सा शातनपातनौषधानि पिबति। क्रमाज्जातः पुत्रः। सा दासी हस्ते उज्झति बहिः। तं दृष्ट्वा पिता रहः स्थापयत्यन्यत्र। गङ्गदत्तः इति नाम कृतम्। अन्यदोत्सवे पितृपुत्रौ भोजनायोपविष्टौ। गङ्गदत्तः पृष्ठौ स्थापितः। तस्यापि पक्वान्नादि प्रच्छन्नं दत्तम्। कथमपि तं दृष्ट्वा बलात् सा हस्तेन सञ्चारके क्षिपति पितृपुत्रावुत्थायाशुचेस्तं निष्कास्य प्रक्षाल्य वनान्तर्गतौ। ज्ञानिने पृच्छतः–"किमेतत्?।" ज्ञानी स्माह– प्राग्भवे द्वेषकारणं चाख्यत्। तद् यथास्थितं श्रुत्वा त्रयोऽपि दीक्षां गृह्णन्ति। जनकः सिद्धः। गङ्गदत्तः सर्वस्य वल्लभो भूयामिति निदानेन, ललिताङ्गस्तु तद्भावात् महाशुक्रे देवौ जातौ, ततश्च्युत्वा वसुदेवसुतौ बलभद्रकृष्णौ जातौ। इति कृताकृतप्राणातिपातललिताङ्ग-गङ्गदत्तयोः कथानकम्॥

---

१. यथाग्नेर्लवोऽपि खलु दहति ग्रामनगराणि। एकैकमिन्द्रियमपि खलु प्रसरतः समग्रगुणान्॥

[धनाकरकथा]

मृषावादे धनाकरकथा, यथा–विजयवर्धनपुरे सुलसधनाकरनामानौ वणिजौ मिथः प्रातिवेश्मकौ वसतः। धनाकरो मिथ्यादृगपि दानी च गृहाट्टादिषु महामूर्च्छावान्। अन्यदा मुनेः कस्यापि मासक्षपणपारणे भक्त्या प्रासुकाः सक्तवो दत्ताः एकशरावमानाः। अन्यदा सुलसधनाकरयोर्भूविषयो विवादो जातः। केनापि न भज्यते स्म। राज्ञा पृष्टो धनाकरो भूविषयमसत्यं जानन्नपि वक्ति। साहसाद्दिव्यं विधत्ते। असत्यो जातः। लोकैर्धिक्कृतः। राज्ञा देशान्निष्कासितः। मृतो रत्नप्रभायां गतः। तत उद्धृत्य जातः पल्लीशः। अन्यदा केनचिद्राज्ञा पल्लीतो निष्कासितो वने भ्राम्यति। त्रीणि दिनानि क्षुधार्तः दिनत्रयान्ते सक्तुशरावमेकं जलयुतमदृष्टेन केनाप्युपनीतं पुरः पश्यति। सकलकुटुम्बस्य विभज्यार्पयति। परं न त्रुट्यन्ति सक्तवः। विस्मितश्चिन्तयति–'अहो भोजननिर्वाहोऽभूत्।' ज्ञानिनं पृच्छति। स स्माह–"भद्र! त्वया प्राग्भवे यत् सक्तुदानपुण्यं कृतं तत्प्रभावात् तत्पुण्यं प्रणुन्नम्, व्यन्तरेण तवायं सक्तुभोजनविधिरक्षयो दत्तः। यच्च भूविषयमसत्यमुक्तं तत्पापात् त्वं भृशं दुःखी जातः स्थानभ्रष्टश्चेति।" ततो वैराग्यात् प्रव्रज्य तपः कृत्वा ब्रह्मलोके देवो जातः। विदेहे मोक्षं गमी। इति मृषावादे कथा॥

[वज्रसारकथा]

अथावन्तिवर्धनपुरे वज्रसारश्रेष्ठी दानव्यसनी कालेन क्षीणधनो जातः। रत्नपुरस्थद्रव्याढ्यमातुलपार्श्वगमनाय प्रस्थितः सकुटुम्बः। मार्गे गिरिपुरे रत्नपुरादागतेन पथिकेन प्रोक्तं यत् "तव मातुलो राज्ञा दण्डितः।' इति श्रुत्वा स दुःखी जातः। गिरिपुरे प्रविशन् राजपथपतितां रत्नावलीं दृष्ट्वा गृह्णाति। लोभातिरेकाद् वस्त्राञ्चले बध्नाति। प्रतोल्यां राजपुरुषैः शोध्यमाने सर्वजने सोऽपि शोधितः। दृष्ट्वा रत्नावलीं गृहीतो राजपार्श्वे चौरोऽयमिति वधायादिष्टः। नीतो वध्यभूमौ। इतश्च तत्कुटुम्बं रोदति। तद्दुःखपीडितया तत्रागतया राजपुत्र्या राजानं विज्ञप्य मोचितः। स संविग्नो गुरुपार्श्वे प्रव्रज्य तपः कृत्वा शिवमाप। इति अदत्तादानविषये वज्रसारकथानकमिदम्।

[श्रीपतिवणिक्कथा]

अथ मैथुनविषये कथा। कौशाम्ब्यां नगर्यां शिवश्रेष्ठी धनी साधानां भार्यां मुक्त्वा धनार्जनाय विदेशे गतः। प्रभूता धनकोटीरर्जयित्वा तत्र श्रीपतिरिति प्रसिद्धो लोके जातः। सप्तदशवर्षान्ते स स्वपुरं प्रति चचले। इतश्च तद्भार्या प्रसूता पुत्री जाता रूपवती नाम्ना

वपुषा च यौवनं प्राप्ता। उज्जयिनीवासी बन्धुदत्तश्रेष्ठिना परिणीता श्वसुरगृहेऽस्ति। श्रीपतिर्देशान्तराद्वलितो वर्षत्रयेण तत्रोज्जयिन्यां प्राप्तः। वर्षाकाले तत्र भाण्डान्युत्तार्य तस्थौ। बन्धुदत्तेन सह प्रीतिर्दत्ता। तद्गृहे गतागतं कुर्वाणः श्रीपतिरन्यदा रूपवत्यां प्रसक्तो जातः। मासचतुष्टयमतिवाह्य कौशाम्ब्यामागतः। अन्यदा भार्यया पुत्री आनायिता। गता च सा स्नानमण्डपे स्नानार्थमागतेन श्रीपतिनायान्ती दृष्टा। परं स तया न दृष्टः। स चिन्तयति–'हा! दैव! किमैतत्? अहमुज्जयिन्यां मासचतुष्टयं यया सह स्थितोऽनाचारवान् सा चैषा मम पुत्री। ततः कथमहं पापात्मा मुखमस्या दर्शयामि?" इति विचिन्त्य वैराग्यात् कस्याप्यकथयित्वापरद्वारेण निर्गतः। साधुपार्श्वे व्रतमादाय प्रायश्चित्तेनात्मानं विशोध्य वैमानिकदेवो जातः। रूपवत्यपि जनकपरिजनं दृष्ट्वोपलक्ष्य चिन्तयति मनसि। क्षणमेकं चिन्तयित्वा–'आ! हा! हा! धिक्! किमेतत्? येन समं मयानाचारः कृतः स नूनं मम पिता, यतः स एवायं परिवारः, ततः किं पापाया मम जीवितेन?' इति विमृश्य मरणोन्मुखा भृगुपातं क्वापि गिरौ कुर्वाणा ऋषिणा वारिता। साध्वीपार्श्वे व्रतं लात्वा स्वर्गता। इति मैथुने श्रीपतिवणिक्कथा।

[सुनन्दसुन्दरकथा]

भद्दिलपुरे सुनन्दसुन्दरौ वणिजौ भ्रातरौ। सुनन्दः शुद्धसम्यग्दृष्टि द्वादशव्रती कृतपरिग्रहपरिमाणः प्रत्यहं द्विरावश्यक-त्रिकालदेवपूजा-सामायिक-पौषधपरः, सुन्दरस्त्वर्थार्जनैकदृष्टिर्धर्मनामापि न जानाति। वृद्धबान्धवं सन्तोषपरं नियमित१५ (पञ्चदश) कर्मादाननिषिद्धबहुपापव्यापारं दृष्ट्वा चिन्तयति–'अहं पृथग् भूत्वा सर्वव्यवसायान् कृत्वा धनमर्जयामि' इति। जातः पृथग्। पोतेन रत्नद्वीपे गतः। धनमर्जयित्वा पोतभङ्गात् सर्वधनं निर्गमयामास। एवं बहुशोऽतृष्णोऽतीवकामभोगतया बहून् महारम्भान् व्यवसायान् कृत्वा धनमुपार्जयित्वा निर्गमयामास। सुनन्दस्य पुनः सन्तोषपरस्य स्तोकेन व्यवसायेन प्रत्यहं श्रीर्वर्धते। जातो धनवान्। सुन्दरस्तु दरिद्रः। अन्यदा सुन्दरः सुनन्दऋद्धिं दृष्ट्वा मत्सरी लोभातिरेकाद् 'एनं विनाश्य सर्वां लक्ष्मीमहं गृह्णामि' इति विचिन्त्य सुनन्दमारणाय रात्रौ गच्छन् सर्पेण दष्टो मृतः। नरके गतः। सुनन्दः श्राद्धधर्ममाराध्य सौधर्मे देवो जातः। इति सुनन्दसुन्दरकथा॥४४२॥ आश्रवभावनावचूरिः॥

[नवमी संवरभावना]

आश्रवभावनानन्तरं संवरभावनामाह। तत्र प्राणातिपाताश्रवसंवरणोपायमाह-

[मू] जो सम्मं भूयाइं, पेच्छइ भूएसु अप्पभूओ य।
कम्ममलेण न लिप्पइ, सो संवरियासवदुवारो॥४४३॥

[यः सम्यग् भूतानि प्रेक्षते भूतेष्वात्मभूतश्च।
कर्ममलेन न लिप्यते स संवृताश्रवद्वारः॥४४३॥]

[अव] यः सम्यग् भूतानि पृथिव्यादिजीवलक्षणानि प्रेक्षते = आगमश्रवणद्वारेण जानाति। ततश्च तेष्वात्मभूतो भवति = आत्मवत् सर्वाणि रक्षतीत्यर्थः। स कर्मणा न लिप्यते इति॥४४३॥

[मू] हिंसाइ इंदियाइं, कसायजोगा य भुवणवेरीणि।
कम्मासवदाराइं, रुंभसु जइ सिवसुहं महसि॥४४४॥

[हिंसादीनीन्द्रियाणि कषाययोगाश्च भुवनवैरिणि।
कर्माश्रवद्वाराणि रुन्द्धि यदि शिवसुखं महसि॥४४४॥]

[अव] एतानि नरकाद्यनन्तदुःखदानि रम्भस्व। तद्विपक्षमेव तेन यदि शिवसुखमर्हसि = वाञ्छसीत्यर्थः॥४४४॥

उपसंहरणमाह-

[मू] निग्गहिएहि कसाएहिं आसवा मूलओ निरुब्भंति।
अहियाहारे मुक्के, रोगा इव आउरजणस्स॥४४५॥

[निगृहीतैः कषायैः आश्रवा मूलतो निरुध्यन्ते।
अहिताहारे मुक्ते रोगा इवातुरजनस्य॥४४५॥]

[मू] रुंभंति ते वि तवपसमझाणसन्नाणचरणकरणेहिं।
अइबलिणो वि कसाया, कसिणभुयंग व्व मंतेहिं॥४४६॥

[रुध्यन्ते तेऽपि तपःप्रशमध्यानसज्ज्ञानचरणकरणैः।
अतिबलिनोऽपि कषायाः कृष्णभुजङ्गा इव मन्त्रैः॥४४६॥]

[मू] गुणकारयाइ धणियं, धिइरज्जुनियंतियाइं तुह जीव !।
नियया इंदियाइं, वल्लिनिउत्ता तुरंग व्व॥४४७॥

[गुणकारकाणि बाढं धृतिरज्जुनियन्त्रितानि तव जीव !।
निजकानीन्द्रियाणि वल्लिनियुक्ताः तुरङ्गा इव॥४४७॥]

[मू] मणवयणकायजोगा, सुनियत्ता ते वि गुणकरा होंति।
अनिउत्ता उण भंजंति मत्तकरिणो व्व सीलवणं॥४४८॥

[मनोवचनकाययोगाः सुनिवृत्ताः तेऽपि गुणकरा भवन्ति।
अनिवृत्ताः पुनो भञ्जन्ति मत्तकरिण इव शीलवनम्॥४४८॥]

[मू] जह जह दोसोवरमो, जह जह विसएसु होइ वेरग्गं।
तह तह विन्नायव्वं, आसन्नं से य परमपयं॥४४९॥

[यथा यथा दोषोपरमो यथा यथा विषयेषु भवति वैराग्यम्।
तथा तथा विज्ञातव्यमासन्नं तस्य परमपदम्॥४४९॥]

[मू] एत्थ य विजयनरिंदो, चिलायपुत्तो य तक्खणं चेव।
संवरियासवदारत्तणम्मि जाणेज्ज दिट्ठंता॥४५०॥

[अत्र च विजयनरेन्द्रः चिलातपुत्रश्च तत्क्षणं चैव।
संवृताश्रवद्वारत्वे जानीयाद् दृष्टान्तौ॥४५०॥]

[अव] कथानकगम्योऽर्थस्तच्चेदम्-

[विजयनरेन्द्रकथा]

विजयवर्द्धनपुरे विजयो राजा, चन्द्रलेखा राज्ञी जिनमतभाविता शीलवती। तत्सङ्गत्या राजापि जिनधर्मभावितो जातः। अन्यदोज्जयिनीशेन चन्द्रलेखागुणश्रवण-जातानुरागिणो दूतः प्रहितस्तद्याचनाय। विजयेनापमानितः। कुपित उज्जयिनीशः सर्वबलेन समागतः। विजयोऽपि सम्मुखं गतः। द्वयोर्युद्धं जातम्। प्रहारैर्जर्जरो विजयो निर्गत्य समरभूमेः पञ्चमुष्टिकृतलोचो दीक्षां लात्वा निरुद्धाश्रवद्वारः कायोत्सर्गेन स्थितः। गलच्छोणितगन्धनिर्गतकीटिकाभिश्चालनीवत्कृतः। सप्तदिवसेऽन्तकृत्केवली जातः। चन्द्रलेखापि तत्स्वरूपं श्रुत्वा निजशीलरक्षार्थं प्रच्छन्नं निर्गत्य साध्वीपार्श्वे प्रव्रज्य स्वर्गता। इति विजयनरेन्द्रकथा। चिलातीपुत्रकथा प्रसिद्धा॥४५०॥ इति संवरभावना नवमी॥

[दशमी निर्जराभावना]

नवमीभावनानन्तरं दशमीभावनामाह–अनन्तरभावनायामस्यां बध्यमानकर्मणो रागादिनिग्रहेण संवर उक्तश्चिरबद्धं तु सत्तायां विद्यते तदपि निर्जरणीयमेव, अन्यथा

मोक्षप्राप्त्यभावात्। अतोऽनन्तरं निर्जराभावनोच्यते। निर्जरा च चिरबद्धस्य कर्मणो मुक्तावलीप्रमुखतपोविशेषैर्भवतीति तान्याह-

[मू] कणगावलि-रयणावलि-मुत्तावलि-सीहकीलियप्पमुहो।
होइ तवो निज्जरणं, चिरसंचियपावकम्माणं॥४५१॥

[कनकावलि-रत्नावलि-मुक्तावलि-सिंहक्रीडितप्रमुखानि।
भवति तपः निर्जरणं चिरसञ्चितपापकर्मणाम्॥४५१॥]

[अव] स्पष्टा॥४५१॥

[मू] जह जह दढप्पइन्नो, वेरग्गगओ तवं कुणइ जीवो।
तह तह असुहं कम्मं, झिज्जइ सीयं व सूरहयं॥४५२॥

[यथा यथा दृढप्रतिज्ञो वैराग्यगतस्तपः करोति जीवः।
तथा तथाशुभं कर्म क्षीयते शीतमिव सूरहतम्॥४५२॥]

[मू] नाणपवणेण सहिओ, सीलुज्जलिओ तवोमओ अग्गी।
दवहुयवहो व्व संसारविडविमूलाइं निद्दहइ॥४५३॥

[ज्ञानपवनेन सहितः शीलोज्ज्वलितः तपोमयोऽग्निः।
दवहुतवह इव संसारविटपिमूलानि निर्दहति॥४५३॥]

[मू] दासोऽहं भिच्चोऽहं, पणओऽहं ताण साहुसुहडाणं।
तवतिक्खखग्गदंडेण सूडियं जेहि मोहबलं॥४५४॥

[दासोऽहं भृत्योऽहं प्रणतोऽहं तेषां साधुसुभटानाम्।
तपस्तीक्ष्णखड्गदण्डेन सूदितं यैर्मोहबलम्॥४५४॥]

[मू] मइलम्मि जीवभवणे, विइन्ननिब्भिच्चसंजमकवाडे।
दाउं नाणपईवं, तवेण अवणेसु कम्ममलं॥४५५॥

[मलिने जीवभवने वितीर्णनिबिडसंयमकपाटे।
दत्त्वा ज्ञानप्रदीपं तपसा अपनय कर्ममलम्॥४५५॥]

[अव] जीव एव भवनम् = गृहं तस्मिन् कर्मकचवरमलिने आगन्तुकमलनिषेधार्थं वितीर्णघननिच्छिद्रसंयमकपाटे ज्ञानप्रदीपं दत्त्वा पिटकादिस्थानीये तपसा कर्मणोऽपनयनेन निर्वृत्तिमवाप्नोति इत्यर्थः। उक्तं च-

नाणं पयासगं सोहगो तवो संजमो य गुत्तिकरो।
तिण्हं वि समाओगे मोक्खो जिणसासणे भणिओ॥[१]
(विशेषावश्यकभाष्य-११६९) इत्यादि॥४५५॥

पुनरपि तपःशोधितकर्ममलानां मुनीनां नामग्राहं प्रणतिमाह-

[मू] तवहुयवहम्मि खिविऊण जेहि कणगं व सोहिओ अप्पा।
ते अइमुत्तयकुरुदत्तपमुहमुणिणो नमंसामि॥४५६॥

[तपोहुतवहे क्षिप्त्वा यैः कनकमिव शोधित आत्मा।
तान् अतिमुक्तककुरुदत्तप्रमुखमुनीन् नमस्यामि॥४५६॥]

[अव] तपसा कर्म निर्जरताप्युत्तमगुणेषु बहुमानः कार्यः। अन्यथा तपसोऽपि तथाविधफलाभावाद्। भावार्थः कथातोऽवसेयः। सा चेयं यथा–पासाल(पोलास)पुरे विजयो राजा, श्री राज्ञी, अतिमुक्तक पुत्रः। अष्टवार्षिको जातः। पुररथ्यायां कनककन्दुकेन क्रीडति। इतश्च श्रीवीरः समवसृतः। गौतमः षष्ठपारणके गोचरचर्यायां भ्राम्यति। तं दृष्ट्वातिमुक्तको हृष्टः। भणति–"के यूयम्? किमर्थमटत?" गौतमः स्माह–"वयं श्रमणा निर्ग्रन्था भिक्षार्थेऽ(म)टामः।" स वक्ति–"तर्हि मम गृहमागच्छत, भिक्षां ददामि" कराङ्गुल्या गृहीत्वा गौतमं गृहं नयति। प्रतिलाभितोऽसौ विशुद्धभक्त्यान्नपानीयैः। पृच्छति च "यूयं क्व यास्यथ?" गौतमः स्माह–"अस्माकं धर्माचार्योऽस्ति श्री वीरस्तत्पार्श्वे" सोऽपि सहागतो गौतमेन। श्रीवीरदेशनां श्रुत्वा प्रबुद्धः।

जं चेव य जाणामि तं चेव न वेति॥[२] (अन्तकृद्दशा-अध्ययन१५ सूत्र९२) प्रकारैर्मातापितरौ प्रबोध्य प्रवव्राज। अन्यदा वर्षासमये जलप्रवाहे क्रीडया पतद्ग्रहं तारयति। स्थविरैर्वारितः। श्रीवीरान्ते ते पृच्छन्ति–"अतिमुक्तको बालर्षिराराधको विराधको वेति?" श्रीवीरः स्माह-"अत्रैव भवे गुणरत्नतपसा केवलमासाद्य सेत्स्यति।" ततो हृष्टाः स्थविरास्तं पालयन्ति। प्रौढो जातः। गुणरत्नतपः कृत्वा १२(द्वादश) भिक्षुप्रतिमाः कुरुते। मोक्षं गतः। **इत्यतिमुक्तककथा।**

[कुरुदत्तकथा]

नागपुरे कुरुदत्तश्रेष्ठिपुत्रो यौवनं प्राप्तः। निर्विण्णः कामभोगेभ्यः प्रभूतधनधान्यादि त्यक्त्वा प्राव्राजीत्। गुणरत्नसंवत्सरकनकावल्यादि तपांसि तप्यति स्म। अन्यदा

---

१. ज्ञानं प्रकाशकं सुभगं तपः संयमश्च गुप्तिकरः। त्रयाणामपि समायोगे मोक्षो जिनशासने भणितः ॥
२. यच्चैव जानामि तदेव न ।

कायोत्सर्गस्थः पथिकैर्मार्गं पृष्टो न प्राह। कुपितैस्तैः शिरसि मृत्पाली बद्ध्वा चिताग्निः क्षिप्तः। अन्तकृत्केवली जातः। इति कुरुदत्तकथा॥४५६॥ दशमी भावना॥

[एकादशी गुणभावना]

एकादशीभावनामाह-

[मू] धन्ना कलत्तनियलाइ भंजिउं पवरसत्तसंजुत्ता।
वारीओ व्व गयवरा, घरवासाओ विणिक्खंता॥४५७॥

[धन्याः कलत्रनिगडान् भङ्क्त्वा प्रवरसत्त्वसंयुक्ताः।
वार्या इव गजवरा गृहवासाद् विनिष्क्रान्ताः॥४५७॥]

[मू] धन्ना घरचारयबंधणाओ मुक्का चरंति निस्संगा।
जिणदेसियं चरित्तं, सहावसुद्धेण भावेणं॥४५८॥

[धन्या गृहचारकबन्धनान्मुक्ताश्चरन्ति निस्सङ्गाः।
जिनदेशितं चारित्रं स्वभावशुद्धेन भावेन॥४५८॥]

[मू] धन्ना जिणवयणाइं, सुणंति धन्ना कुणंति निसुयाइं।
धन्ना पारद्धं ववसिऊण मुणिणो गया सिद्धिं॥४५९॥

[धन्या जिनवचनानि शृण्वन्ति धन्याः कुर्वन्ति निश्रुतानि।
धन्याः प्रारब्धं व्यवसाय मुनयो गताः सिद्धिम्॥४५९॥]

[मू] दुक्करमेएहि कयं, जेहि समत्थेहि जोव्वणत्थेहिं।
भग्गं इंदियसेन्नं, धिइपायारं विलग्गेहिं॥४६०॥

[दुष्करमेभिः कृतं यैः समर्थैर्यौवनस्थैः।
भग्नमिन्द्रियसैन्यं धृतिप्राकारं विलग्नैः॥४६०॥]

[मू] जम्मं पि ताण थुणिमो, हिमं व विप्फुरियझाणजलणम्मि।
तारुण्णभरे मयणो, जाण सरीरम्मि वि विलीणो॥४६१॥

[जन्मापि तेषां स्तुमो हिममिव विस्फुरितध्यानज्वलने।
तारुण्यभरे मदनो येषां शरीरेऽपि विलिनः॥४६१॥]

[मू] जे पत्ता लीलाए, कसायमयरालयस्स परतीरं।
ताण सिवरयणदीवंगमाण भद्दं मुणिंदाणं॥४६२॥

[ये प्राप्ता लीलया कषायमकरालयस्य परतीरम्।
तेषां शिवरत्नद्वीपं गतानां भद्रं मुनीन्द्राणाम्॥४६२॥]

[अव] जे. इति पर्यन्ता गाथा सुगमाः। नवरं वारी गजबन्धनार्थं गर्ता, गृहमेव [चारकबन्धनं गुप्तिनियन्त्रणम्] ॥४५७-४६२॥

अथोत्तमगुणवतां महर्षिवराणां नमस्कारणेन बहुमानमाविर्भावयति-

[मू] पणमामि ताण पयपंकयाइं धणखंदपमुहसाहूणं।
मोहसुहडाहिमाणो, लीलाए नियत्तिओ जेहिं॥४६३॥

[प्रणमामि तेषां पदपङ्कजानि धनुस्कन्दप्रमुखसाधूनाम्।
मोहसुभटाभिमानो लीलया निवर्तितो यैः॥४६३॥]

[अव] स्पष्टा। कथानकमिदम्-

[धनुर्महर्षिकथा]

काकन्द्यां धनसार्थपतिर्भद्रा भार्या, धनुर्नामा पुत्रः। पिता मृतः।पुत्रो यौवनं प्राप्तः। मात्रा ३२(द्वात्रिंशत्) कन्याः परिणायितः, ३२(द्वात्रिंशत्) आवासाः कारिताः। भोगपुरन्दरः। अन्यदा श्रीवीरपार्श्वे धर्मं श्रुत्वा प्रवव्राज। यावज्जीवं षष्ठतपः कार्यमुज्झितभिक्षया पारणं च कार्यमित्यभिगृह्णाति। एकादशाङ्गधरो जातः। तपसास्थिचर्मावशेषतनुर्जातः। श्रेणिकपृष्टेन भगवता श्रीवीरेण दुष्करकारक इति प्रशंसितः। नवमासीं तपस्यामाराध्य सर्वार्थसिद्धौ देवो जातः। ३२(द्वात्रिंशत्) सागरायुर्विदेहे मोक्षं गमीति। धनुर्महर्षिकथा।

[स्कन्देत्यपरनामस्वामिकार्तिकेयकथा]

कार्तिकपुरे अग्निर्भूपः, कृत्तिका सुता, रूपवती राज्ञी, रूपमोहितेन पुत्र्यपि परिणीता। पुत्रो जातः। स्वामिकार्तिकेय इति नामा। तस्य वीरश्रीर्भगिनी। सा रोहितपुरे क्रौञ्च नृपस्य दत्ता। अन्यदा कस्मिंश्चित् पर्वणि सर्वेषां कुमाराणां मातुलगृहात् प्राभृतान्यागच्छन्ति। कार्तिकेयो जननीमाह–"मम किं मातुलगृहं नास्ति? इति।" सा रोदिति, प्राह च–"वत्स! तव मम पितैक एव।" सम्यग्वृतान्तमाह। स ततो निर्विण्णकामभोगः कुमारः प्रवव्राज। गीतार्थो जातः। एकाकिविहारप्रतिमां प्रतिपन्नः कक्किन्धपर्वते स कायोत्सर्गं प्रपेदे। तद्दिने मेघवृष्ट्या सर्वमपि देहमलं प्रक्षाल्य जलं पार्श्वस्थपाषाणह्रदे गतम्। सर्वाधिव्याधिहरं सर्वौषधिरूपं जातम्। ततस्तत्स्नानतः सर्वो जनः सर्वरोगैः प्रमुच्यते। दक्षिणदिशि तदद्यापि प्रवर्तते तीर्थम्। इतश्च कार्तिकमुनिः विहरन् रोहितकपुरे भिक्षार्थं भगिन्या गृहे प्राप। कृशाङ्गं दृष्ट्वा सा रोदिति भगिनी। 'नूनमस्या अयं हृदयदयित' इति भूपो बाणेन तं विध्यति। स भूमौ पपात।

पूर्वसिद्धमयूरविद्यया स स्कन्दगिरौ नीतः। तत्र गृहीतानशनो देवलोके देवो जातः। तस्य प्रदेशस्य स्वामिगृहमिति नाम जातम्। स्कन्दशैले कालगतत्वेन तस्य ऋषिस्कन्द इति द्वितीयं नाम जातम्। इतश्च क्रौञ्चभूपो मया वीरश्रीर्बन्धुर्हत इति सम्यग् ज्ञात्वा स्वरूपमासादयति स्म संवेगम्। सह वीरश्रीराज्ञ्या राजा प्रव्रज्य स्वर्जगाम। इति स्कन्देत्यपरनामस्वामिकार्तिकेयकथा॥४६३॥ इत्येकादशीभावनावचूरिः॥

[द्वादशी बोधिदुर्लभभावना]

द्वादशीभावनामाह-

[मू] इय एवमाइउत्तमगुणरयणाहरणभूसियंगाणं।
धीरपुरिसाण नमिमो, तियलोयनमंसणिज्जाणं॥४६४॥

[इत्येवमाद्युत्तमगुणरत्नाभरणभूषिताङ्गान्।
धीरपुरुषान् नमामः त्रिलोकनमनीयान्॥४६४॥]

[मू] भवरन्नम्मि अणंते, कुमग्गसयभोलिएण कह कह वि।
जिणसासणसुगइपहो, पुन्नेहिं मए समणुपत्तो॥४६५॥

[भवारण्येऽनन्ते कुमार्गशतविप्रतारितेन कथं कथमपि।
जिनशासनसुगतिपथः पुण्यैर्मया समनुप्राप्तः॥४६५॥]

[अव] स्पष्टा। नवरं कष्टेनासौ मया जिनशासनसुगतिपथः प्राप्तः। शेषं सुगमार्थम्॥४६५॥]

किमित्यसौ कष्टेन प्राप्तः? इत्याह-

[मू] आसन्ने परमपए, पावेयव्वम्मि सयलकल्लाणे।
जीवो जिणिंदभणियं, पडिवज्जइ भावओ धम्मं॥४६६॥

[आसन्ने परमपदे प्राप्तव्ये सकलकल्याणे।
जीवो जिनेन्द्रभणितं प्रतिपद्यते भावतो धर्मम्॥४६६॥]

[अव] सुगमार्था॥४६६॥

केन पुनर्वचनेन मनुजदुर्लभत्वं प्रोक्तमित्याह-

[मू] मणुयत्तखित्तमाईहि विविहहेऊहिं लब्भए सो य।
समए य अइदुलंभं, भणियं मणुयत्तणाईयं॥४६७॥

[मनुजत्वक्षेत्रादिभिर्विविधहेतुभिः लभ्यते स च।
समये चातिदुर्लभं भणितं मनुजत्वादिकम्॥४६७॥]

[मू] माणुस्सखेत्त जाई, कुलरूवारोग्ग आउयं बुद्धी।
सवणोवग्गह सद्धा, संजमो य लोयम्मि दुलहाइं॥४६८॥

[मानुष्यक्षेत्रं जातिः कुलरूपारोग्याण्यायुर्बुद्धिः।
श्रवणावग्रहौ श्रद्धा संयमश्च लोके दुर्लभानि॥४६८॥]

[मू] अवरदिसाए जलहिस्स कोइ देवो खिवेज्ज किर समिलं।
पुव्वदिसाए उ जुगं, तो दुलहो ताण संजोगो॥४६९॥

[अपरदिशि जलधेः कश्चिद् देवः क्षिपेत् किल समिलाम्।
पूर्वदिशि तु युगं ततो दुर्लभस्तयोः संयोगः॥४६९॥]

[मू] अवि जलहिमहाकल्लोलपेल्लिया सा लभेज्ज जुगछिड्डं।
मणुयत्तणं तु दुलहं, पुणो वि जीवाणऽउन्नाणं॥४७०॥

[अपि जलधिमहाकल्लोलप्रेरिता सा लभेत युगच्छिद्रम्।
मनुजत्वं तु दुर्लभं पुनरपि जीवानामपुण्यानाम्॥४७०॥]

[अव] अस्याश्च गाथाया बलिनरेन्द्राख्यानके समाख्यात एवार्थः। मनुजत्वादिकं चुल्लक इत्यादिदशदृष्टान्तैर्दुर्लभमुक्तमतस्तन्मध्यादुपलक्षणार्थं युगसमिलादृष्टान्तमेकमाह [-**अवर इत्यादि**]॥४६८॥४६९॥४७०॥

यथा मनुजत्वं दुर्लभं दशदृष्टान्तैः प्रोक्तमेवं क्षेत्रजात्यादीन्यपि। ततस्तानि सर्वाणि लब्ध्वा तथापि यो जिनधर्मे प्रमाद्यति स जरामरणादिभिराघ्रातः शोचयतीति दर्शयति-

[मू] खित्ताईणि वि एवं, दुलहाइं वण्णियाइं समयम्मि।
ताइं पि हु(पडि) लद्धूणं, पमाइयं जेण(हिं) जिणधम्मे[१] ॥४७१॥

[क्षेत्रादीन्यप्येवं दुर्लभानि वर्णितानि समये।
तान्यपि खलु लब्ध्वा प्रमादितं येन जिनधर्मे॥४७१॥]

[मू] सो झूरइ मच्चुजरावाहिमहापावसेन्नपडिरुद्धो।
तायारमपेच्छंतो, नियकम्मविडंबिओ जीवो॥४७२॥

[स खिद्यते मृत्युजराव्याधिमहापापसैन्यप्रतिरुद्धः।
त्रातारमप्रेक्षमाणो निजकर्मविडम्बितो जीवः॥४७२॥]

---

१. **ताइं पडि लद्धूणं पमाइयं जेहि जिणधम्मे** इति पा. प्रतौ।

[अव] गतार्थो॥४७२॥

लब्धायामपि मनुजत्वादिसामग्र्यां जिनधर्मश्रवणदुर्घटतामाह-

[मू] आलस्समोहऽवन्ना, थंभा कोहा पमायकिविणत्ता।
भयसोगा अन्नाणा, वक्खेव कुऊहला रमणा॥४७३॥

[आलस्यमोहावज्ञाभ्यः स्तम्भात् क्रोधात् प्रमादकृपणत्वाभ्याम्।
भयशोकाभ्यामज्ञानाद् व्याक्षेपकुतूहलाभ्यां रमणात्॥४७३॥]

[मू] एएहि कारणेहिं, लद्धूण सुदुल्लहं पि मणुयत्तं।
न लहइ सुइं हियकरिं, संसारुत्तारणिं जीवो॥४७४॥

[एतैः कारणैः लब्ध्वा सुदुर्लभमपि मनुजत्वम्।
न लभते श्रुतिं हितकरीं संसारोत्तारणीं जीवः॥४७४॥]

[अव] आलस्यमनुत्साहः१, मोहो गृहप्रतिबन्धरूपः२। किमेते प्रव्रजिता जानन्तीति परिणामोऽवज्ञा३। स्तम्भो गर्वः४। क्रोधः साधुदर्शनमात्रेणैवाक्षमा५। प्रमादो मद्यविषयादिरूपः६। कार्पण्यं साधुसमीपगमने दातव्यं किञ्चित् कस्यापि भविष्यतीति वैक्लव्यम्७। भयं साधुजनोपवर्ण्यमाननरकादिदुःखसमुद्भवम्८। शोको इष्टवियोगादिजनितः९। अज्ञानं कुतीर्थिकवासनाजनितोऽनवबोधः१०। व्याक्षेपो गृहहट्टकृष्यादिजनितं व्याकुलत्वम्११। कुतूहलं नटनृत्यावलोकनादिविषयम्१२। रमणं द्यूतक्रीडादिकं१३। आलस्यादीनां पञ्चम्येकवचनादेतेभ्यः कारणेभ्यो जन्तुर्जिनधर्मश्रुतिं न लभते। शेषं स्पष्टम्॥४७४॥

[मू] दुलहो च्चिय जिणधम्मो, पत्ते मणुयत्तणाइभावे वि।
कुपहबहुयत्तणेणं, विसयसुहाणं च लोहेणं॥४७५॥

[दुर्लभश्चैव जिनधर्मः प्राप्ते मनुजत्वादिभावेऽपि।
कुपथबहुकत्वेन विषयसुखानां च लोभेन॥४७५॥]

दुर्लभे जिनधर्मे प्रमाद्यन्तमात्मानं कश्चित् शिक्षयति-

[मू] जस्स बहिं बहुयजणो, लद्धो न तए वि जो बहुं कालं।
लद्धम्मि जीव ! तम्मि वि, जिणधम्मे किं पमाएसि ?॥४७६॥

[यस्य बहिर्बहुजनो लब्धः न त्वयापि यो बहुं कालम्।
लब्धे जीव ! तस्मिन्नपि जिनधर्मे किं प्रमाद्यसि ?॥४७६॥]

[अव] यस्य जिनधर्मस्य बहिः पृथग्भूमौ बहुजनो मिथ्यादृष्टिरूपोऽनन्तो जीवराशिर्वर्तते। यश्च जिनधर्मस्त्वया हे! जीव! बहुमनन्तं कालं भवे भ्रमतः न लब्धः, तस्मिन्नप्येवंविधे धर्मे कथं कथमपि लब्धे किं प्रमाद्यसि? नष्टस्यास्य पुनरतिदुर्लभत्वान्न युक्तस्तत्र तव प्रमाद इत्यर्थः॥४७६॥

निवृत्तप्रमादो भवोद्भ्रान्तः पुनरप्यात्मानं शिक्षयितुमाह-

[मू] उवलद्धो जिणधम्मो, न य अणुचिन्नो पमायदोसेणं।
हा जीव ! अप्पवेरिअ !, सुबहुं पुरओ विसूरिहिसि॥४७७॥

[उपलब्धो जिनधर्मो न चानुचीर्णः प्रमाददोषेण।
हा जीव ! आत्मवैरिक ! सुबहु पुरतो विषत्स्यसि॥४७७॥]

[अव] स्पष्टा॥४७७॥

[मू] दुलओ पुणरवि धम्मो, तुमं पमायाउरो सुहेसी य।
दुसहं च नरयदुक्खं, किं होहिसि ? तं न याणामो॥४७८॥

[दुर्लभः पुनरपि धर्मः त्वं प्रमादातुरः सुखैषी च।
दुःसहं च नरकदुःखं किं भविष्यसि ? तन्न जानीमः॥४७८॥]

[मू] लद्धम्मि वि जिणधम्मे, जेहिं पमाओ कओ सुहेसीहिं।
पत्तो वि हु पडिपुन्नो, रयणनिही हारिओ तेहिं॥४७९॥

[लब्धेऽपि जिनधर्मे यैः प्रमादः कृतः सुखैषिभिः।
प्राप्तोऽपि खलु प्रतिपूर्णा रत्ननिधिः हारितस्तैः॥४७९॥]

[मू] जस्स य कुसुमोग्गमुच्चिय , सुरनररिद्धी फलं तु सिद्धिसुहं।
तं चिय जिणधम्मतरुं, सिंचसु सुहभावसलिलेहिं॥४८०॥

[यस्य च कुसुमोद्गम एव सुरनरर्द्धिः फलं तु सिद्धिसुखम्।
तमेव जिनधर्मतरुं सिञ्च शुभभावसलिलैः॥४८०॥]

[मू] जिणधम्मं कुव्वंतो, जं मन्नसि दुक्करं अणुट्ठाणं।
तं ओसहं व परिणामसुंदरं मुणसु सुहहेउं॥४८१॥

[जिनधर्मं कुर्वन् यद् मन्यसे दुष्करमनुष्ठानम्।
तदौषधमिव परिणामसुन्दरं जानीहि शुभहेतुम्॥४८१॥]

[मू] इच्छंतो रिद्धीओ, धम्मफलाओ वि कुणसि पावाइं।
कवलेसि कालकूडं, मूढो चिरजीवियत्थी वि॥४८२॥

[इच्छन् ऋद्धीः धर्मफलादपि करोषि पापानि।
कवलयसि कालकूटं मूढश्चिरजीवितार्थ्यपि॥४८२॥]

[अव] कश्चिच्चिरकालजीवितार्थ्यपि मूढो = विपर्यस्तः सद्यो मरणहेतुकालकूटं कवलयत्येवं भवानपि हे! जीव! धर्मस्य फलभूता ऋद्धीर्वाञ्छसि तदा दारिद्र्यादिहेतु-भूतानि पापानि किं करोषि?॥४८२॥

[मू] भवभमणपरिस्संतो, जिणधम्ममहातरुम्मि वीसमिओ।
मा जीव ! तम्मि वि तुमं, पमायवणहुयवहं देसु॥४८३॥

[भवभ्रमणपरिश्रान्तो जिनधर्ममहातरौ विश्रम्य।
मा जीव ! तस्मिन्नपि त्वं प्रमादवनहुतवहं देहि॥४८३॥]

[मू] अणवरयभवमहापहपयट्टपहिएहिं धम्मसंबलयं।
जेहि न गहियं ते पाविहिंति दीणत्तणं पुरओ॥४८४॥

[अनवरतभवमहापथप्रवृत्तपथिकैः धर्मशम्बलम्।
यैः न गृहीतं ते प्राप्स्यन्ति दीनत्वं पुरतः॥४८४॥]

[मू] जिणधम्मरिद्धिरहिओ, रंक्को च्चिय नूण चक्कवट्टी वि।
तस्स वि जेण न अन्नो, सरणं नरए पडंतस्स॥४८५॥

[जिनधर्मर्द्धिरहितः रङ्क एव नूनं चक्रवर्त्यपि।
तस्यापि येन नान्यः शरणं नरके पततः॥४८५॥]

[मू] धम्मफलमणुहवंतो, वि बुद्धिजसरूवरिद्धिमाईयं।
तं पि हु न कुणइ धम्मं, अहह कहं सो न मूढप्पा ?॥४८६॥

[धर्मफलमनुभवन्नपि बुद्धियशोरूपर्द्ध्यादिकम्।
तदपि खलु न करोति धर्ममहह कथं स न मूढात्मा ?॥४८६॥]

[मू] जेण चिय जिणधम्मेण, गमिओ रंको वि रज्जसंपत्तिं।
तम्मि वि जस्स अवन्ना, सो भन्नइ किं कुलीणो त्ति ?॥४८७॥

[येनैव धर्मेण गमिता रङ्कोऽपि राज्यसम्पदम्।
तस्मिन्नपि यस्यावज्ञा स भण्यते किं कुलीन इति ?॥४८७॥]

[मू] जिणधम्मसत्थवाहो, न सहाओ जाण भवमहारन्ने।
किह विसयभोलियाणं, निव्वुइपुरसंगमो ताणं ?॥४८८॥

[जिनधर्मसार्थवाहो न सहायो येषां भवमहारण्ये।
कथं विषयवञ्चितानां निर्वृत्तिपुरसङ्गमस्तेषाम् ?॥४८८॥]

[मू] नियमणोरहपायवफलाइं जइ जीव ! वंछसि सुहाइं।
तो तं चिय परिसिंचसु, निच्चं सद्धम्मसलिलेहिं॥४८९॥

[निजकमनोरथपादपफलानि यदि जीव ! वाञ्छसि सुखानि।
ततस्तमेव परिषिञ्च नित्यं सद्धर्मसलिलैः॥४८९॥]

[अव] [भव.] इत्यादिगाथाः सुगमाः॥

[मू] जइ धम्मामयपाणं, मुहाए पावेसि साहुमूलम्मि।
ता दविणेण किणेउं, विसयविसं जीव ! किं पियसि ?॥४९०॥

[यदि धर्मामृतपानं मुधा प्राप्नोषि साधुमूले।
ततो द्रविणेन क्रीत्वा विषयविषं जीव ! किं पिबसि ?॥४९०॥]

[अव] अयं परमार्थः। विषयाः शब्द-रूप-रस-स्पर्श-गन्धरूपास्तव नरकादितीव्रवेदनाहेतुत्वाद्विषमिव विषम्। तच्च विषयविषं स्वल्पमप्यर्थे नैव सम्प्राप्यते धर्मस्त्वमृतपानरूपः सुरमनुजमोक्षसुखहेतुत्वात्। स च साधुमूले मुधैव लभ्यते, परं मोहविपर्यस्तो जीवस्तं परिहृत्य द्रविणेनापि विषयविषमेव पिबतीति यावत्॥४९०॥

[मू] अन्नन्नसुहसमागमचिंतासयदुत्थिओ सयं कीस ?।
कुण धम्मं जेण सुहं, सोच्चियं चिंतेइ तुह सव्वं॥४९१॥

[अन्यान्यसुखसमागमचिन्ताशतदुःस्थितः स्वयं कुतः ?।
कुरु धर्मं येन सुखं स एव चिन्तयतु तव सर्वम्॥४९१॥]

[मू] संपज्जंति सुहाइं, जइ धम्मविवज्जियाण वि नराणं।
ता होज्ज तिहुयणम्मि वि, कस्स दुहं ? कस्स व न सोक्खं॥४९२॥

[सम्पद्यन्ते सुखानि यदि धर्मविवर्जितानामपि नराणाम्।
ततो भवेत् त्रिभुवनेऽपि कस्य दुःखं ? कस्य वा न सौख्यम् ?॥४९२॥]

[मू] जह कागिणीइ हेउं, कोडिं रयणाण हारए कोई।
तह तुच्छविसयगिद्धा, जीवा हारंति सिद्धिसुहं॥४९३॥

[यथा काकिन्या हेतवे कोटिं रत्नानां हारयति कश्चित्।
तथा तुच्छविषयगृद्धा जीवा हारयन्ति सिद्धिसुखम्॥४९३॥]

[मू] धम्मो न कओ साउं, न जेमियं नेय परिहियं सण्हं।
आसाए विनडिएहि, हा ! दुलओ हारिओ जम्मो॥४९४॥

[धर्मो न कृतः स्वादु न जेमितं नैव परिहितं श्लक्ष्णम्।
आशया विनटितैः हा ! दुर्लभं हारितं जन्म॥४९४॥]

[अव] तथाविधधर्मप्राप्त्यभावात् स्वादु मनोज्ञं न भुक्तम्। श्लक्ष्णसूक्ष्मं वस्त्रं च न परिहितम्। शेषं स्पष्टमिति॥४९४॥

[मू] नाणस्स केवलीणं, धम्मायरियस्स संघसाहूणं।
गिण्हंतेण अवण्णं, मूढेणं नासिओ अप्पा॥४९५॥

[ज्ञानस्य केवलिनां धर्माचार्यस्य सङ्घसाधूनाम्।
गृह्णता अवज्ञां मूढेन नाशित आत्मा॥४९५॥]

[मू] सोयंति ते वराया, पच्छा समुवट्ठियम्मि मरणम्मि।
पावपमायवसेहिं, न संचिओ जेहिं जिणधम्मो॥४९६॥

[शोचन्ति ते वराकाः पश्चात् समुपस्थिते मरणे।
पापप्रमादवशैः न सञ्चितो यैर्जिनधर्मः॥४९६॥]

[मू] लद्धुं पि दुलहधम्मं, सुहेसिणा इह पमाइयं जेण।
सो भिन्नपोयसंजत्तिओ व्व भमिही भवसमुद्दे॥४९७॥

[लब्ध्वापि दुर्लभधर्मं सुखैषिणा इह प्रमादितं येन।
स भिन्नपोतसांयात्रिक इव भ्रमिष्यति भवसमुद्रम्॥४९७॥]

[मू] गहियं जेहि चरित्तं, जलं व तिसिएहि गिम्हपहिएहिं।
कयसोग्गइपत्थयणा, ते मरणंते न सोयंति॥४९८॥

[गृहीतं यैश्चारित्रं जलमिव तृषितैः ग्रीष्मपथिकैः।
कृतसद्गतिपथ्यदनास्ते मरणान्ते न शोचन्ति॥४९८॥]

[मू] को जाणइ पुणरुत्तं, होही कइया वि धम्मसामग्गी ?।
रंक व्व धणं कुणह महव्वयाण इण्हिं पि पत्ताणं॥४९९॥

[को जानाति पुनः पुनो भविष्यति कदाचिदपि धर्मसामग्री ?।
रङ्क इव धनं कुरु महाव्रतानामिदानीमपि प्राप्तानाम्॥४९९॥]

[अव] शेषा गाथाः सुगमार्था इति।

अथोदाहरणगर्भमुपसंहरन्नाह-

[मू] अलमित्थ वित्थरेणं, कुरु धम्मं जेण वंछियसुहाइं।
पावेसि पुराहिवनंदणो व्व धूया व नरवइणो॥५००॥

[अलमत्र विस्तरेण कुरु धर्मं येन वाञ्छितसुखानि।
प्राप्नोषि पुराधिपनन्दन इव दुहितेव नरपतेः॥५००॥]

[अव] स्पष्टार्था। कथानकमिदमवसेयं यथा–पुराधिपः = श्रेष्ठी, तस्य नन्दनः=पुत्रः।

[पुराधिपनन्दनकथा]

सिरिधरणितिलयनयरे सुंदरसिट्ठि अहन्नया पुत्तो।
उअरम्मि ठिए जणओ जाए अ उवरया जणणी॥१॥
जाओ कुलस्स वि खओ नट्ठो विहवो अ परिअणो सव्वो।
ता करुणाए लोएण पालिओ दुग्गओ नाम॥२॥
नयरं मुत्तूण गओ सालिग्गामे करेइ ववसायं।
जं जं सो सो जायइ विहलो कम्माणुभावेण॥३॥
इत्तो निसुणइ धम्मं कयाइ सुहकम्मपरिणइवसेणं।
साहुसगासंमि तओ काउं एवं समाढत्तो॥४॥
भागेण चुंटिऊणं मालइकुसुमाइं नेइ जिणभवणे।
पूअइ वंदइ बिंबे कुणई आरत्तिआईअं॥५॥
कइआवि हु मुग्गाणं पुट्टलमुप्पाडिऊण सीसेणं।
वयइ अयलपुरम्मि वीसमइ खणं तउज्जाणे॥६॥
दट्ठूण सिद्धपुत्तं पुत्थयहत्थं परेण विणएण।
पुच्छइ किमिमीइ पुत्थिआइ लिहिअं ति सो आह॥७॥
सउणाण फलं ते केरिसि त्ति सो दुग्गएण पुणरुत्तं।
पुट्ठो छीआइफलं साहइ पढमं पि तं च इमं॥८॥

पुव्वदिसा धुवफला होइ इत्यादि[१] दुग्गफलं(?)। निग्गमे सोहणा वामा[२] इत्यादि।

तओ सो पुण उज्झिअकरो नच्चेइ दुग्गओ। पुच्छइ सिद्धपुत्तो–"भद्द! किं नच्चेसि?" सो भणइ–"जं पसत्था सउणा तुमए कहिया ते सव्वे ममाज्ज संजाया तेण नच्चामि।" सो भणइ-"जइ तुज्झ एवंविहा पसत्था सउणा जाया तो अज्ज तुज्झ दोण्ह कण्णाण पाणिग्गहणं रज्जं च भविस्सइ त्ति।" पुत्तो सो गओ। इत्थंतरे तत्थ विक्कमराया

समागओ। तं तह नच्चंतं पासिऊण पुच्छइ कारणं। सो वि तहेव भणइ। तो रुट्ठो राया नयरंमि उग्घोसावेइ–जो पंच दिणाणि बाहिरागए मुग्गे गहिस्सइ तस्स दंडो कायव्वो त्ति सोउण तस्स मुग्गे को वि न लेइ। सो वि सव्वं दिणं भमिऊण रत्तिं सुत्तो एगंमि सुण्णावणे मुग्गपुट्टलं मत्थए दाउं।

इत्तो तत्थ सुमति मंति, धूआ सोहग्गसुंदरी, सुदंसणनामे इब्भपुत्ते अणुरत्ताच्छन्नं परिअणमुहेण परिणयणहेऊ तत्थ तस्स संकेओ। दिन्नसंजोगा तत्थ नागओ। तओ सा तत्थागया दुग्गयमंधयारे हत्थे लग्गा पडिबोहिऊण पवरवत्थाइं परिहाविअ हारद्धहारासिंगारं दाउं परिणेइ। परिअणो भणइ–"अज्ज सामिणि पुण्णमणोरहा पुण अग्गहो विहि पमाणम्" सो वि भणइ–"एवमेव" तओ असरिससद्दं सोऊं सा उज्जोअं काउं तं पलोएइ। एसो को वि अन्नो त्ति काऊण गया सा गेहं। सा थलगयमीणु व्व तल्लाविल्लिं कुणमाणा झूरइ। नायं जणणीए सव्वं। तीए साहिअं मंतिस्स।

इत्तो अ रायसुआ अणंगसिरी। सा वि किमवि सामंतसुए अणुरत्ता। सा वि च्छन्नपरिणअहेउं तस्स संकेअं काहइ "जहा अज्ज गेहगवक्खस्स हिट्ठा लंबंतदोरए सुपडिलग्गो होज्जसु।" केण वि कारणेण सो तत्थ नागओ। इओ दुग्गओ उट्ठिऊण चलिओ। दिव्वजोगेण तत्थेव आगओ। दोरं चालेइ। सहीहिं "सुपडिलग्गो होसु" त्ति भणिए सो चिंतेइ 'एअं बीअं नाडयं उवट्ठिअं।' तओ गाढयरं दोरे लग्गो। गओ उवरिं। तहेव कयं पाणिग्गहणं। तहेव भणियं सहीहिं। दुग्गओ तहेव भणइ। संकाए उज्जोए कए मुहं

---

१. ठाणट्ठियस्स पढमं नियकज्जं किंपि काउकामस्स। होइ सुहा असुहा वि छीया दिसिभायभेएण॥१८॥
पुव्वदिसा धणलाभं जलणे हाणी जमालए मरणं।नेरइए उव्वेओपच्छिमए परमसंपत्ति॥१९॥
वायव्वे सुहवत्ता धणलाभो होइ उत्तरे पासे। ईसाणे सिरिविजयं रज्जं पुम बंभठाणम्मि॥॥२०॥
पहपट्ठियस्स समुहा छीया मरणं नरस्स साहेंति। वज्जेह दाहिणं पि हु वामे पट्ठिएँ सिद्धिकरा॥२१॥
होइ पवेसे वामा असुहपरा दाहिणासुहा भणिया। पट्ठिए हाणिकरा लाभकरा सम्मुही छीया॥२२॥(हेम.मल.वृत्ति)

२. निग्गमे सोहणा वामा पवेसे दाहिणा सुहा। सू(मू)लि सूलिकरा सामा नरो पुन्नेहिं पावइ॥२३॥(हेम.मल.वृत्ति)

दिट्ठं। मुक्को दोरेण हिट्ठा। गओ सो तहिं चेव हट्टे। नायं रन्ना। विसन्नो मणसा। इओ मंती वि तत्थागओ निअधूआचरिअं कहेइ। राया भणइ–"ममावि तुल्लमिणं ति।" पभाए वरं गवेसवेइ। आणिओ सो चेव पारिणेत्तवत्थपरिहाणो। भणिओ रन्ना–"तुमं स मुग्गवाणिओ त्ति।" सो वि वित्तंतं कहेइ। तओ मंतिणा विमंसिऊण महामहे परिणाइओ। बारससयगामसामिओ कओ। चेइअकारणाइणा जिणधम्ममाराहिऊण निअपूआफल-दंसणेण रायं मंतिं च पडिबोहिऊण कमा पवज्जिउण सिद्धो।[1] इति लोकधर्मफले पुराधिपनन्दनकथा।

---

१. श्रीधरणीतिलकनगरे सुन्दरश्रेष्ठी अथान्यदा पुत्रः। उदरे स्थिते जनको जाते च उपरता जननी॥१॥
जातः कुलस्यापि क्षयो नष्टो विभवश्च परिजनः सर्वः। ततः करुणया लोकेन पालितो दुर्गतो नाम॥२॥
नगरं मुक्त्वा गतः शालिग्रामं करोति व्यवसायं। यद् यत् स स जायते विफलः कर्मानुभावेन॥३॥
इतः निशृणोति धर्मं कदापि शुभकर्मपरिणतिवशेन। साधुसकाशे ततः कृत्वा एवं समारब्धवान्॥४॥
भागेन चित्वा मालतिकुसुमानि नयति जिनभवने। पूजयति वन्दते बिम्बान् करोति आरात्रिकादिकम्॥५॥
कदाचिदपि खलु मुद्गानां पोट्टलं उत्पाट्य शीर्षेण। व्रजति अचलपुरे विश्राम्यति क्षणं तदुद्याने॥६॥
दृष्ट्वा सिद्धपुत्रं पुस्तकहस्तं परेण विनयेन। पृच्छति किमस्यां पुस्तिकायां लिखितमिति स आह॥७॥
शकुनानां फलं ते कीदृशमिति स दुर्गतेन पुनरुक्तम्। पृष्टः क्षुतादिफलं साधयति प्रथममपि तं च इदम्॥८॥
पूर्वदिशा ध्रुवफला भवति इत्यादि दुर्गफलम्। निर्गमे शोभना वामा इत्यादि।

ततः स पुन ऊर्ध्वकरो नृत्यति दुर्गतः। पृच्छति सिद्धपुत्रः–"भद्र! किं नृत्यसि?" स भणति–"यत् प्रशस्ताः शकुनाः त्वया कथिताः ते सर्वे ममाद्य सञ्जाताः तेन नृत्यामि।" "यदि तव एवंविधाः प्रशस्ताः शकुना जाताः ततोऽद्य तव द्वयोः कन्ययोः पाणिग्रहणं राज्यं च भविष्यति इति।" पुत्रः स गतः। अत्रान्तरे तत्र विक्रमराजा समागतः। तं तथा नृत्यन्तं दृष्ट्वा पृच्छति कारणम्। ततो रुष्टो राजा नगरे उद्घोषयति–यः पञ्च दिनानि बहिरागतान् मुद्गान् ग्रहिष्यति तस्य दण्डः कर्तव्य इति श्रुत्वा तस्य मुद्गान् कोऽपि न लाति। सोऽपि सर्वं दिनं भ्रान्त्वा रात्रिं सुप्त एकस्मिन् शून्यापणे मुद्गपोट्टलं मस्तके दत्त्वा।

इतः तत्र सुमतिमन्त्री, धूता सौभाग्यसुन्दरी, सुदर्शननाम्नि इभ्यपुत्रे अनुरक्ताच्छन्नं परिजनमुखेन परिणयहेतुः तत्र तस्य सङ्केतः। दत्तसंयोगः तत्र नागतः। ततः सा तत्रागता दुर्गतमन्धकारे हस्ते लग्ना प्रतिबोध्य प्रवरवस्त्राणि परिधापितः हारार्धहारशृङ्गारं दत्त्वा परिणयति। परिजनः भणति–"अद्य स्वामिनी पूर्णमनोरथा पुनराग्रहः विधिः प्रमाणम्" सोऽपि भणति–"एवमेव" ततः असदृशशब्दं श्रुत्वा सा उद्योतं कृत्वा तं प्रलोकयति। एष कोऽपि अन्य इति कृत्वा गता सा गृहम्। सा स्थलगतमीन इव व्याकुलत्वं कुर्वाणा स्मरति। ज्ञातं जनन्या सर्वम्। तया साधितं मन्त्रिणः।

इतश्च राजसुता अनङ्गश्रीः। सापि किमपि सामन्तसुते अनुरक्ता। सापि छन्नपरिणयहेतवे तस्य सङ्केतं कथयति–"यथा अद्य गृहगवाक्षस्य अधः लम्बमानदवरिकायां सुप्रतिलग्नो भव।" केनापि कारणेन स तत्र नागतः। इतो दुर्गत उत्थाय चलितः। दैवयोगेन तत्रैवागतः। दवरिकां चालयति। सखिभिः "सुप्रतिलग्नः भव।" इति भणिते स चिन्तयति–'एतद् द्वितीयं नाटकं उपस्थितम्।' ततो गाढतरं दवरिकायां लग्नः। गतः उपरि। तथैव कृतं पाणिग्रहणम्। तथैव भणितं सखिभिः। दुर्गतः तथैव भणति। शङ्कायामुद्योते कृते मुखं दृष्टम्। मुक्तो दवरिकया अधः। गतः स तत्र चैव आपणे। ज्ञातं राज्ञा। विषण्णो मनसा। इतो मन्त्री अपि तत्रागतो निजधूताचरित्रं कथयति। राया भणति–"ममापि तुल्यमिदमिति।" प्रभाते वरं गवेषयति। आनीतः स चैव पारिणेय्यवस्त्रपरिधानः। भणितः राज्ञा–"त्वं स मुद्गवणिक इति।" सोऽपि वृत्तान्तं कथयति। ततो मन्त्रिणा विमर्श्य महामहेन परिणायितः। द्वादशशतग्रामस्वामी कृतः। त्यागकारणादिना जिनधर्ममाराध्य निजपूजाफलदर्शनेन राजानं मन्त्रिणं च प्रतिबोध्य क्रमात् प्रव्रज्य सिद्धः।

[राजदुहिताख्यानकम्]

यमुनातीरे रत्नवतीपुर्यां अमरकेतुर्नृपः, रत्नवती भार्या। तयोः सप्त पुत्र्यः, अष्टमी पुत्री जाता। मात्रा खेदेन काष्टमञ्जूषायां क्षिप्त्वा यमुनायां प्रवाहिता। अश्वपुरे सप्तपुत्रीदुःखतप्तसुलसवणिजा द्रव्यलोभातिरेकाद् मञ्जूषा गृहीता। गृहमानीयोद्घाट्य विलोक्य बालिकां खिन्नः। कृपया पालिता। यमुनेति नाम दत्तम्। सा यौवनं प्राप्ता। दुःखिनी वनादिन्धनान्यानयति। अन्यदा मुनेर्मुखाद्धर्मं श्रुत्वा षष्ठादितपःपरा जिनवन्दनपरा गृहधर्मं पालयति। तत्प्रभावात् सुखिनी जाता। अन्यदा नृपपुत्रेण मकरध्वजेन यक्ष आराधितः। प्रधानगुणालङ्कारिराज्योदयकारिभार्यारत्नं प्रार्थयति। यक्षस्तुष्टः स्माह–"रत्नवतीपुरी अमरकेतुनृपसुता यमुना नाम्नी मञ्जूषाप्रयोगादत्रागता सुलसश्रेष्ठिगृहेऽस्ति। सा तवाभ्युदयकारिणी भाविनी धर्मप्रभावात्।" ततो मकरध्वजेन सा परिणीता। स कालेन राजा जातः। यमुना पट्टराज्ञी जाता। सुलसो नगरश्रेष्ठी जातः। इतश्चान्यदा मकरकेतुर्नृपो वैरिणा गृहीतसमग्रसाम्राज्यः सकुटुम्बस्तत्रागतः। यमुनावचनान्नगरग्रामादिना सत्कृतो मकरध्वजेन। तत्र स्थिताः सर्वेऽपि धर्मप्रभावं दृष्ट्वा धर्मवन्तो जाताः। राज्यं कृत्वा दीक्षां लात्वा तपः कृत्वा केवलज्ञानमासाद्य शिवमापुरनन्तसुखभाजनं जाताः। राजदुहिताख्यानकम्। बोधिभावनावचूरिः॥

एताभिर्भावनाभिः किं सिद्ध्यतीत्याह-

[मू] इय भावणाहि सम्मं, णाणी जिणवयणबद्धमइलक्खो।
जलणो व्व पवणसहिओ, समूलजालं दहइ कम्मं॥५०१॥

[इति भावनाभिः सम्यग् जिनवचनबद्धमतिलक्ष्यः।
ज्वलन इव पवनसहितः समूलजालं दहति कर्म॥५०१॥]

[अव] सुखोन्नेये। ज्ञानी जिनवचनबद्धलक्षो कर्म क्षपयति, न केवलं भावनाभिः कर्म क्षिपति किन्तु साहाय्यमपेक्षते इति ज्ञानामाहात्म्यमुकीर्त्तयन्नाह-

[मू] नाणे आउत्ताणं, नाणीणं नाणजोगजुत्ताणं।
को निज्जरं तुलेज्जा, चरणम्मि परक्कमंताणं ?॥५०२॥

[ज्ञाने आयुक्तानां ज्ञानिनां ज्ञानयोगयुक्तानाम्।
को निर्जरां तोलयेत् चरणे पराक्रामताम्॥५०२॥]

[अव] नाणे.इत्यादि गाथा सुगमा। नवरं येषां सम्यग्ज्ञानं स्युरिति ते

ममत्वस्नेहानुबन्धादिभिर्भावैः कथमपि न बाध्यन्ते॥५०२॥

किं कुर्वन्त इत्याह-

[मू] नाणेणं चिय नज्जइ, करणिज्जं तह य वज्जणिज्जं च।
नाणी जाणइ काउं, कज्जमकज्जं च वज्जेउं ॥५०३॥

[ज्ञानेन च चैव ज्ञायते करणीयं तथा वर्जनीयं च।
ज्ञानी जानाति कर्तुं कार्यमकार्यं च वर्जयितुम्॥५०३॥]

[मू] जसकित्तिकरं नाणं, गुणसयसंपायगं जए नाणं।
आणा वि जिणाणेसा, पढमं नाणं तओ चरणं॥५०४॥

[यशःकीर्त्तिकरं ज्ञानं गुणशतसम्पादकं जगति ज्ञानम्।
आज्ञापि जिनानामेषा प्रथमं ज्ञानं ततश्चरणम्॥५०४॥]

[अव] मनसि = चित्ते ज्ञानबलेनैवं वक्ष्यमाणं विभावयन्त इति।

किं विभावयन्तो? ज्ञानिनो ममत्वादिभिर्न बाध्यन्ते इत्याह-

[मू] ते पुज्जा तियलोए, सव्वत्थ वि जाण निम्मलं नाणं।
पुज्जाण वि पुज्जयरा, नाणी य चरित्तजुत्ता य॥५०५॥

[ते पूज्याः त्रिलोके सर्वत्रापि येषां निर्मलं ज्ञानम्।
पूज्यानामपि पूज्यतरा ज्ञानिनश्च चारित्रयुक्ताश्च॥५०५॥]

[मू] भद्दं बहुस्सुयाणं, बहुजणसंदेहपुच्छणिज्जाणं।
उज्जोइयभुवणाणं, झीणम्मि वि केवलमयंके॥५०६॥

[भद्रं बहुश्रुतानां बहुजनसन्देहप्रच्छनीयानाम्।
उद्द्योतितभुवनानां क्षीणेऽपि केवलमृगाङ्के॥५०६॥]

[मू] जेसिं च फुरइ नाणं, ममत्तनेहाणुबंधभावेहिं।
वाहिज्जंति न कहमवि, मणम्मि एवं विभावेंता॥५०७॥

[येषां च स्फुरति ज्ञानं ममत्वस्नेहानुबन्धभावैः।
बाध्यते न कथमपि मनसि एवं विभावयन्तः॥५०७॥]

[मू] जरमरणसमं न भयं, न दुहं नरगाइजम्मओ अन्नं।
तो जम्ममरणजरमूलकारणं छिंदसु ममत्तं॥५०८॥

[जरामरणसमं न भयं न दुःखं नरकादिजन्मतोऽन्यत्।
ततो जन्ममरणजरामूलकारणं छिन्द्धि ममत्वम्॥५०८॥]

[अव] सुगमा। नवरम्, किमपि शारीरं मानसं च तद्धि भवादिममत्वदोषेण-ऽनन्तशः प्राप्तं तत्तेष्वनन्तशो दुःखहेतुषु हे ! जीव ! ममत्वं छिन्द्धि इत्यर्थः॥५०८॥

[मू] जावइयं किं पि दुहं, सारीरं माणसं च संसारे।
पत्तं[1] अणंतसो विहवाइममत्तदोसेणं॥५०९॥

[यावत् किमपि दुःखं शारीरं मानसं च संसारे।
प्राप्तमनन्तशोऽपि खलु विभवादिममत्वदोषेण॥५०९॥]

[मू] कुणसि ममत्तं धणसयणविहवपमुहेसुऽणंतदुक्खेसु।
सिढिलेसि आयरं पुण, अणंतसोक्खम्मि मोक्खम्मि॥५१०॥

[करोषि ममत्वं धनस्वजनविभवप्रमुखेष्वनन्तदुःखेषु।
शिथिलयसि आदरं पुनोऽनन्तसौख्ये मोक्षे॥५१०॥]

[अव] धनस्वजनादिषु ममत्वं करोषि अनन्तसौख्ये मोक्षे आदरं शिथिलयसि नूनं भ्रमिष्यसि संसारे। ततो ज्ञानी मैवं कुर्विति प्रकारैरात्मानं शिक्षयन् ममत्वेन न बाध्यते॥५१०॥

स्नेहानुबन्धेन तर्हि किं विभावयन्न बाध्यते। इत्याह-

[मू] संसारो दुहहेऊ, दुक्खफलो दुसहदुक्खरूवो य।
नेहनियलेहि बद्धा, न चयंति तहा वि तं जीवा॥५११॥

[संसारो दुःखहेतुर्दुःखफलो दुस्सहदुःखरूपश्च।
स्नेहनिगडैर्बद्धा न त्यजन्ति तथापि तं जीवाः॥५११॥]

[अव] सुगमा॥५११॥

अथ पूर्वोक्तमुपसंहरन्नुत्तरग्रन्थं च सम्बन्धयन्नाह-

[मू] जह न तरइ आरुहिउं, पंके खुत्तो करी थलं कह वि।
तह नेहपंकखुत्तो, जीवो नारुहइ धम्मथलं॥५१२॥

[यथा न शक्नोति आरोढुं पङ्के मग्नः करी स्थलं कथमपि।
जीवः स्नेहपङ्कमग्नो जीवो नारोहति धर्मस्थलम्॥५१२॥]

[मू] छिज्जं सोसं मलणं, बंधं[2] निप्पीलणं च लोयम्मि।
जीवा तिला य पेच्छह, पावंति सिणेहसंबद्धा॥५१३॥

---

१. **एत्तो** हेम.मल.वृत्तिः।, २. **'णं दाहं नि'** इति हेम.मल.वृत्तिः।

[छेदं शोषं मर्दनं बन्धं निष्पीलनं च लोके।
जीवाः तिलाश्च प्रेक्षध्वं प्राप्नुवन्ति स्नेहसम्बद्धाः॥५१३॥]

[मू] दूरुज्झियमज्जाया, धम्मविरुद्धं च जणविरुद्धं च।
किमकज्जं जं जीवा, न कुणंति सिणेहपडिबद्धा ?॥५१४॥

[दूरोज्झितमर्यादा धर्मविरुद्धं च जनविरुद्धं च।
किमकार्यं यद् जीवा न कुर्वन्ति स्नेहप्रतिबद्धाः॥५१४॥]

[मू] थेवो वि जाव नेहो, जीवाणं ताव निव्वुई कत्तो ?।
नेहक्खयम्मि पावइ, पेच्छ पईवो वि निव्वाणं॥५१५॥

[स्तोकोऽपि यावत् स्नेहो जीवानां तावद् निर्वृत्तिः कुतः ?।
स्नेहक्षये प्राप्नोति प्रेक्षस्व प्रदीपोऽपि निर्वाणम्॥५१५॥]

[मू] इय धीराण ममत्तं, नेहो य नियत्तए सुयाईसु।
रोगाइआवईसु य, इय भावंताण न विमोहो॥५१६॥

[इति धीराणां ममत्वं स्नेहश्च निवर्तते सुतादिषु।
रोगाद्यापत्सु च इति भावयतां न विमोहः॥५१६॥]

[अव] धिया = निर्मलबुद्ध्या राजन्त इति धीराः ज्ञानिनस्तेषां इत्युक्तप्रकारेण भावयतां ममत्वं स्नेहश्च सुखादिषु निवर्तते। तथा रोगाद्यापत्सु इत्येवं ज्ञानिनां विभावयतां नैव मोह इत्यर्थः॥५१६॥

रोगपीडाद्यापज्जनिते मानसे दुःखे समुत्पन्ने कोऽपि ज्ञानी एवं विभावयन्नात्मानमनुशासयन्नाह-

[मू] नरतिरिएसु गयाइं, पलिओवमसागराइंऽणंताइं।
किं पुण सुहावसाणं, तुच्छमिणं माणसं[1] दुक्खं ?॥५१७॥

[नरतिर्यक्षु गतानि पल्योपमसागराण्यनन्तानि।
किं पुनः सुखावसानं तुच्छमिदं मानसं दुःखम् ?॥५१७॥]

[अव] हे जीव! भवतः पूर्वे संसारसागरे परिभ्रमतो नारकतिर्यङ्नरामरे दुःखितस्यानन्तसागरोपमानि गतानि किं पुनर्जिनधर्माचरणप्रभावानुमितसुखावसानम्, तुच्छं चाल्पकालभाव्यैतन्मानसं दुःखं नैवापयास्यत्यपि तु यास्यत्येव। मा वैक्लव्यं भजस्वेति भावयन् ज्ञानी तेन दुःखेन न बाध्यत इत्यर्थः॥५१७॥

---

१. **माणुसं** इति पा. प्रतौ।

अपरामपि तद्भावनामाह-

[मू] सकयाइं च दुहाइं, सहसु उइन्नाइं नियसमयम्मि।
न हु जीवोऽवि अजीवो, कयपुव्वो वेयणाईहिं॥५१८॥

[स्वकृतानि च दुःखानि सहस्व उदीर्णानि निजकसमये।
न खलु जीवोऽपि अजीवः कृतपूर्वो वेदनादिभिः॥५१८॥]

[अव] तद्धेतुसमाचरणेन स्वयमेव पूर्वं कृतानि दुःखानि सम्प्रत्युदीर्णानि हे जीव! सहस्व, महानिर्जराफलत्वात् सम्यक्सहनस्य। न च वेदनादिभिरादिशब्दाद्राटिभिर्जीवोऽप्यजीवः कृतपूर्वः कदाचनापि यदा च जीवो जीवत्वं वेदनादिभिः कथमपि न त्यजति किं तदा वैकल्येनेत्यर्थः॥५१८॥

अपरमपि यत्किञ्चित् ज्ञानिनः कुर्वन्ति तदाह-

[मू] तिव्वा रोगायंका, सहिया जह चक्किणा चउत्थेणं।
तह जीव ! ते तुमं पि हु, सहसु सुहं लहसि जमणंतं॥५१९॥

[तीव्रा रोगातङ्काः सोढा यथा चक्रिणा चतुर्थेन।
तथा जीव ! तान् त्वमपि खलु सहस्व सुखं लभसे यदनन्तम्॥५१९॥]

[मू] जे केइ जए ठाणा, उईरणाकारणं कसायाणं।
ते सयमवि वज्जंता, सुहिणो धीरा चरंति महिं॥५२०॥

[यानि कानिचिद् जगति स्थानान्युदीरणाकारणं कषायाणाम्।
तानि स्वयमपि वर्जयन्तः सुखिनो धीराश्चरन्ति महीम्॥५२०॥

[अव] धीराः = ज्ञानिनः, सुखिनो महीं पर्यटन्ति। किं कुर्वन्तः? इत्याह–स्वयमपि ज्ञानेन विज्ञाय तानि वर्जयन्तः = परिहरन्तः। कानीत्याह–जगति यानि कानिचित् स्थानानि उदीरणाकारणम् = उद्दीपनहेतुभूतानि, केषामित्याह–कषायानाम् = क्रोधादीनाम्। इदमुक्तं भवति–ज्ञानिनः स्वयमपि ज्ञात्वा सर्वाण्यपि कषायोदीरणानि वर्जयन्ति। तद्वर्जनेन च कषायाः सर्वथैव नोदीर्यन्ते। कषायाभावे चामृतसिक्ता इव सुखिनस्ते पृथिव्यां पर्यटन्तीत्यर्थः॥५२०॥

[मू] हियनिस्सेयसकरणं, कल्लाणसुहावहं भवतरंडं।
सेवंति गुरुं धन्ना, इच्छंता नाणचरणाइं॥५२१॥

[हितनिःश्रेयसकरणं कल्याणसुखावहं भवतरण्डम्।
सेवन्ते गुरुं धन्या इच्छन्तो ज्ञानचरणे॥५२१॥]

[मू] मुहकडुयाइं अंते, सुहाइं गुरुभासियाइं सीसेहिं।
सहियव्वाइं सया वि हु, आयहियं मग्गमाणेहिं॥५२२॥

[मुखकटुकानि अन्ते सुखानि गुरुभाषितानि शिष्यैः।
सोढव्यानि सदापि खलु आत्महितं मार्गयद्भिः॥५२२॥]

[मू] इय भाविऊण विणयं, कुणंति इह परभवे य सुहजणयं।
जेण कएणऽन्नो वि हु, भूसिज्जइ गुणगुणो सयलो॥५२३॥

[इति भावयित्वा विनयं कुर्वन्ति इह परभवे च सुखजनकम्।
येन कृतेनान्योऽपि खलु भूष्यते गुणगणः सकलः॥५२३॥]

[मू] एवं कए य पुव्वुत्तझाणजलणेण कम्मवणगहणं।
दहिऊण जंति सिद्धिं, अजरं अमरं अणंतसुहं॥५२४॥

[एवं कृते च पूर्वोक्तध्यानज्वलनेन कर्मवनगहनम्।
दग्ध्वा यान्ति सिद्धिमजराममरामनन्तसुखाम्॥५२४॥]

[मू] हेमंतमयणचंदणदणुसूररिणाइवन्ननामेहिं।
सिरिअभयसूरिसीसेहि, रइयं भवभावणं एयं॥५२५॥

[हेमन्तमदनचन्दनदनुसूररि(ऋ)णादिवर्णनामभिः।
श्रीअभयसूरिशिष्यैः रचिता भवभावना एषा॥५२५॥]

[मू] जो पढइ सुत्तओ सुणइ अत्थओ भावए य अणुसमयं।
सो भवनिव्वेयगओ, पडिवज्जइ परमपयमग्गं॥५२६॥

[यः पठति सूत्रतः शृणोति अर्थतो भावयति चानुसमयम्।
स भवनिर्वेदगतः प्रतिपद्यते परमपदमार्गम्॥५२६॥]

[मू] न य बाहिज्जइ हरिसेहि नेय विसमावईविसाएहिं।
भावियचित्तो एयाए चिट्ठए अमयसित्तो व्व॥५२७॥

[न च बाध्यते हर्षैः नैव विषमापद्विषादैः।
भावितचित्तोऽनया तिष्ठति अमृतसिक्त इव॥५२७॥]

[अव] शेषा गाथाः सुगमाः।

नन्वनेन प्रकारणेन सर्वेषामपि जन्तूनामविशेषेणोपकारः सम्पद्यते आहोश्चित् केषाञ्चिदेवेत्याशङ्क्याह-

[मू] उवयारो य इमीए, संसारासुइकिमीण जंतूणं।
जायइ न अहव सव्वण्णुणो वि को तेसु अवयासो ?॥५२८॥

[उपकारश्चानया संसाराशुचिकृमीणां जन्तूनाम्।
जायते न अथवा सर्वज्ञस्यापि कस्तेष्ववकाशः ?॥५२८॥]

[मू] तो अणभिनिविट्ठाणं, अत्थीणं किं पि भावियमईणं।
जंतूण पगरणमिणं, जायइ भवजलहिबोहित्थं॥५२९॥

[ततोऽनभिनिविष्टानामर्थिनां किमपि भावितमतीनाम्।
जन्तूनां प्रकरणमिदं जायते भवजलधिबोहित्थम्॥५२९॥]

[अव] संसाररूपाशुचिकृमीनां जन्तूनामनेन कदाचिदप्युपकारो न जायते। अथवा छद्मस्थमात्रेण मादृशेन विरचिता तिष्ठत्वियम्, सर्वज्ञस्यापि तेषु संसाराभिनन्दिषु प्रतिबोधप्रकारैः कर्तव्ये कोऽवकाशः? तेषामभव्यत्वेन वा केनाप्युपकर्तुमशक्यत्वात्। तस्मात् कदाग्रहमनभिनिविष्टानां धर्मार्थिनां किञ्चिद् जिनवचनभावितमतीनां जन्तूनां प्रकरणमिदं संसारसमुद्रे प्रवहणसदृशं जायते। इति भावार्थः॥५२८॥

अथ ग्रन्थसङ्ख्या गाथया प्राह-

[मू] इगतीसाहियपंचहि, सएहिं गाहाविचित्तरयणेहिं।
सुत्ताणुगया वररयणमालिया निम्मिया एसा॥५३०॥

[एकत्रिंशदधिकपञ्चभिः शतैः गाथाविचित्ररत्नैः।
सूत्रानुगता वररत्नमालिका निर्मिता एषा॥५३०॥]

[अव] स्पष्टा॥५३०॥

[मू] भुवणम्मि जाव वियरइ, जिणधम्मो ताव भव्वजीवाणं।
भवभावणवररयणावलीइ कीरउ अलंकारो॥५३१॥

[भुवने यावद्विचरति जिनधर्मस्तावद्भव्यजीवानाम्।
भवभावनावररत्नावल्या क्रियतामलङ्कारः॥५३१॥

॥इति श्रीभवभावनाप्रकरणावचूरिः सम्पूर्णीभूता॥इति शुभं भवतु[१]॥

---

१. **लेखकप्रशस्तिः-** संवत् १५२५ वर्षे वैशाख शुदि १५ भूमे॥ अद्येह बाडोद्राग्रामे लिखिता॥छ॥
॥ग्रन्थाग्रम्॥१३५०॥ शुभं भवतु॥
यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते॥
तैलाद्रक्षेज्जलाद्रक्षेद्रक्षेत्शिथिलबन्धनात्। परहस्तगता रक्षेदेवं वदति पुस्तिका॥

परिशिष्ट १

मूलगाथानुक्रमः

णमिऊण णमिरसुरवरमणिमउडफुरंतकिरणकब्बुरिअं।
बहुपुन्नंकुरनियरंकियं व सिरिवीरपयकमलं॥१॥
सिद्धंतसिंधुसंगयसुजुत्तिसुत्तीण संगहेऊणं।
मुत्ताहलमालं पिव, रएमि भवभावणं विमलं॥२॥
संवेअमुवगयाणं, भावंताणं भवण्णवसरूवं।
कमपत्तकेवलाणं, जायइ तं चेव पच्चक्खं॥३॥
संसारभावणाचालणीइ सोहिज्जमाणभवमग्गे।
पावंति भव्वजीवा, नट्ठं व विवेयवररयणं॥४॥
संसारसरूवं चिय, परिभावन्तेहिं मुक्कसंगेहिं।
सिरिनेमिजिणाईहिं, वि तह विहिअं धीरपुरिसेहिं॥५॥
भवभावणनिस्सेणिं, मोत्तुं च न सिद्धिमंदिरारुहणं।
भवदुहनिव्विण्णाण, वि जायइ जंतूण कइया वि॥६॥
तम्हा घरपरियणसयणसंगयं सयलदुक्खसंजणयं।
मोत्तुं अट्टज्झाणं, भावेज्ज सया भवसरूवं॥७॥
भवभावणा य एसा, पढिज्जए बारसण्ह मज्झम्मि।
ताओ य भावणाओ, बारस एयाओ अणुकमसो॥॥८॥
पढमं अणिच्चभावं[१], असरणयं[२] एगयं च[३] अन्नत्तं[४]।
संसार[५]मसुहयं[६] चिय, विविहं लोगस्सहावं च७॥९॥
कम्मस्स आसवं[८] संवरं[९] च निज्जरण[१०]मुत्तमे य गुणे।
जिणसासणम्मि[११] बोहिं, च दुल्लहं चिंतए मइमं[१२]॥१०॥
सव्वप्पणा अणिच्चो, नरलोओ ताव चिट्ठउ असारो।
जीयं देहो लच्छी, सुरलोयम्मि वि अणिच्चाइं॥११॥
नइपुलिणवालुयाए, जह विरइयअलियकरितुरंगेहिं।
घररज्जकप्पणाहि य, बाला कीलंति तुट्ठमणा॥१२॥

तो सयमवि अन्नेण व, भग्गे एयम्मि अहव एमेव।
अन्नोऽन्नदिसिं सव्वे, वयंति तह चेव संसारे॥१३॥
घररज्जविहवसयणाइएसु रमिऊण पंच दियहाइं।
वच्चंति कहिं पि वि नियकम्मपलयानिलुक्खित्ता॥१४॥
अहवा जह सुमिणयपावियम्मि रज्जाइइट्ठवत्थुम्मि।
खणमेगं हरिसिज्जंति, पाणिणो पुण विसीयंती॥१५॥
कइवयदिणलद्धेहिं, तहेव रज्जाइएहिं तूसंति।
विगएहि तेहि वि पुणो, जीवा दीणत्तणमुवेंति॥१६॥
रुप्पकणयाइ वत्थुं, जह दीसइ इंदयालविज्जाए।
खणदिट्ठनट्ठरूवं, तह जाणसु विहवमाईयं॥१७॥
संझब्भरायसुरचावविब्भमे घडणविहडणसरूवे।
विहवाइवत्थुनिवहे, किं मुज्झसि जीव ! जाणंतो ?॥१८॥
पासायसालसमलंकियाइं जइ नियसि कत्थइ थिराइं।
गंधव्वपुरवराइं, तो तुह रिद्धी वि होज्ज थिरा॥१९॥
धणसयणबलुम्मत्तो, निरत्थयं अप्प ! गव्विओ भमसि।
जं पंचदिणाणुवरिं, न तुमं न धणं न ते सयणा॥२०॥
कालेण अणंतेणं, अणंतबलचक्किवासुदेवा वि।
पुहईऍ अइक्कंता, कोऽसि तुमं ? को य तुह विहवो ?॥२१॥
भवणाइ उववणाइं, सयणासणजाणवाहणाईणि।
निच्चाइं न कस्सइ न, वि य कोइ परिरक्खिओ तेहि॥२२॥
मायापिईहिं सहवड्ढिएहिं मित्तेहिं पुत्तदारेहिं।
एगयओ सहवासो, पीई पणओ वि य अणिच्चो॥२३॥
बलरूवरिद्धिजोव्वणपहुत्तणं सुभगया अरोयत्तं।
इट्ठेहि य संजोगो, असासयं जीवियव्वं च॥२४॥
इय जं जं संसारे, रमणिज्जं जाणिऊण तमणिच्चं।
निच्चम्मि उज्जमेज्जसु, धम्मे च्चिय बलिनरिंदो व्व॥२५॥
रोयजरामच्चुमुहागयाण बलिचक्किकेसवाणं पि।
भुवणे वि नत्थि सरणं, एक्कं जिणसासणं मोत्तुं॥२६॥

जरकाससाससोसाइपरिगयं पेच्छिऊण घरसामिं।
जायाजणणिप्पमुहं, पासगयं झूरइ कुडुंबं॥२७॥
न विरिंचइ पुण दुक्खं, सरणं ताणं च न हवइ खणं पि।
वियणाओं तस्स देहे, नवरं वड्ढंति अहियाओ॥२८॥
बहुसयणाण अणाहाण वा वि निरुवायवाहिविहुराणं।
दुण्हं पि निव्विसेसा, असरणया विलवमाणाणं॥२९॥
विहवीण दरिद्दाण य, सकम्मसंजणियरोयतवियाणं।
कंदंताण सदुक्खं, को णु विसेसो असरणत्ते ?॥३०॥
तह रज्जं तह विहवो, तह चउरंगं बलं तहा सयणा।
कोसंबिपुरीराया, न रक्खिओ तह वि रोगाणं॥३१॥
सविलासजोव्वणभरे, वट्टंतो मुणइ तणसमं भुवणं।
पेच्छइ न उच्छरंतं, जराबलं जोव्वणदुमग्गिं॥३२॥
नवनवविलाससंपत्तिसुत्थियं जोव्वणं वहंतस्स।
चित्ते वि न वसइ इमं, थेवंतरमेव जरसेन्नं॥३३॥
अह अन्नदिणे पलियच्छलेण होऊण कण्णमूलम्मि।
धम्मं कुणसु त्ति कहंतियव्व निवडेइ जरधाडी॥३४॥
निवडंती य न एसा, रक्खिज्जइ चक्किणो वि सेन्नेण।
जं पुण न हुंति सरणं, धणधन्नाईणि किं चोज्जं ?॥३५॥
वलिपलियदुरवलोयं, गलंतनयणं घुलंतमुहलालं।
रमणीयणहसणिज्जं, एइ असरणस्स वुड्ढत्तं॥३६॥
जरइंदयालिणीए, का वि हयासाइ असरिसा सत्ती।
कसिणा वि कुणइ केसा, मालइकुसुमेहिं अविसेसा॥३७॥
दलइ बलं गलइ सुइं, पाडइ दसणे निरुंभए दिट्ठिं।
जररक्खसी बलीण वि, भंजइ पिट्ठिं पि सुसिलिट्ठं॥३८॥
सयणपराभवसुन्नत्तवाउसिंभाइयं जरासेन्नं।
गुरुयाणं पि हु बलमाणखंडणं कुणइ वुड्ढत्तं॥३९॥
जरभीया य वराया, सेवंति रसायणाइकिरियाओ।
गोवंति पलियवलिगंडकूवे नियजम्ममाईणि॥४०॥

न मुणंति मूढहियया, जिणवयणरसायणं च मोत्तूणं।
सेसोवाएहिं निवारिया वि हु ढुक्कइ पुणो वि जरा॥४१॥
तो जइ अत्थि भयं ते, इमाइ घोराइ जरपिसाईए।
जियसत्तु व्व पवज्जसु, सरणं जिणवीरपयकमलं॥४२॥
समुवट्ठियम्मि मरणे, ससंभमे परियणम्मि धावंते।
को सरणं परिचिंतसु, एक्कं मोत्तूण जिणधम्मं॥४३॥
सयलतिलोयपहूणो, उवायविहीजाणगा अणंतबला।
तित्थयरा वि हु कीरंति कित्तिसेसा कयंतेण॥४४॥
बहुसत्तिजुओ सुरकोडिपरिवुडो पविपयंडभुयदंडो।
हरिणो व्व हीरइ हरी, कयंतहरिणाहरियसत्तो॥४५॥
छक्खंडवसुहसामी, नीसेसनरिंदपणयपयकमलो।
चक्कहरो वि गसिज्जइ, ससि व्व जमराहुणा विवसो॥४६॥
जे कोडिसिलं वामेक्ककरयलेणुक्खिवंति तूलं व।
विज्झवइ जमसमीरो, ते वि पईवव्वऽसुररिउणो॥४७॥
जइ मच्चुमुहगयाणं, एयाण वि होइ किं पि न हु सरणं।
ता कीडयमेत्तेसुं, का गणणा इयरलोएसु ?॥४८॥
जइ पियसि ओसहाइं, बंधसि बाहासु पत्थरसयाइं।
कारेसि अग्गिहोमं, विज्जं मंतं च संतिं च॥४९॥
अन्नाइ वि कुंटलविंटलाइं भूओवघायजणगाइ।
कुणसि असरणो तह वि हु, डंकिज्जसि जमभुयंगेण॥५०॥
सिंचइ उरत्थलं तुह, अंसुपहवाहेण किं पि रुयमाणं।
उवरिट्ठियं कुडुंबं, तं पि सकज्जेक्कतल्लिच्छं॥५१॥
धणधन्नरयणसयणाइया य सरणं न मरणकालम्मि।
जायंति जए कस्स वि, अन्नत्थ वि जेणिमं भणियं॥५२॥
अत्थेण नंदराया, न रक्खिओ गोहणेण कुइअन्नो।
धन्नेण तिलयसेट्ठी, पुत्तेहिं न ताइओ सगरो॥५३॥
इय नाऊण असरणं, अप्पाणं गयउराहिवसुओ व्व।
जरमरणवल्लिविच्छित्तिकारए जयसु जिणधम्मे॥५४॥

एक्को कम्माइं समज्जिणेइ भुंजइ फलं पि तस्सेक्को।
एक्कस्स जम्ममरणे, परभवगमणं च एक्कस्स॥५५॥
सयणाणं मज्झगओ, रोगाभिहओ किलिस्सइ इहेगो।
सयणोऽवि य से रोगं, न विरिंचइ नेय अवणेइ॥५६॥
मज्झम्मि बंधवाणं, सकरुणसद्देण पलवमाणाणं।
मोत्तुं विहवं सयणं, च मच्चुणा हीरए एक्को॥५७॥
पत्तेयं पत्तेयं, कम्मफलं नियमणुहवंताणं।
को कस्स जए सयणो ?, को कस्स परजणो एत्थ ?॥५८॥
को केण समं जायइ ?, को केण समं परं भवं वयइ ?।
को कस्स दुहं गिण्हइ ?, मयं च को कं नियत्तेइ ?॥५९॥
अणुसोयइ अन्नजणं, अन्नभवंतरगयं च बालजणो।
न य सोयइ अप्पाणं, किलिस्समाणं भवे एक्कं॥६०॥
पावाइं बहुविहाइ, करेइ सुयसयणपरियणणिमित्तं।
निरयम्मि दारुणाओ, एक्को च्चिय सहइ वियणाओ॥६१॥
कूडक्कयपरवंचणवीससियवहा य जाण कज्जम्मि।
पावं कयमिण्हिं ते, ण्हाया धोया तडम्मि ठिया॥६२॥
एको च्चिय पुण भारं, वहेइ ताडिज्जए कसाईहिं।
उप्पण्णो तिरिएसुं. महिसतुरंगाइजाईसु॥६३॥
इट्ठकुडुंबस्स कए, करइ नाणाविहाइं पावाइं।
भवचक्कम्मि भमंतो, एक्को च्चिय सहइ दुक्खाइं॥६४॥
सयणाइवित्थरो मह, एत्तियमेत्तो त्ति हरिसियमणेण।
ताण निमित्तं पावाइ जेण विहियाइ विविहाइं॥६५॥
नरयतिरियाइएसुं, तस्स वि दुक्खाइं अणुहवंतस्स।
दीसइ न कोऽवि बीओ, जो अंसं गिण्हइ दुहस्स॥६६॥
भोत्तूण चक्किरिद्धिं, वसिउं छक्खंडवसुहमज्झम्मि।
एक्को वच्चइ जीवो, मोत्तुं विहवं च देहं च॥६७॥
एक्को पावइ जम्मं, वाहिं वुड्ढत्तणं च मरणं च।
एक्को भवंतरेसुं, वच्चइ को कस्स किर बीओ ?॥६८॥

इय एक्को च्चिय अप्पा, जाणिज्जसु सासओ तिहुयणे वि।
थक्कंति महुनिवस्स व, जणकोडीओ विसेसाओ॥६९॥
अन्नं इमं कुडुंबं, अन्ना लच्छी सरीरमवि अन्नं।
मोत्तुं जिणिंदधम्मं, न भवंतरगामिओ अन्नो॥७०॥
विन्नाया भावाणं, जीवो देहाइयं जडं वत्थुं।
जीवो भवंतरगई, थक्कंति इहेव सेसाइं॥७१॥
जीवो निच्चसहावो, सेसाणि उ भंगुराणि वत्थूणि।
विहवाइ बज्झहेउब्भवं च निरहेउओ जीवो॥७२॥
बंधइ कम्मं जीवो, भुंजेइ फलं तु सेसयं तु पुणो।
धणसयणपरियणाइं, कम्मस्स फलं च हेउं च॥७३॥
इय भिन्नसहावत्ते, का मुच्छा तुज्झ विहवसयणेसु ?।
किं वावि होज्जिमेहिं, भवंतरे तुह परित्ताणं ?॥७४॥
भिन्नत्ते भावाणं, उवयारऽवयारभावसंदेहे।
किं सयणेसु ममत्तं ?, को य पओसो परजणम्मि ?॥७५॥
पवणो व्व गयणमग्गे, अलक्खिओ भमइ भववणे जीवो।
ठाणे ठाणम्मि समज्जिऊण धणसयणसंघाए॥७६॥
जह वसिऊणं देसियकुडीए एक्काइ विविहपंथियणो।
वच्चइ पभायसमए, अन्नन्नदिसासु सव्वो वि॥७७॥
जह वा महल्लरुक्खे, पओससमए विहंगमकुलाइं।
वसिऊण जंति सूरोदयम्मि ससमीहियदिसासु॥७८॥
अहवा गावीओ वणम्मि एगओ गोवसन्निहाणम्मि।
चरिउं जह संझाए, अन्नन्नघरेसु वच्चंति॥७९॥
इय कम्मपासबद्धा, विविहट्ठाणेहिं आगया जीवा।
वसिउं एगकुडुंबे, अन्नन्नगईसु वच्चंति॥८०॥
इय अन्नत्तं परिचिंतिऊण घरघरणिसयणपडिबंधं।
मोत्तूण नियसहाए, धणो व्व धम्मम्मि उज्जमसु॥८१॥
नारयतिरियनरामरगईहिं चउहा भवो विणिद्दिट्ठो।
तत्थ य निरयगईए, सरूवमेवं विभावेज्जा॥८२॥

रयणप्पभाइयाओ, एयाओ तीइ सत्त पुढवीओ।
सव्वाओ समंतेण, अहो अहो वित्थरंतीओ॥८३॥
तीसपणवीसपनरसदसलक्खा तिन्नि एग पंचूणं।
पंच य नरगावासा, चुलसीइलक्खाइं सव्वासु॥८४॥
ते णं नरयावासा, अंतो वट्टा बहिं तु चउरंसा।
हेट्ठा खुरुप्पसंठाणसंठिया परमदुग्गंधा॥८५॥
असुई निच्चपइट्ठियपूयवसामंसरुहिरचिक्खिल्ला।
धूमप्पभाइ किंचि वि, जाव निसग्गेण अइ उसिणा॥८६॥
परओ निसग्गओ च्चिय, दुसहमहासीयवेयणाकलिया।
निच्चंधयारतमसा, नीसेसदुहायरा सव्वे॥८७॥
जइ अमरगिरिसमाणं, हिमपिंडं को वि उसिणनरएसु।
खिवइ सुरो तो खिप्पं, वच्चइ विलयं अपत्तो वि॥८८॥
धमियकयअग्गिवन्नो, मेरुसमो जइ पडेज्ज अयगोलो।
परिणामिज्जइ सीएसु सो वि हिमपिंडरूवेण॥८९॥
अइकढिणवज्जकुड्डा, होंति समंतेण तेसु नरएसु।
संकडमुहाइं घडियालयाइं किर तेसु भणियाइं॥९०॥
मूढा य महारंभं, अइघोरपरिग्गहं पणिंदिवहं।
काऊण इहऽन्नाणि वि, कुणिमाहाराइ पावाइं॥९१॥
पावभरेणक्कंता, नीरे अयगोलउ व्व गयसरणा।
वच्चंति अहो जीवा, निरए घडियालयाणंतो॥९२॥
अंगुलअसंखभागो, तेसि सरीरं तहिं हवइ पढमं।
अंतोमुहुत्तमेत्तेण जायए तं पि हु महल्लं॥९३॥
पीडिज्जइ सो तत्तो, घडियालयसंकडे अमायंतो।
पीलिज्जंतो हत्थि, व्व घाणए विरसमारसइ॥९४॥
तं तह उप्पण्णं पासिऊण धावंति हट्ठतुट्ठमणा।
रे रे गिण्हह गिण्हह, एयं दुट्ठं ति जंपंता॥९५॥
छोल्लिज्जंतं तह संकडाउ जंताओ वंससलियं व।
धरिऊण खुरे कड्ढंति पलवमाणं इमे देवा॥९६॥

अंबे अंबरिसी चेव सामे य सबले त्ति य।
रुद्दोवरुद्दकाले य महाकाले त्ति आवरे॥९७॥
असि पत्तेधणू कुंभे वालू वेयरणि त्ति य।
खरस्सरे महाघोसे पनरस परमाहम्मिया॥९८॥
एए य निरयपाला, धावंति समंतओ य कलयलंता।
रे रे तुरियं मारह, छिंदह भिंदह इमं पावं॥९९॥
इय जंपंता वावल्लभल्लिसेल्लेहिं खग्गकुंतेहिं।
नीहरमाणं विंधंति तह य छिंदंति निक्करुणा॥१००॥
निवडंतो वि हु कोइ वि, पढमं खिप्पइ महंतसूलाए।
अप्फालिज्जइ अन्नो, वज्जसिलाकंटयसमूहे॥१०१॥
अन्नो वज्जग्गिचियासु खिप्पए विरसमारसंतो वि।
अंबाईणऽसुराणं, एत्तो साहेमि वावारं॥१०२॥
आराइएहि विंधंति मोग्गराईहिं तह निसुंभंति।
धाडंति अंबरयले, मुंचंति य नारए अंबा॥१०३॥
निहए य तह निसन्ने, ओहयचित्ते विचित्तखंडेहिं।
कप्पंति कप्पणीहिं, अंबरिसी तत्थ नेरइए॥१०४॥
साडणपाडणतोत्तयविंधण तह रज्जुतलपहारेहिं।
सामा नेरइयाणं, कुणंति तिव्वाओ वियणाओ॥१०५॥
सबला नेरइयाणं, उयराओ तह य हिययमज्झाओ।
कड्ढंति अंतवसमंसफिप्फिसे छेदिउं बहुसो॥१०६॥
छिंदंति असीहिं तिसूलसूलसुइसत्तिकुंततुमरेसु।
पोयंति चियासु दहंति निद्दयं नारए रुद्दा॥१०७॥
भंजंति अंगुवंगाणि ऊरू बाहू सिराणि करचरणे।
कप्पंति खंडखंडं, उवरुद्दा निरयवासीणं॥१०८॥
मीरासु सुंठिएसुं, कंडूसु य पयणगेसु कुंभीसु।
लोहीसु य पलवंते, पयंति काला उ नेरइए॥१०९॥
छेत्तूण सीहपुच्छागिईणि तह कागणिप्पमाणाणि।
खावंति मंसखंडाणि नारए तत्थ महकाला॥११०॥

हत्थे पाए ऊरू, बाहु सिरा तह य अंगुवंगाणि।
छिंदंति असी असिमाइएहि निच्चं पि निरयाणं॥१११॥
पत्तधणुनिरयपाला, असिपत्तवणं विउव्वियं काउं।
दंसंति तत्थ छायाहिलासिणो जंति नेरइया॥११२॥
तो पवणचलिततरुनिवडिएहिं असिमाइएहिं किर तेसिं।
कण्णोट्ठनासकरचरणऊरूमाईणि छिंदंति॥११३॥
कुंभेसु पयणगेसु य, सुंठेसु य कंदुलोहिकुंभीसु।
कुंभीओ नारऍ उक्कलंततेल्लाइसु तलंति॥११४॥
तडयडरवफुट्टंते, चणय व्व कयंबवालुयानियरे।
भुंजंति नारए तह, वालुयनामा निरयपाला॥११५॥
वसपूयरुहिरकेसट्ठिवाहिणिं कलयलंतजउसोत्तं।
वेयरणिं नाम नइं, अइखारुसिणं विउव्वेउं॥११६॥
वेयरणिनरयपाला, तत्थ पवाहंति नारए दुहिए।
आरोवंति तहिं पिहु, तत्ताए लोहनावाए॥११७॥
नेरइए चेव परोप्परं पि परसूहिं तच्छयंति दढं।
करवत्तेहि य फाडंति निद्दयं मज्झमज्झेणं॥११८॥
वियरालवज्जकंटयभीममहासिंबलीसु य खिवंति।
पलवंते खरसद्दं, खरस्सरा निरयपाल त्ति॥११९॥
पसुणो व्व नारए वहभएण भीए पलायमाणे य।
महघोसं कुणमाणा, रुंभंति तहिं महाघोसा॥१२०॥
तह फालिया वि उक्कत्तिया वि तलिया वि छिन्नभिन्ना वि।
दड्ढा भुग्गा मुडिया, य तोडिया तह विलीणा या॥१२१॥
पावोदएण पुणरवि, मिलंति तह चेव पारयरसो व्व।
इच्छंता वि हु न मरंति कह वि हु ते नारयवराया॥१२२॥
पभणंति तओ दीणा, मा मा मारेह सामि ! पहु ! नाह !।
अइदुसहं दुक्खमिणं, पसियह मा कुणह एत्ताहे॥१२३॥
एवं परमाहम्मियपाएसु पुणो पुणो वि लग्गंति।
दंतेहि अंगुलीओ, गिण्हंति भणंति दीणाइं॥१२४॥

तत्तो य निरयपाला, भणंति रे अज्ज दुसहं दुक्खं।
जइया पुण पावाइं, करेसि तुट्ठो तया भणसि॥१२५॥
णत्थि जए सव्वन्नू, अहवा अहमेव एत्थ सव्वविऊ।
अहवा वि खाह पियह य, दिट्ठो सो केण परलोओ ?॥१२६॥
णत्थि व पुण्णं पावं, भूयऽब्भहिओ य दीसइ न जीवो।
इच्चाइ भणसि तइया, वायालत्तेण परितुट्ठो॥१२७॥
मंसरसम्मि य गिद्धो, जइया मारेसि निग्घिणो जीवे।
भणसि तया अम्हाणं, भक्खमियं निम्मियं विहिणा॥१२८॥
वेयविहिया न दोसं, जणेइ हिंस त्ति अहव जंपेसि।
चरचरचरस्स तो फालिऊण खाएसि परमंसं॥१२९॥
लावयतित्तिरअंडयरसवसमाईणि पियसि अइगिद्धो।
इण्हिं पुण पोक्कारसि, अइदुसहं दुक्खमेयंति॥१३०॥
अलिएहि वंचसि तया कूडक्कयमाइएहि मुद्धजणं।
पेसुन्नाईणि करेसि हरिसिओ पलवसि इयाणिं॥१३१॥
तइया खणेसि खत्तं, घायसि वीसंभियं मुससि लोयं।
परधणलुद्धो बहुदेसगामनगराइं भंजेसि॥१३२॥
तेणावि पुरिसयारेण विणडिओ मुणसि तणसमं भुवणं।
परदव्वाण विणासे, य कुणसि पोक्करसि पुण इण्हिं॥१३३॥
मा हरसु परधणाइं, ति चोइओ भणसि धिट्ठयाए य।
सव्वस्स वि परकीयं, सहोयरं कस्सइ न दव्वं॥१३४॥
तइया परजुवईणं, चोरियरमियाइं मुणसि सुहियाइं।
अइरत्तो वि य तासिं, मारसि भत्तारपमुहे या॥१३५॥
सोहग्गेण य नडिओ, कूडविलासे य कुणसि ताहिं समं।
इण्हिं तु तत्ततंबयढिउल्लियाणं पलाएसि॥१३६॥
परकीय च्चिय भज्जा, जुज्जइ नियया इ माइभगिणीओ।
एवं च दुव्वियड्ढत्तगव्विओ वयसि सिक्खविओ॥१३७॥
पिंडेसि असंतुट्ठो, बहुपावपरिग्गहं तया मूढो।
आरंभेहि य तूससि, रूससि किं एत्थ दुक्खेहिं ?॥१३८॥

आरंभपरिग्गहवज्जियाण निव्वहइ अम्ह न कुडुंबं।
इय भणियं जस्स कए, आणसु तं दुहविभागत्थं॥१३९॥
भरिउं पिपीलियाईण सीवियं जइ मुहं तुहऽम्हेहिं।
तो होसि पराहुत्तो, भुंजसि रयणीई पुण मिट्ठं॥१४०॥
पियसि सुरं गायंतो, वक्खाणंतो भुयाहिं नच्चंतो।
इह तत्ततेलतंबयतऊणि किं पियसि न ? हयास !॥१४१॥
सूलारोवणनेत्तावहारकरचरणछेयमाईणि।
ायनिओए कुंढत्तणेण लंचाइगहणाइं॥१४२॥
नयरारक्खियभावे, य बंधवहहणणजायणाईहिं।
नाणाविहपावाइं, काउं किं कंदसि इयाणिं ?॥१४३॥
गुरुदेवाणुवहासो, विहिया आसायणा वयं भग्गं।
लोओ य गामकूडत्तणाइभावेसु संतविओ॥१४४॥
इय जइ नियहत्थारोवियस्स तस्सेव पावविडविस्स।
भुंजसि फलाइं रे दुट्ठ ! अम्ह ता एत्थ को दोसो ?॥१४५॥
इच्चाइ पुव्वभवदुक्कयाइं सुमराविउं निरयपाला।
पुणरवि वियणाउ उईरयंति विविहप्पयारेहिं॥१४६॥
उक्कत्तिऊण देहाउ ताण मंसाइं चडफडंताण।
ताणं चिय वयणे पक्खिवंति जलणम्मि भुंजेउं॥१४७॥
रे रे तुह पुव्वभवे, संतुट्ठी आसि मंसरसएहिं।
इय भणिउं तस्सेव य, मंसरसं गिण्हिउं देंति॥१४८॥
चउपासमिलिअवणदवमहंतजालावलीहिं डज्झंता।
सुमराविज्जंति सुरेहिं नारया पुव्वदवदाणं॥१४९॥
आहेडयचेट्ठाओ, संभारेउं बहुप्पयाराओ।
बंधंति पासएहिं, खिवंति तह वज्जकूडेसु॥१५०॥
पाडंति वज्जमयवागुरासु पिट्टंति लोहलउडेहिं।
सूलग्गे दाऊणं, भुंजंति जलंतजलणम्मि॥१५१॥
उल्लंबिऊण उप्पिं, अहोमुहे हेट्ठ जलियजलणम्मि।
काऊण भडित्तं खंडंसोऽवि विकत्तंति सत्थेहिं॥१५२॥

पहरंति चवेडाहिं, चित्तयवयवग्घसीहरूवेहिं।
कुट्टंति कुहाडेहिं, ताण तणुं खयरकट्ठं व॥१५३॥
कयवज्जतुंडबहुविहविहंगरूवेहिं तिक्खचंचूहिं।
अच्छी खुड्डंति सिरं, हणंति चुंटंति मंसाइं॥१५४॥
अगणिवरिसं कुणंते, मेहे वेउव्वियम्मि नेरइया।
सुरकयपव्वयगुहमणुसरंति निज्जलियसव्वंगा॥१५५॥
तत्थ वि पडंतपव्वयसिलासमूहेण दलियसव्वंगा।
अइकरुणं कंदंता, पप्पडपिट्ठं व कीरंति॥१५६॥
तिरियाणऽइभारारोवणाइं सुमराविऊण खंधेसुं।
चडिऊण सुरा तेसिं, भरेण भंजंति अंगाइं॥१५७॥
जेसिं च अइसएणं, गिद्धी सद्दाइएसु विसएसु।
आसि इहं ताणं पि हु, विवागमेयं पयासंति॥१५८॥
तत्ततउमाइयाइं, खिवंति सवणेसु तह य दिट्ठीए।
संतावुव्वेयविघायहेउरूवाणि दंसंति॥१५९॥
वसमंसजलणमुम्मुरपमुहाणि विलेवणाणि उवणेंति।
उप्पाडिऊण संदंसएण दसणे य जीहं च॥१६०॥
तत्तो भीमभुयंगमपिवीलियाईणि तह य दव्वाणि।
असुईउ अणंतगुणे, असुहाइं खिवंति वयणम्मि॥१६१॥
सोवंति वज्जकंटयसेज्जाए अगणिपुत्तियाहिं समं।
परमाहम्मियजणियाउ एवमाई य वियणाओ॥१६२॥
एसो मह पुव्ववेरि, त्ति नियमणे अलियमवि विगप्पेउं।
अवरोप्परं पि घायंति नारया पहरणाईहिं॥१६३॥
सीओसिणाइ वियणा, भणिया अन्ना वि दसविहा समए।
खेत्ताणुभावजणिया, इय तिविहा वेयणा नरए॥१६४॥
तत्तो कसिणसरीरा, बीभच्छा असुइणो सडियदेहा।
नीहरियअंतमाला, भिन्नकवाला लुयंगा य॥१६५॥
दीणा सव्वनिहीणा, नपुंसगा सरणवज्जिया खीणा।
चिट्ठंति निरयवासे, नेरइया अहव किं बहुणा ?॥१६६॥

अच्छिनिमीलणमेत्तं, नत्थि सुहं दुक्खमेव अणुबद्धं।
नरए नेरइयाणं, अहोनिसिं पच्चमाणाणं॥१६७॥
तत्थ य सम्मादिट्ठी, पायं चिंतंति वेयणाऽभिहया।
मोत्तुं कम्माइ तुमं, मा रूससु जीव ! जं भणियं॥१६८॥
सव्वो पुव्वकयाणं, कम्माणं पावए फलविवागं।
अवराहेसु गुणेसु य, निमित्तमेत्तं परो होइ॥१६९॥
धारिज्जइ एंतो जलनिही वि कल्लोलभिन्नकुलसेलो।
न हु अन्नजम्मनिम्मियसुहासुहो देव्वपरिणामो॥१७०॥
अकयं को परिभुंजइ ?, सकयं नासेज्ज कस्स किर कम्मं ?।
सकयमणुभुंजमाणे, कीस जणो दुम्मणो होइ ?॥१७१॥
दुप्पत्थिओ अमित्तं, अप्पा सुप्पत्थिओ हवइ मित्तं।
सुहदुक्खकारणाओ, अप्पा मित्तं अमित्तं वा॥१७२॥
वारिज्जंतो वि हु गुरुयणेण तइया करेसि पावाइं।
सयमेव किणियदुक्खो, रूससि रे जीव ! कस्सिण्हिं ?॥१७३॥
सत्तमियाओ अन्ना, अट्ठमिया नत्थि निरयपुढवि त्ति।
एमाइ कुणसि कूडुत्तराइं इण्हिं किमुव्वयसि ?॥१७४॥
इय चिंताए बहुवेयणाहिं खविऊण असुहकम्माइं।
जायंति रायभुवणाइएसु कमसो य सिज्झंति॥१७५॥
अन्ने अवरोप्परकलहभावओ तह य कोवकरणेणं।
पावंति तिरियभावं, भमंति तत्तो भवमणंतं॥१७६॥
पाणिवहेणं भीमो, कुणिमाहारेण कुंजरनरिंदो।
आरंभेहि य अघलो, नरयगईए उदाहरणा॥१७७॥
एवं संखेवेणं, निरयगई वन्निया तओ जीवा।
पाएण होंति तिरिया, तिरियगई तेणऽओ वोच्छं॥१७८॥
एगिंदियविगलिंदियपंचिं(चें)दियभेयओ तहिं जीवा।
परमत्थओ य तेसिं, सरूवमेवं विभावेज्जा॥१७९॥
पुढवी फोडणसंचिणणहलमलणखणणाइदुत्थिया निच्चं।
नीरं पि पियणतावणघोलणसोसाइकयदुक्खं॥१८०॥

अगणी खोट्टणचूरणजलाइसत्थेहिं दुत्थियसरीरो।
वाऊ वीयणपिट्टणऊसिणाणिलसत्थकयदुत्थो॥१८१॥
छेअणसोसणभंजणकंडणदढदलणचलणमलणेहिं।
उल्लूरणउम्मूलणदहणेहि य दुक्खिया तरुणो॥१८२॥
गोला होंति असंखा, होंति निगोया असंखया गोले।
एक्केक्को य निगोदो, अणंतजीवो मुणेयव्वो॥१८३॥
एगोसासम्मि मओ, सतरस वाराउऽणंतखुत्तो वि।
खोल्लगभवगहणाऊ, एएसु निगोयजीवेसु॥१८४॥
पुत्ताइसु पडिबद्धा, अन्नाणपमायसंगया जीवा। उप्पज्जंति
धणप्पियवणिउव्वेगिंदिएसु बहुं॥१८५॥
विगलिंदिया अवत्तं, रसंति सुन्नं भमंति चिट्ठंति।
लोलंति घुलंति लुढंति जंति निहणं पि छुहवसगा॥१८६॥
जिणधम्मुवहासेणं, कामासत्तीइ हिययसढयाए।
उम्मग्गदेसणाए, सया वि केलीकिलत्तेण॥१८७॥
कूडक्कय अलिएणं, परपरिवाएण पिसुणयाए य।
विगलिंदिएसु जीवा, वच्चंति पियंगुवणिओ व्व॥१८८॥
पंचिंदियतिरिया वि हु, सीयायवतिव्वछुहपिवासाहिं।
अन्नोऽन्नगसणताडणभारुव्वहणाइसंतविया॥१८९॥
पिट्ठं घट्ठं किमिजालसंगयं परिगयं च मच्छीहिं।
वाहिज्जंति तहा वि हु, रासहवसहाइणो अवसा॥१९०॥
वाहेऊण सुबहुयं, बद्धा कीलेसु छुहपिवासाहिं।
वसहतुरगाइणो खिज्जिऊण सुइरं विवज्जंति॥१९१॥
आराकसाइघाएहिं ताडिया तडतड त्ति फुट्टंति।
अणवेक्खियसामत्था, भरम्मि वसहाइणो जुत्ता॥१९२॥
धणदेवसेट्ठिवसहो, कंबलसबला य एत्थुदाहरणं।
भरवहणखुहपिवासाहि दुक्खिया मुक्कनियजीवा॥१९३॥
निद्दयकसपहरफुडंतजंघवसणाहि गलियरुहिरोहा।
जलभरसंपूरियगुरुतडंगभज्जंतपिट्ठंता॥१९४॥

निग्गयजीहा पगलंतलोयणा दीहरच्छियग्गीवा।
वाहिज्जंता महिसा, पेच्छसु दीणं पलोयंति॥१९५॥
विहियपमाया केवलसुहेसिणो चिन्नपरधणा विगुणा।
वाहिज्जंते महिसत्तणम्मि जह खुड्डओ विवसो॥१९६॥
काउं कुडुंबकज्जे, समुद्दवणिओ व्व विविहपावाइं।
मारेउं महिसत्ते, भुंजइ तेण वि कुडुंबेण॥१९७॥
उयरे उंटकरंकं, पट्ठीए भरो गलम्मि कूवो य।
उज्झं मुंचइ पोक्करइ, तहा वि वाहिज्जए करहो॥१९८॥
नासाएँ समं उट्ठं, बंधेउं सेल्लियं च खिविऊण।
लज्जूए अ खिविज्जइ, करहो विरसं रसंतोऽवि॥१९९॥
गिम्हम्मि मरुत्थलवालुयासु जलणोसिणासु खुप्पंतो।
गरुयं पि हु वहइ भरं, करहो नियकम्मदोसेण॥२००॥
जिणमयमसद्दहंता, दंभपरा परधणेक्कलुद्धमणा।
अंगारसूरिपमुहा, लहंति करहत्तणं बहुसो॥२०१॥
जीवंतस्स वि उक्कित्तिउं छविं छिंदिऊण मंसाइं।
खद्धाइं जं अणज्जेहिं पसुभवे किं न तं सरसि ?॥२०२॥
गलयं छेत्तूणं कत्तियाइ उल्लंबिऊण पाणेहिं।
घेत्तु तुह चम्ममंसं, अणंतसो विक्किंयं तत्थ॥२०३॥
दिन्नो बलीए तह देवयाण विरसाइं बुब्बुयंतो वि।
पाहुणयभोयणेसु य, कओ सि तो पोसिउं बहुसो॥२०४॥
धम्मच्छलेण केहिं, वि अन्नाणंधेहिं मंसगिद्धेहिं।
निहओ निरुद्धसद्दो, गलयं वलिऊण जन्नेसु॥२०५॥
ऊरणयछगलगाई, निराउहा नाहवज्जिया दीणा।
भुंजंति निग्घिणेहिं, दिज्जंति बलीसु य न वग्घा॥२०६॥
पसुघाएणं नरगाइएसु आहिंडिऊण पसुजम्मे।
महुविप्पो व्व हणिज्जइ, अणंतसो जन्नमाईसु॥२०७॥
रन्ने दवग्गिजालावलीहिं सव्वंगसंपलित्ताणं।
हरिणाण ताण तह दुक्खियाण को होइ किर सरणं ?॥२०८॥

निद्दयपारिद्धियनिसियसेल्लनिब्भिन्नखिन्नदेहेण।
हरिणत्तणम्मि रे ! सरसु जीव ! जं विसहियं दुक्खं॥२०९॥
बद्धो पासे कूडेसु निवडिओ वागुरासु संमूढो।
पच्छा अवसो उक्कत्तिऊण कह कह न खद्धो सि ?॥२१०॥
सरपहरवियारियउयरगलियगब्भं पलोइउं हरिणिं।
सयमवि य पहरविहुरेण सरसु जह जूरियं हियए॥२११॥
मायावाहसमारद्धगोरिगेयज्झुणीसु मुज्झंतो।
सवणावहिओ अन्नाणमोहिओ पाविओ निहणं॥२१२॥
दट्ठूण कूडहरिणिं, फासिंदियभोलिओ तहिं गिद्धो।
विद्धो बाणेण उरम्मि घुम्मिउं निहणमणुपत्तो॥२१३॥
चित्तयमइंदकमनिसियनहरखरपहरविहुरियंगस्स।
जह तुह दुहं कुरंगत्तणम्मि तं जीव ! किं भणिमो ?॥२१४॥
वइविवरविहियझंपो, गत्तासूलाइ निवडिओ संतो।
जवचणयचरणगिद्धो, विद्धो हिययम्मि सूलाहिं॥२१५॥
मत्तो तत्थेव य नियपमायओ निहयरुक्खगयसिंगो।
सुबहुं वेल्लंतो जं, मओऽसि तं किं न संभरसि ?॥२१६॥
गिम्हे कंताराइसु, तिसिओ माइण्हियाइ हीरंतो।
मरइ कुरंगो फुट्टंतलोयणो अहव थेवजले॥२१७॥
हरिणो हरिणीऍ कए, न पियइ हरिणी वि हरिणकज्जेण।
तुच्छजले बुड्डमुहाइं दो वि समयं विवन्नाइं॥२१८॥
एत्थ य हरिणत्ते पुप्फचूलकुमरेण जह सभज्जेण।
दुहमणुभूयं तह सुणसु जीव ! कहियं महरिसीहिं॥२१९॥
पज्जलियजलणजालासु उवरि उल्लंबिऊण जीवंतो।
भुत्तोऽसि भुंजिउं सूयरत्तणे किह न तं सरसि ?॥२२०॥
गहिऊण सवणमुच्छालिऊण वामाओ दाहिणगयम्मि।
सुणयम्मि तओ तत्थ वि, विद्धो सेल्लेण निहण गओ॥२२१॥
उप्पन्नस्स पिउस्स वि, भवपरियत्तीइ सूयरत्तेण।
पिट्ठिइमंसक्खाई, रायसुओ बोहिओ मुणिणा॥२२२॥

लुद्धो फासम्मि करेणुयाए वारीए निवडिओ दीणो।
झिज्जइ दंती नाडयनियंतिओ सुक्खरुक्खम्मि॥२२३॥
विंझरमियाइ सरिउं, झिज्जंतो निबिडसंकलाबद्धो।
विद्धो सिरम्मि सियअंकुसेण वसिओ सि गयजम्मे॥२२४॥
सोऊण सीहनायं, पुव्विं पि विमुक्कजीवियासस्स।
निवडंतसीहनहरस्स तत्थ किं तुह दुहं कहिमो ?॥२२५॥
भिसिणीबिसाइं सल्लइदलाइं सरिऊण जुन्नघासस्स।
कवलमगिण्हंतो आरियाहिं कह कह न विद्धो सि ?॥२२६॥
पडिकुंजरकढिणचिहुट्टदसणक्खयगलियपूयरुहिरोहो।
परिसक्किरकिमिजालो, गओ सि तत्थेव पंचत्तं॥२२७॥
जूहवइत्ते पज्जलियवणदावे निरवलंबचरणस्स।
मेहकुमारस्स व दुहमणंतसो तुह समुप्पन्नं॥२२८॥
जाले बद्धो सत्थेण छिंदिउं हुयवहम्मि परिमुक्को।
भुत्तो य अणज्जेहिं, जं मच्छभवे तयं सरसु॥२२९॥
छेत्तूण निसियसत्थेण खंडसो उक्कलंततेल्लम्मि।
तलिऊण तुट्ठहियएहि हंत भुत्तो तहिं चेव॥२३०॥
जीवंतो वि हु उवरिं, दाउं दहणस्स दीणहियओ य।
काऊण भडित्तं भुंजिओऽसि तेहिं चिय तहिं पि॥२३१॥
अन्नोऽन्नगसणवावारनिरयअइकूरजलयरारद्धो।
तसिओ गसिओ मुक्को, लुक्को ढुक्को य गिलिओ य॥२३२॥
बडिसग्गनिसियआमिसलवलुद्धो रसणपरवसो मच्छो।
गलए विद्धो सत्थेण छिंदिउं भुंजिउं भुत्तो॥२३३॥
पियपुत्तो वि हु मच्छत्तणं पि जाओ सुमित्तगहवइणा।
बिडिसेण गले गहिओ, मुणिणा मोयाविओ कह वि॥२३४॥
पक्खिभवेसु गसंतो, गसिज्जमाणो य सेसपक्खीहिं।
दुक्खं उप्पायंतो, उप्पन्नदुहो य भमिओ सि॥२३५॥
खरचरणचवेडाहि य, चंचुपहारेहिं निहणमुवणेंतो।
निहणिज्जंतो य चिरं, ठिओ सि ओलावयाईसु॥२३६॥

पासेसु जलियजलणेसु कूडजंतेसु आमिसलवेसु।
पडिओ अन्नाणंधो, बद्धो खद्धो निरुद्धो य॥२३७॥
पडिकुक्कुडनहरपहारफुट्टनयणो विभिन्नसव्वंगो।
निहणं गओ सि बहुसो, वि जीव ! परकोउयकएण॥२३८॥
झीणो सरिउं सहपिययमाए रमियाइं सालिछेत्तेसु।
खित्तो गोत्तीइ व पंजरट्ठिओ हंत कीरत्ते॥२३९॥
भमिओ सहयारवणेसु पिययमापरिगएण सच्छंदं।
सरिऊण पंजरगओ, बहुं विसन्नो विवन्नो य॥२४०॥
गहिओ खरनहरबिडालियाए आयड्ढिऊण कंठम्मि।
चिल्लंतो विलवंतो, खद्धो सि तहिं तयं सरसु॥२४१॥
तत्थेव य सच्छंदं, मुद्दियलयमंडवेसु हिंडंतो।
जणएण पासएहिं, बद्धो खद्धो य जणणीए॥२४२॥
इय तिरियमसंखेसुं, दीवसमुद्देसु उड्ढमहलोए।
विविहा तिरिया दुक्खं, च बहुविहं केत्तियं भणिमो ?॥२४३॥
हिमपरिणएसु सरिसरवरेसु सीयलसमीरसुढियंगा।
हिययं फुडिऊण मया, बहवे दीसंति जं तिरिया॥२४४॥
वासारत्ते तरुभूमिनिस्सिया रण्णजलपवाहेहिं।
वुज्झंति असंखा तह, मरंति सीएण विज्झडिया॥२४५॥
को ताण अणाहाणं, रन्ने तिरियाण वाहिविहुराणं।
भुयगाइडंकियाण य, कुणइ तिगिच्छं व मंतं वा ?॥२४६॥
वसणच्छेयं नासाइविंधणं पुच्छकन्नकप्परणं।
बंधणताडणडंभणदुहाइं तिरिएसुऽणंताइं॥२४७॥
मुद्धजणवंचणेणं, कूडतुलाकूडमाणकरणेण।
अट्टवसट्टोवगमेण देहघरसयणचिंताहिं॥२४८॥
कूडक्कयकरणेणं, अणंतसो नियडिनडियचित्तेहिं।
सावत्थीवणिएहिं, व तिरियाउं बज्झए एवं॥२४९॥
कालमणंतं एगिंदिएसु संखेज्जयं पुणियरेसु।
काऊण केइ मणुया, होंति अतो तेण ते भणिमो॥२५०॥

कम्मेयरभूमिसमुब्भवाइभेएणऽणेगहा मणुया।
ताण विचिंतसु जइ अत्थि किं पि परमत्थओ सोक्खं॥२५१॥
गब्भे बालत्तणयम्मि जोव्वणे तह य वुड्ढभावम्मि।
चिंतसु ताण सरूवं, निउणं चउसु वि अवत्थासु॥२५२॥
मोहनिवनिबिडबद्धो, कत्तो वि हु कड्ढिउं असुइगब्भे।
चोरो व्व चारयगिहे, खिप्पइ जीवो अणप्पवसो॥२५३॥
सुक्कं पिउणो माऊए सोणियं तदुभयं पि संसट्ठं।
तप्पढमयाएँ जीवो, आहारइ तत्थ उप्पन्नो॥२५४॥
सत्ताहं कललं होइ, सत्ताहं होइ अब्बुयं।
अब्बुया जायए पेसी, पेसीओ य घणं भवे॥२५५॥
होइ पलं करिसूणं, पढमे मासम्मि बीयए पेसी।
होइ घणा तइए उण, माऊए दोहलं जणइ॥२५६॥
जणणीए अंगाइं, पीडेइ चउत्थयम्मि मासम्मि।
करचरणसिरंकूरा, पंचमए पंच जायंति॥२५७॥
छट्ठम्मि पित्तसोणियमुवचिणेइ सत्तमम्मि पुण मासे।
पेसिं पंचसयगुणं, कुणइ सिराणं च सत्तसए॥२५८॥
नव चेव य धमणीओ, नवनउइं लक्ख रोमकूवाणं।
अद्धट्ठा कोडीओ, समं पुणो केसमंसूहिं॥२५९॥
निप्फन्नप्पाओ पुण, जायइ सो अट्ठम्मि मासम्मि।
ओयाहाराईहि य, कुणइ सरीरं समग्गं पि॥२६०॥
दुन्नि अहोरत्तसए, संपुण्णे सत्तसत्तरी चेव।
गब्भगओ वसइ जिओ, अद्धमहोरत्तमन्नं च॥२६१॥
उक्कोसं नवलक्खा, जीवा जायंति एगगब्भम्मि।
उक्कोसेण नवण्हं, सयाण जायइ सुओ एक्को॥२६२॥
गब्भाउ वि काऊणं, संगामाईणि गरुयपावाइं।
वच्चंति के वि नरयं, अन्ने उण जंति सुरलोयं॥२६३॥
नवलक्खाण वि मज्झे, जायइ एगस्स दुण्ह व समत्ती।
सेसा पुण एमेव य, विलयं वच्चंति तत्थेव॥२६४॥

सुयमाणीए माऊइ सुयइ जागरइ जागरंतीए।
सुहियाइ हवइ सुहिओ, दुहियाए दुक्खिओ गब्भो॥२६५॥
कइया वि हु उत्ताणो, कइया वि हु होइ एगपासेण।
कइया वि अंबखुज्जो, जणणीचेट्ठाणुसारेण॥२६६॥
इय चउपासो बद्धो, गब्भे संवसइ दुक्खिओ जीवो।
परमतिमिसंधयारे, अमेज्झकोत्थलयमज्झे व॥२६७॥
सूईहिं अग्गिवन्नाहिं भिज्जमाणस्स जंतुणो।
जारिसं जायए दुक्खं गब्भे अट्ठगुणं तओ॥२६८॥
पित्तवसमंससोणियसुक्कट्ठिपुरीसमुत्तमज्झम्मि।
असुइम्मि किमि व्व ठिओ, सि जीव ! गब्भम्मि निरयसमे॥२६९॥
इय कोइ पावकारी, बारस संवच्छराइं गब्भम्मि।
उक्कोसेणं चिट्ठइ, असुइप्पभवे असुइयम्मि॥२७०॥
तत्तो पाएहिं सिरेण वा वि सम्मं विणिग्गमो तस्स।
तिरियं णिग्गच्छंतो, विणिवायं पावए जीवो॥२७१॥
गब्भदुहाइं दट्ठुं, जाईसरणेण नायसुरजम्मो।
सिरितिलयइब्भतणओ, अभिग्गहं कुणइ गब्भत्थो॥२७२॥
अइविस्सरं रसंतो, जोणीजंताओ कह वि णिप्फिडइ।
माऊऍ अप्पणोऽवि य, वेयणमउलं जणेमाणो॥२७३॥
जायमाणस्स जं दुक्खं मरमाणस्स जंतुणो।
तेण दुक्खेण संतत्तो न सरइ जाइमप्पणो॥२७४॥
दाहिणकुच्छीवसिओ, पुत्तो वामाए पुण हवइ धूया।
उभयंतरम्मि वसिओ, नपुंसओ जायए जीवो॥२७५॥
छुहियं पिवासिसं वा, वाहिग्घत्थं च अत्तयं कहिउं।
बालत्तणम्मि न तरइ, गमइ रुयंतो च्चिय वराओ॥२७६॥
खेलखरंटियवयणो, मुत्तपुरीसाणुलित्तसव्वंगो।
धूलिभुरुंडियदेहो, किं सुहमणुहवइ किर बालो ?॥२७७॥
खिवइ करं जलम्मि वि, पक्खिवइ मुहम्मि कसिणभुयगं पि।
भुंजइ अभोज्जपेज्जं, बालो अन्नाणदोसेण॥२७८॥

उल्लसइ भमइ कुक्कुयइ कीलइ जंपइ बहुं असंबद्धं।
धावइ निरत्थयं पि हु, निहणंतो भूयसंघायं॥२७९॥
इय असमंजसचेट्ठियअन्नाणऽविवेयकुलहरं गमियं।
जीवेणं बालत्तं, पावसयाइं कुणंतेण॥२८०॥
बालस्स वि तिव्वाइं, दुहाइं दट्ठूण नियययतणयस्स।
बलसारपुहइवालो, निव्विन्नो भवनिवासस्स॥२८१॥
तरुणत्तणम्मि पत्तस्स धावए दविणमेलणपिवासा।
सा का वि जीई न गणइ देवं धम्मं गुरुं तत्तं॥२८२॥
तो मिलइ कह वि अत्थे, जइ तो मुज्झइ तयं पि पालंतो।
बीहेइ राइतक्करअंसहराईण निच्चं पि॥२८३॥
वड्ढंते उण अत्थे, इच्छा वि कह वि तह दूरं।
जह मम्मणवणिओ इव, संतेऽवि धणे दुही होइ॥२८४॥
लद्धं पि धणं भोत्तुं, न पावए वाहिविहुरिओ अन्नो।
पत्थोसहाइनिरओ, त्ति केवलं नियइ नयणेहिं॥२८५॥
जइ पुण होइ न पुत्तो, अहवा जाओ वि होइ दुस्सीलो।
तो तह झिज्झइ अंगे, जह कहिउं केवली तरइ॥२८६॥
अन्ने उण संजुत्ता, रत्तुप्पलपत्तकोमलतलेहिं।
सोणनहसयललक्खणलक्खियकुम्मुन्नयपएहिं॥२८७॥
सुसिलिट्ठगूढगुप्फा, एणीजंघा गइंदहत्थोरू। हरिकडियला
पयाहिणसुरसलिलावत्तनाभीया॥२८८॥
वरवइरवलियमज्झा, उन्नयकुच्छी सिलिट्ठमीणुयरा।
कणयसिलायलवच्छा, पुरगोउरपरिहभुयदंडा॥२८९॥
वरवसहुन्नयखंधा, चउरंगुलकंबुगीवकलिया य।
सद्दूलहणू बिंबीफलाहरा ससिसमकवोला॥२९०॥
कुंददलधवलदसणा, विहगाहिवचंचुसरलसमनासा।
पउमदलदीहनयणा, अणंगधणुकुडिलभूलेहा॥२९१॥
रइरमणंदोलयसरिससवण अद्धिंदुपडिमभालयला।
भरहाहिवछत्तसिरा, कज्जलघणकसिणमिउकेसा॥२९२॥

संपुन्नससहरमुहा, पाउसगज्जंतमेहसमघोसा।
सोमा ससि व्व सूरा, व सप्पहा कणयमिव रुइरा॥२९३॥
पाणितलाइसु ससिसूरचक्कसंखाइलक्खणोवेया।
वज्जरिसहसंघयणा, समचउरंसा य संठाणा॥२९४॥
लायन्नरूवनिहिणो, दंसणसंजणियजणमणाणंदा।
इय गुणनिहिणो होउं, पढमेच्चिय जोव्वणारंभे॥२९५॥
तह विहुरिज्जंति खणेण कुट्ठक्खयपमुहभीमरोगेहिं।
जह होंति सोयणिज्जा, निवविक्कमरायतणुओ व्व॥२९६॥
अन्ने उण सव्वंगं, गसिया जररक्खसीइ जायंति।
रमणीण सज्जणाण य, हसणिज्जा सोअणिज्जा य॥२९७॥
इय विहवणयपराण वि, तारुण्णं पि हु विडंबणट्ठाणं।
जे उण दारिद्दहया, अनीइमंताण ताणं तु॥२९८॥
परजुवइरमणपरदव्वहरणवहवेरकलहनिरयाणं।
दुन्नयधणाण निच्चं, दुहाइं को वन्निउं तरइ ?॥२९९॥
नत्थि घरे मह दव्वं, विलसइ लोओ पयट्टइ छणो त्ति।
डिंभाइ रुयंति तहा, हद्धी किं देमि घरिणीए ?॥३००॥
देंति न मह ढोयं पि हु, अत्तसमिद्धीइ गव्विया सयणा।
सेसा वि हु धणिणो परिहवंति न हु देंति अवयासं॥३०१॥
अज्ज घरे नत्थि घयं, तेल्लं लोणं वा इंधणं वत्थं।
जाया व अज्ज तउणी, कल्ले किह होहिइ कुडुंबं ?॥३०२॥
वड्ढइ घरे कुमारी, बालो तणओ विढप्पइ न अत्थे।
रोगबहुलं कुडुंबं, ओसहमोल्लाइयं नत्थि॥३०३॥
उक्कोया मह घरिणी, समागया पाहुणा बहू अज्ज।
जिन्नं घरं च हट्टं, झरइ जलं गलइ सव्वं पि॥३०४॥
कलहकरी मह भज्जा, असंवुडो परियणो पहू विसमो।
देसो अधारणिज्जो, एसो वच्चामि अन्नत्थ॥३०५॥
जलहिं पविसेमि महिं, तरेमि धाउं धमेमि अहवा वि।
विज्जं मंतं साहेमि देवयं वा वि अच्चेमि॥३०६॥

जीवइ अज्ज वि सत्तू, मओ य इट्ठो पहू य मह रुट्ठो।
दाणिग्गहणं मग्गंति विहविणो कत्थ वच्चामि ?॥३०७॥
इच्चाइ महाचिंताजरगहिया निच्चमेव य दरिद्दा।
किं अणुहवंति सोक्खं ?, कोसंबीनयरिविप्पो व्व॥३०८॥
इय विहवीण दरिद्दाण वा वि तरुणत्तणे वि किं सोक्खं ?।
दुहकोडिकुहरं चिय, वुड्ढत्तं नूण सव्वेसिं॥३०९॥
एयस्स पुण सरूवं, पुव्विं पि हु वन्नियं समासेणं।
वोच्छामि पुणो किंचि वि, ठाणस्स असुन्नयाहेउं॥३१०॥
थरहरइ जंघजुयलं, झिज्झइ दिट्ठी पणस्सइ सुइ वि।
भज्जइ अंगं वाएण होइ सिंभो वि अइपउरो॥३११॥
लोयम्मि अणाएज्जो, हसणिज्जो होइ सोयणिज्जो य।
चिट्ठइ घरम्मि कोणे, पडिउं मंचम्मि कासंतो॥३१२॥
वुड्ढत्तम्मि य भज्जा, पुत्ता धूया वधूयणो वा वि।
जिणदत्तसावगस्स व, पराभवं कुणइ अइदुसहं॥३१३॥
चउसुं पि अवत्थासुं, इय मणुएसुं विचिंतयंताणं।
नत्थि सुहं मोत्तूणं, केवलमभिमाणसंजणियं॥३१४॥
मणुयाण दस दसाओ, जाओ समयम्मि पुण पसिद्धाओ।
अंतब्भवंति ताओ, एयासु वि ताओ पुण एवं॥३१५॥
बाला किड्डा मंदा, बला य पन्ना य हाइणि पवंचा।
पब्भारमुम्मुही सायणी य दसमी य कालदसा॥३१६॥
दसवरिसपमाणाओ, पत्तेयमिमाओ तत्थ बालस्स।
पढमदसा बीया उ, जाणेज्जसु कीलमाणस्स॥३१७॥
तइया भोगसमत्था, होइ चउत्थीए पुण बलं विउलं।
पंचमियाए पन्ना, इंदियहाणी उ छट्ठीए॥३१८॥
सत्तमियाइ दसाए, कासइ निट्ठुहइ चिक्कणं खेलं।
संकुइयवली पुण अट्ठमीए जुवईण य अणिट्ठो॥३१९॥
नवमी नमइ सरीरं, वसइ य देहे अकामओ जीवो।
दसमीएँ सुयइ वियलो, दीणो भिन्नस्सरो खीणो॥३२०॥

पणपन्नाइ परेणं, महिला गब्भं न धारए उयरे।
पणसत्तरीइ परओ, पाएण पुमं भवेऽबीओ॥३२१॥
वाससयाउयमेयं, परेण जा होइ पुव्वकोडीओ।
तस्सद्धे अमिलाणा, सव्वाउयवीसभागो उ॥३२२॥
तम्हा मणुयगईए, वि सारं पेच्छामि एत्तियं चेव।
जिणसासणं जिणिंदा, महरिसिणो नाणचरणधणा॥३२३॥
पडिवज्जिऊण चरणं, जं च इहं केइ पाणिणो धन्ना।
साहंति सिद्धिसोक्खं, देवगईए व वच्चंति॥३२४॥
तेणेव पगइभद्दो, विणयपरो विगयमच्छरो सदओ।
मणुयाउयं निबंधइ, जह धरणीधरो सुनंदो य॥३२५॥
देवगइं चिय वोच्छं, एत्तो भवणवइवंतरसुरेहिं।
जोइसिएहिं वेमाणिएहिं जुत्तं समासेण॥३२६॥
दसविहभवणवईणं, भवणाणं होंति सव्वसंखाए।
कोडीओ सत्त बावत्तरीए लक्खेहिं अहियाओ॥३२७॥
ताइं पुण भवणाइं, बाहिं वट्टाइं होंति सयलाइं।
अंतो चउरंसाइं, उप्पलकन्नियनिभा हेट्ठा॥३२८॥
सव्वरयणामयाइं, अट्टालयभूसिएहिं तुंगेहिं।
जंतसयसोहिएहिं, पायारेहिं व गूढाइं॥३२९॥
गंभीरखाइयापरिगयाइं किंकरगणेहिं गुत्ताइं।
दिप्पंतरयणभासुरनिविट्ठगोउरकवाडाइं॥३३०॥
दारपडिदारतोरणचंदनकलसेहिं भूसियाइं च।
रयणविणिम्मियपुत्तलियखंभसयणासणेहिं च॥३३१॥
कलिहाइ रयणरासीहि दिप्पमाणाइ सोमकंतीहि।
सव्वत्थ विइन्नदसद्धवन्नकुसुमोवयाराइं॥३३२॥
बहुसुरहिदव्वमीसियसुयंधगोसीसरसनिसित्ताइं।
हरिचंदणबहलथबक्कदिन्नपंचंगुलितलाइं॥३३३॥
डज्झंतदिव्वकुंदुरुतुरुक्ककिण्हगुरुमघमघंताइं।
वरगंधवट्टिभूयाइं सयलकामत्थकलियाइं॥३३४॥

पुक्खरिणीसयसोहिय, उववणउज्जाणरम्मदेसेसु।
सकलत्तामरनिव्विवरविहियकीलाससहस्साइं॥३३५॥
ठाणट्ठाणारंभियगेयज्झुणिदिन्नसवणसोक्खाइं।
वज्जंतवेणुवीणामुइंगरवजणियहरिसाइं॥३३६॥
हरिसुत्तालपणच्चिरमणिवलयविहूसियऽच्छरसयाइं।
निच्चं पमुइयसुरगणसंताडियदुंदुहिरवाइं॥३३७॥
दसदिसिविणिग्गयामलरविसमहियतेयदुरवलोयाइं।
बहुपुन्नपावणिज्जाइं पुन्नजणसेवियाइं च॥३३८॥
पत्तेयं चिय मणिरयणघडियअट्ठसयपडिमकलिएणं।
जिणभवणेण पवित्तीकयाइं मणनयणसुहयाइं॥३३९॥
तह चेव संठियाइं, संखाईयाइं रयणमइयाइं।
नयराइ वंतराणं, हवंति पुव्वुत्तरूवाइं॥३४०॥
फलिहरयणामयाइं, होंति कविट्ठद्धसंठियाइं च।
तिरियमसंखेज्जाइं, जोइसियाणं विमाणाइं॥३४१॥
तेवीसाहिय सगनउइसहस्स चुलसीइसयसहस्साइं।
वेमाणियदेवाणं, होंति विमाणाइं सयलाइं॥३४२॥
संखेज्जवित्थराइं, होंति असंखेज्जवित्थराइं च।
कलियाइं रयणनिम्मियमहंतपासायपंतीहिं॥३४३॥
धयचिंधवेजयंतीपडायमालाउलाइं रम्माइं।
पउमवरवेइयाइं, नाणासंठाणकलियाइं॥३४४॥
वन्नियभवणसमिद्धीओऽणंतगुणरिद्धिसमुदयजुयाइं।
सुणमाणाण वि सुहयाइं सेवमाणाण किं भणिमो ?॥३४५॥
छउमत्थसंजमेणं, देसचरित्तेणऽकामनिज्जरया।
बालतवोकम्मेण य, जीवा वच्चंति दियलोयं॥३४६॥
सेयवियानरनाहो, सेट्ठी य धणंजओ विसालाए।
जंबूतामलिपमुहा, कमेण एत्थं उदाहरणा॥३४७॥
अन्ने वि हु खंतिपरा, सीलरया दाणविणयदयकलिया।
पयणुकसाया भुवणो, व्व भद्दया जंति सुरलोयं॥३४८॥

उप्पण्णाण य देवेसु ताण आरब्भ जम्मकालाओ।
उप्पत्तिकमो भन्नइ, जह भणिओ जिणवरिंदेहिं॥३४९॥
उववायसभा वररयणानिम्मिया जम्मठाणममराण।
तीसे मज्झे मणिपेढियाए रयणमयसयणिज्जं॥३५०॥
तत्थुववज्जइ देवो, कोमलवरदेवदूसअंतरिए।
अंतोमुहुत्तमज्झे, संपुन्नो जायए एसो॥३५१॥
अह सो उज्जोयंतो, तेएण दिसाओ पवररूवधरो।
सुत्तविउद्ध व्व खणेण उट्ठिओ नियइ पासाइं॥३५२॥
सामाणियसुरपमुहो, तत्तो सव्वो वि परियणो तस्स।
आगंतुं अभिणंदइ, जयविजएणं कयंजलिओ॥३५३॥
इंदसमा देविड्ढी, देवाणुपिएहिं पाविया एसा।
अणुभुंजंतु जहिच्छं, समुवणयं नियययपुन्नेहिं॥३५४॥
अह सो विम्हियहियओ, चिंतइ दाणं तवं च सीलं वा।
किं पुव्वभवे विहियं, मए इमा जेण सुररिद्धी ?॥३५५॥
इय उवउत्तो पेच्छइ, पुव्वभवं तो इमं विचिंतेइ।
किं एत्थ मज्झ किच्चं, पढमं ? ता परियणो भणइ॥३५६॥
अट्ठसयं पडिमाणं, सिद्धाययणे तहेव सगहाओ।
कयअभिसेया पूएह सामि ! किच्चाणिमं पढमं॥३५७॥
अह सो सयणिज्जाओ, उट्ठइ परिहेइ देवदूसजुयं।
मंगलतूररवेहिं, पढंततूरबंदिवंदेहिं॥३५८॥
हरयम्मि समागच्छइ, करेइ जलमज्जणं तओ विसइ।
अभिसेयसभाए अणुपयाहिणं पुव्वदारेणं॥३५९॥
अह आभिओगियसुरा, साहाविय तह विउव्वियं चेव।
मणिमयकलसाईयं, भिंगाराई य उवगरणं॥३६०॥
घेत्तूण जंति खीरोयहिम्मि तह पुक्खरोयजलहिम्मि।
दोसु वि गिण्हंति जलाइं तह य वरपुंडरीयाइं॥३६१॥
मागहवरदामपभासतित्थतोयाइं मट्टियं च तओ।
समयक्खेत्ते भरहाइगंगसिंधूण सरियाणं॥३६२॥

रत्तारत्तवईणं, महानईणं तओऽवराणं पि।
उभयतडमट्टियं तह, जलाइं गिण्हंति सयलाणं॥३६३॥
गंतूण चुल्लहिमवंतसिहरिपमुहेसु कुलगिरिंदेसु।
सव्वाइं तुवरओसहिसिद्धत्थयगंधमल्लाइं॥३६४॥
गिण्हंति वट्टवेयड्ढसेलसिहरेसु चउसु एमेव।
विजएसु जाइं मागहवरदामपभासतित्थाइं॥३६५॥
गिण्हंति सलिलमट्टियमंतरनइसलिलमेव उवणेंति।
वक्खारगिरीसु वणम्मि भद्दसालम्मि तुवराइं॥३६६॥
नंदणवणम्मि गोसीसचंदणं सुमणदाम सोमणसे।
पंडगवणम्मि गंधा, तुवराईणि य विमीसंति॥३६७॥
तो गंतुं सट्ठाणं, ठविउं सीहासणम्मि ते देवं।
वरकुसुमदामचंदणचच्चियपउमप्पिहाणेहिं॥३६८॥
कलसेहि ण्हवंति सुरा, केई गायंति तत्थ परितुट्ठा।
वायंति दुंदुहीओ, पढंति बंदि व्व पुण अन्ने॥३६९॥
रयणकणयाइवरिसं, अन्ने कुव्वंति सीहनायाइं।
इय महया हरिसेणं, अहिसित्तो तो समुट्ठेउं॥३७०॥
उद्धुयमुयंगदुंदुहिरवेण सुरयणसहस्सपरिवारो।
सोऽलंकारसभाए, गंतुं गिण्हइ अलंकारे॥३७१॥
गंतुं ववसायसभाए वायए रयणपोत्थयं तत्तो।
तवणिज्जमयक्खरऽमरकिच्चनयमग्गपायडणं॥३७२॥
पूओवगरणहत्थो, नंदापोक्खरिणिविहियजलसोओ।
सिद्धाययणे पूयइ, वंदइ भत्तीए जिणबिंबे॥३७३॥
गंतूण सुहम्मसभं, तत्तो अच्चइ जिणिंदसगहाओ।
सीहासणे तहिं चिय, अत्थाणे विसइ इंदो व्व॥३७४॥
इय सुहिणो सुरलोए, कयसुकया सुरवरा समुप्पन्ना।
रयणुक्कडमउडसिरा, चूडामणिमंडियसिरग्गा॥३७५॥
गंडयललिहंतमहंतकुंडला कंठनिहियवणमाला।
हारविराइयवच्छा, अंगयकेऊरकयसोहा॥३७६॥

मणिवलयकणयकंकणविचित्तआहरणभूसियकरग्गा।
मुद्दारयणंकियसयलअंगुली रयणकडिसुत्ता॥३७७॥
आसत्तमल्लदामा, कणयच्छविदेवदूसनेवत्था।
वरसुरहिगंधकयतणुविलेवणा सुरहिनिम्माया॥३७८॥
आजम्मवाहिजरदुत्थवज्जिया निरुवमाइं सोक्खाइं।
भुंजंति समं सुरसुंदरीहिं अविचलियतारुन्ना॥३७९॥
नाणासत्तीइ तुलंति मंदरं कंपयति महिवीढं।
उच्छल्लंति समुद्दा, वि कामरूवाइं कुव्वंति॥३८०॥
सच्छंदयारिणो काणणेसु कीलंति सह कलत्तेहिं।
अणुणो गुरुणो लहुणो, दिस्समदिस्सा य जायंति॥३८१॥
बत्तीसपत्तबद्धाउ विविहनाडयविहीउ पेच्छंता।
कालमसंखं पि गमंति पमुइया रयणभवणेसु॥३८२॥
इअ रिद्धिसंजुयाण वि, अमराणं नियसमिद्धिमासज्ज।
पररिद्धिं अहियं पेच्छिऊण झिज्जंति अंगाइं॥३८३॥
उन्नयपीणपयोहरनीलुप्पलनयणचंदवयणाइं।
अन्नस्स कलत्ताणि य, दट्ठूण वियंभइ विसाओ॥३८४॥
एगगुरुणो सगासे, तवमणुचिन्नं मए इमेणावि।
हद्धी मज्झ पमाओ, फलिओ एयस्स अपमाओ॥३८५॥
इय झूरिऊण बहुयं, कोइ सुरो अह महिड्ढियसुरस्स।
भज्जं रयणाणि व अवहिऊण मूढो पलाएइ॥३८६॥
तत्तो वज्जेण सिरम्मि ताडिओ विलवमाणओ दीणो।
उक्कोसेणं वियणं, अणुभुंजइ जाव छम्मासं॥३८७॥
ईसाइ दुही अन्नो, अन्नो वेरियणकोवसंतत्तो।
अन्नो मच्छरदुहिओ, नियडीए विडंबिओ अन्नो॥३८८॥
अन्नो लुद्धो गिद्धो, य मुच्छिओ रयणदारभवणेसु।
अभिओगजणियपेसत्तणेण अइदुक्खिओ अन्नो॥३८९॥
पज्जंते उण झीणम्मि आउए निव्वडंततणुकंपे।
तेयम्मि हीयमाणे, जायंते तह विवज्जासे॥३९०॥

आणं विलुंपमाणे, अणायरे सयलपरियरजणम्मि।
तं रिद्धिं पुरओ पुण, दारिद्दभरं नियंताणं॥३९१॥
रयणमयपुत्तियाओ, व सुवन्नकंतीओ तत्थ भज्जाओ।
पुरओ उण काणं कुज्जियं च असुइं च बीभत्थं॥३९२॥
तत्थ वि य दुव्विणीयं, किलेसलंभं पियं मुणंताणं।
तत्थ मणिच्छियआहारविसयवत्थाइसुहियाणं॥३९३॥
पुरओ परघरदासत्तणेण विण्णायउयरभरणाणं।
रमियाइं तत्थ रमणिज्जकप्पतरुगहणदेसेसु॥३९४॥
पुरओ गब्भे य ठिइं, दट्ठुं दुट्ठाइ रासहीए वा।
सा उप्पज्जइ अरई, सुराण जं मुणइ सव्वन्नू॥३९५॥
अज्ज वि य सरागाणं, मोहविमूढाण कम्मवसगाणं।
अन्नाणोवहयाणं, देवाण दुहम्मि का संका ?॥३९६॥
सम्मद्दिट्ठीण वि गब्भवासपमुहं दुहं धुवं चेव।
हिंडंति भवमणंतं, च केइ गोसालयसरिच्छा॥३९७॥
तम्हा देवगईए, वि जं तित्थयराणं समवसरणाई।
कीरइ वेयावच्चं, सारं मन्नामि तं चेव॥३९८॥
एत्थ य चउगइजलहिम्मि परिब्भमंतेहिं सयलजीवेहिं।
जायं मयं च सहिओ, अणंतसो दुक्खसंघाओ॥३९९॥
सो नत्थि पएसो तिहुयणम्मि तिलतुसतिभागमेत्तोऽवि।
जाओ न जत्थ जीवो, चुलसीईजोणिलक्खेसु॥४००॥
सव्वाणि सव्वलोए, अणंतखुत्तो वि रूविदव्वाइं।
देहोवक्खरपरिभोयभोयणत्तेण भुत्ताइं॥४०१॥
मयरहरो व्व जलेहिं, तह वि हु दुप्पूरओ इमो अप्पा।
विसयामिसम्मि गिद्धो, भवे भवे वच्चइ न तत्तिं॥४०२॥
इय भुत्तं विसयसुहं, दुहं च तप्पच्चयं अनंतगुणं।
इण्हिं भवदुहदलणम्मि जीव ! उज्जमसु जिणधम्मे॥४०३॥
बीयट्ठाणमुवट्ठंभहेयवो चिंतिउं सरूवं च।
को होज्ज सरीरम्मि वि, सुइवाओ मुणियतत्ताणं ?॥४०४॥

बीयं सुक्कं तह सोणियं च ठाणं तु जणणिगब्भम्मि।
ओयं तु उवट्टंभस्स कारणं तस्सरूवं तु॥४०५॥
अट्ठारस पिट्ठिकरंडयस्स संधीओ होंति देहम्मि।
बारस पंसुलियकरंडया इहं तह छ पंसुलिए॥४०६॥
होइ कडाहे सत्तंगुलाइं जीहा पलाइं पुण चउरो।
अच्छीओ दो पलाइ, सिरं च भणियं चउकवालं॥४०७॥
अद्धट्ठपलं हिययं, बत्तीसं दसणअट्ठिखंडाइं।
कालेज्जयं तु समए, पणवीस पलाइं निद्दिट्ठं॥४०८॥
अंताइ दोन्नि इहइं, पत्तेयं पंच पंच वामाओ।
सट्ठसयं संधीणं, मम्माण सयं तु सत्तहियं॥४०९॥
सट्ठसयं तु सिराणं, नाभिप्पभवाण सिरमुवगयाणं।
रसहरणिनामधिज्जाण जाणऽणुग्गहविघाएसु॥४१०॥
सुइ चक्खुघाणजीहाणऽणुग्गहो होइ तह विघाओ य।
सट्ठसयं अन्नाण वि, सिराणऽहोगामिणीण तहा॥४११॥
पायतलमुवगयाणं, जंघाबलकारिणीणीणुवग्घाए।
उवघाए सिरि वियणं, कुणंति अंधत्तणं च तहा॥४१२॥
अवराण गुदपविट्ठाण होइ सट्ठं सयं तह सिराणं।
जाण बलेण पवत्तइ, वाऊ मुत्तं पुरीसं च॥४१३॥
अरिसाउ पंडुरोगा, वेगनिरोहो य ताणमुवघाए।
तिरियगमाण सिराणं, सट्ठसयं होइ अवराणं॥४१४॥
बाहुबलकारिणीओ, उवघाए कुच्छिउयरवियणाओ।
कुव्वंति तहऽन्नाओ, पणवीसं सिंभधरणीओ॥४१५॥
तह पित्तधारिणीओ, पणवीसं दस य सुक्कधरणीओ।
इय सत्त सिरसयाइं, नाभिप्पभवाइं पुरिसस्स॥४१६॥
तीसूणाइं इत्थीण वीसहीणाइं होंति संढस्स।
नव ण्हारूण सयाइ, नव धमणीओ य देहम्मि॥४१७॥
मुत्तस्स सोणियस्स य, पत्तेयं आढयं वसाए उ।
अद्धाढयं भणंती, पत्थं मत्थुलयवत्थुस्स॥४१८॥

असुइमलपत्थछक्कं, कुलओ कुलओ य पित्तसिंभाणं।
सुक्कस्स अद्धकुलओ, दुट्ठं हीणाहियं होज्जा॥४१९॥
एक्कारस इत्थीए, नव सोयाइं तु होंति पुरिसस्स।
इय किं सुइत्तणं अट्ठिमंसमलरुहिरसंघाए ?॥४२०॥
को कायसुणयभक्खे, किमिकुलवासे य वाहिखित्ते य।
देहम्मि मच्चुविहुरे, सुसाणठाणे य पडिबंधो ?॥४२१॥
वत्थाहारविलेवणतंबोलाईणि पवरदव्वाणि।
होंति खणेण वि असुईणि देहसंबंधपत्ताणि॥४२२॥
असुहाणि वि जलकोद्दववत्थप्पमुहाणि सयलवत्थूणि।
सक्कारवसेण सुहाइ होंति कत्थइ खणद्धेणं॥४२३॥
इय खणपरियत्तंते, पोग्गलनिवहे तमेव इह वत्थुं।
मन्नामि सुइं पवरं, जं जिणधम्मम्मि उवयरइ॥४२४॥
तो मुत्तूण दुगुंछं, उम्मायकरं कयंबविप्प व्व।
देहं च बज्झवत्थुं, च कुणह उवयारयं धम्मे॥४२५॥
चउदसरज्जू उड्ढायओ इमो वित्थरेण पुण लोगो।
कत्थइ रज्जं कत्थ वि, य दोन्नि जा सत्त रज्जूओ॥४२६॥
निरयावाससुरालयअसंखदीवोदहीहिं कलियस्स।
तस्स सहावं चिंतेज्ज धम्मज्झाणत्थमुवउत्तो॥४२७॥
अहवा लोगसभावं, भावेज्ज भवंतरम्मि मरिऊण।
जणणी वि हवइ धूया, धूया वि हु गेहिणी होइ॥४२८॥
पुत्तो जणओ जणओ, वि नियसुओ बंधुणो वि होंति रिऊ।
अरिणो वि बंधुभावं, पावंति अणंतसो लोए॥४२९॥
पियपुत्तस्स वि जणणी, खायइ मंसाइं भवपरावत्ते।
जह तस्स सुकोसलमुणिवरस्स लोयम्मि कट्ठमहो॥४३०॥
केवलदुहनिम्मविए, पडिओ संसारसायरे जीवो।
जं अणुहवइ किलेसं, तं आसवहेउयं सव्वं॥४३१॥
रागद्दोसकसाया, पंच पसिद्धाइं इंदियाइं च।
हिंसालियाइयाणि य, आसवदाराइं कम्मस्स॥४३२॥

रागद्दोसाण धिरत्थु जाण विरसं फलं मुणंतो वि।
पावेसु रमइ लोओ, आउरवेज्जो व्व अहिएसु॥४३३॥
धम्मं अत्थं कामं, तिन्नि वि कुद्धो जणो परिच्चयइ।
आयरइ ताइं जेहि, य दुहिओ इह परभवे होइ॥४३४॥
पावंति जए अजसं, उम्मायं अप्पणो गुणब्भंसं।
उवहसणिज्जा य जणे, होंति अहंकारिणो जीवा॥४३५॥
जह जह वंचइ लोयं, माइल्लो कूडबहुपवंचेहिं।
तह तह संचिणइ मलं, बंधइ भवसायरं घोरं॥४३६॥
लोभेणऽवहरियमणो, हारइ कज्जं समायरइ पावं।
अइलोभेण विणस्सइ, मच्छो व्व जहा गलं गिलिउं॥४३७॥
कोहम्मि सूरविप्पो, मयम्मि आहरणमुज्झियकुमारो।
मायाइ वणियदुहिया, लोभम्मि य लोभनंदो त्ति॥४३८॥
होंति पमत्तस्स विणासगाणि पंचिंदियाणि पुरिसस्स।
उरगा इव उग्गविसा, गहिया मंतोसहीहिं विणा॥४३९॥
सोयपमुहाण ताण य दिट्ठंता पंचिमे जहासंखं।
रायसुयसेट्ठितणओ गंधमहुप्पियमहिंदा य॥४४०॥
हिंसालियपमुहेहिं, य आसवदारेहिं कम्ममासवइ।
नाव व्व जलहिमज्झे, जलनिवहं विविहछिड्डेहिं॥४४१॥
ललियंग-धणायर-वज्जसार-वणिउत्त-सुंदरप्पमुहा।
दिट्ठंता इत्थं पि हु, कमेण विबुहेहिं नायव्वा॥४४२॥
जो सम्मं भूयाइं, पेच्छइ भूएसु अप्पभूओ य।
कम्ममलेण न लिप्पइ, सो संवरियासवदुवारो॥४४३॥
हिंसाइ इंदियाइं, कसायजोगा य भुवणवेरीणि।
कम्मासवदाराइं, रुंभसु जइ सिवसुहं महसि॥४४४॥
निग्गहिएहि कसाएहिं आसवा मूलओ निरुब्भंति।
अहियाहारे मुक्के, रोगा इव आउरजणस्स॥४४५॥
रुंभंति ते वि तवपसमझाणसन्नाणचरणकरणेहिं।
अइबलिणो वि कसाया, कसिणभुयंग व्व मंतेहिं॥४४६॥

गुणकारयाइ धणियं, धिइरज्जुनियंतियाइं तुह जीव !।
नियया इंदियाइं, वल्लिनिउत्ता तुरंग व्व॥४४७॥
मणवयणकायजोगा, सुनियत्ता ते वि गुणकरा होंति।
अनिउत्ता उण भंजंति मत्तकरिणो व्व सीलवणं॥४४८॥
जह जह दोसोवरमो, जह जह विसएसु होइ वेरग्गं।
तह तह विन्नायव्वं, आसन्नं से य परमपयं॥४४९॥
एत्थ य विजयनरिंदो, चिलायपुत्तो य तक्खणं चेव।
संवरियासवदारत्तणम्मि जाणेज्ज दिट्ठंता॥४५०॥
कणगावलि-रयणावलि-मुत्तावलि-सीहकीलियप्पमुहो।
होइ तवो निज्जरणं, चिरसंचियपावकम्माणं॥४५१॥
जह जह दढप्पइन्नो, वेरग्गगओ तवं कुणइ जीवो।
तह तह असुहं कम्मं, झिज्जइ सीयं व सूरहयं॥४५२॥
नाणपवणेण सहिओ, सीलुज्जलिओ तवोमओ अग्गी।
दवहुयवहो व्व संसारविडविमूलाइं निद्दहइ॥४५३॥
दासोऽहं भिच्चोऽहं, पणओऽहं ताण साहुसुहडाणं।
तवतिक्खखग्गदंडेण सूडियं जेहि मोहबलं॥४५४॥
मइलम्मि जीवभवणे, विइन्ननिब्भिच्चसंजमकवाडे।
दाउं नाणपईवं, तवेण अवणेसु कम्ममलं॥४५५॥
तवहुयवहम्मि खिविऊण जेहि कणगं व सोहिओ अप्पा।
ते अइमुत्तयकुरुदत्तपमुहमुणिणो नमंसामि॥४५६॥
धन्ना कलत्तनियलाइ भंजिउं पवरसत्तसंजुत्ता।
वारीओ व्व गयवरा, घरवासाओ विणिक्खंता॥४५७॥
धन्ना घरचारयबंधणाओ मुक्का चरंति निस्संगा।
जिणदेसियं चरित्तं, सहावसुद्धेण भावेणं॥४५८॥
धन्ना जिणवयणाइं, सुणंति धन्ना कुणंति निसुयाइं।
धन्ना पारद्धं ववसिऊण मुणिणो गया सिद्धिं॥४५९॥
दुक्करमेएहि कयं, जेहि समत्थेहि जोव्वणत्थेहिं।
भग्गं इंदियसेन्नं, धिइपायारं विलग्गेहिं॥४६०॥

जम्मं पि ताण थुणिमो, हिमं व विप्फुरियझाणजलणम्मि।
तारुण्णभरे मयणो, जाण सरीरम्मि वि विलीणो॥४६१॥
जे पत्ता लीलाए, कसायमयरालयस्स परतीरं।
ताण सिवरयणदीवंगमाण भद्दं मुणिंदाणं॥४६२॥
पणमामि ताण पयपंकयाइं धणखंदपमुहसाहूणं।
मोहसुहडाहिमाणो, लीलाए नियत्तिओ जेहिं॥४६३॥
इय एवमाइउत्तमगुणरयणाहरणभूसियंगाणं।
धीरपुरिसाण नमिमो, तियलोयनमंसणिज्जाणं॥४६४॥
भवरन्नम्मि अणंते, कुमग्गसयभोलिएण कहकह वि।
जिणसासणसुगइपहो, पुन्नेहिं मए समणुपत्तो॥४६५॥
आसन्ने परमपए, पावेयव्वम्मि सयलकल्लाणे।
जीवो जिणिंदभणियं, पडिवज्जइ भावओ धम्मं॥४६६॥
मणुयत्तखित्तमाईहि विविहहेऊहिं लब्भए सो य।
समए य अइदुलंभं, भणियं मणुयत्तणाईयं॥४६७॥
माणुस्सखेत्त जाई, कुलरूवारोग्ग आउयं बुद्धी।
सवणोवग्गह सद्धा, संजमो य लोयम्मि दुलहाइं॥४६८॥
अवरदिसाए जलहिस्स कोइ देवो खिवेज्ज किर समिलं।
पुव्वदिसाए उ जुगं, तो दुलहो ताण संजोगो॥४६९॥
अवि जलहिमहाकल्लोलपेल्लिया सा लभेज्ज जुगछिड्डं।
मणुयत्तणं तु दुलहं, पुणो वि जीवाणऽउन्नाणं॥४७०॥
खित्ताईणि वि एवं, दुलहाइं वण्णियाइं समयम्मि।
ताइं पि हु(पडि) लद्धूणं, पमाइयं जेण(हिं) जिणधम्मे॥४७१॥
सो झूरइ मच्चुजरावाहिमहापावसेन्नपडिरुद्धो।
तायारमपेच्छंतो, नियकम्मविडंबिओ जीवो॥४७२॥
आलस्समोहऽवन्ना, थंभा कोहा पमायकिविणत्ता।
भयसोगा अन्नाणा, वक्खेव कुऊहला रमणा॥४७३॥
एएहि कारणेहिं, लद्धूण सुदुल्लहं पि मणुयत्तं।
न लहइ सुइं हियकरिं, संसारुत्तारणिं जीवो॥४७४॥

दुलहो च्चिय जिणधम्मो, पत्ते मणुयत्तणाइभावे वि।
कुपहबहुयत्तणेणं, विसयसुहाणं च लोहेणं॥४७५॥
जस्स बहिं बहुयजणो, लद्धो न तए वि जो बहुं कालं।
लद्धम्मि जीव ! तम्मि वि, जिणधम्मे किं पमाएसि ?॥४७६॥
उवलद्धो जिणधम्मो, न य अणुचिन्नो पमायदोसेणं।
हा जीव ! अप्पवेरिअ !, सुबहुं पुरओ विसूरिहिसि॥४७७॥
दुलओ पुणरवि धम्मो, तुमं पमायाउरो सुहेसी य।
दुसहं च नरयदुक्खं, किं होहिसि ? तं न याणामो॥४७८॥
लद्धम्मि वि जिणधम्मे, जेहिं पमाओ कओ सुहेसीहिं।
पत्तो वि हु पडिपुन्नो, रयणनिही हारिओ तेहिं॥४७९॥
जस्स य कुसुमोग्गमुच्चिय, सुरनररिद्धी फलं तु सिद्धिसुहं।
तं चिय जिणधम्मतरुं, सिंचसु सुहभावसलिलेहिं॥४८०॥
जिणधम्मं कुव्वंतो, जं मन्नसि दुक्करं अणुट्ठाणं।
तं ओसहं व परिणामसुंदरं मुणसु सुहहेउं॥४८१॥
इच्छंतो रिद्धीओ, धम्मफलाओ वि कुणसि पावाइं।
कवलेसि कालकूडं, मूढो चिरजीवियत्थी वि॥४८२॥
भवभमणपरिस्संतो, जिणधम्ममहातरुम्मि वीसमिओ।
मा जीव ! तम्मि वि तुमं, पमायवणहुयवहं देसु॥४८३॥
अणवरयभवमहापहपयट्टपहिएहिं धम्मसंबलयं।
जेहि न गहियं ते पाविहिंति दीणत्तणं पुरओ॥४८४॥
जिणधम्मरिद्धिरहिओ, रंक्को च्चिय नूण चक्कवट्टी वि।
तस्स वि जेण न अन्नो, सरणं नरए पडंतस्स॥४८५॥
धम्मफलमणुहवंतो, वि बुद्धिजसरूवरिद्धिमाईयं।
तं पि हु न कुणइ धम्मं, अहह कहं सो न मूढप्पा ?॥४८६॥
जेण चिय जिणधम्मेण, गमिओ रंको वि रज्जसंपत्तिं।
तम्मि वि जस्स अवन्ना, सो भन्नइ किं कुलीणो त्ति ?॥४८७॥
जिणधम्मसत्थवाहो, न सहाओ जाण भवमहारन्ने।
किह विसयभोलियाणं, निव्वुइपुरसंगमो ताणं ?॥४८८॥

नियमणोरहपायवफलाइं जइ जीव ! वंछसि सुहाइं।
तो तं चिय परिसिंचसु, निच्चं सद्धम्मसलिलेहिं॥४८९॥
जइ धम्मामयपाणं, मुहाए पावेसि साहुमूलम्मि।
ता दविणेण किणेउं, विसयविसं जीव ! किं पियसि ?॥४९०॥
अन्नन्नसुहसमागमचिंतासयदुत्थिओ सयं कीस ?।
कुण धम्मं जेण सुहं, सोच्चियं चिंतेइ तुह सव्वं॥४९१॥
संपज्जंति सुहाइं, जइ धम्मविवज्जियाण वि नराणं।
ता होज्ज तिहुयणम्मि वि, कस्स दुहं ? कस्स व न सोक्खं॥४९२॥
जह कागिणीइ हेउं, कोडिं रयणाण हारए कोई।
तह तुच्छविसयगिद्धा, जीवा हारंति सिद्धिसुहं॥४९३॥
धम्मो न कओ साउं, न जेमियं नेय परिहियं सण्हं।
आसाए विनडिएहि, हा ! दुलओ हारिओ जम्मो॥४९४॥
नाणस्स केवलीणं, धम्मायरियस्स संघसाहूणं।
गिण्हंतेण अवण्णं, मूढेणं नासिओ अप्पा॥४९५॥
सोयंति ते वराया, पच्छा समुवट्ठियम्मि मरणम्मि।
पावपमायवसेहिं, न संचिओ जेहिं जिणधम्मो॥४९६॥
लद्धुं पि दुलहधम्मं, सुहेसिणा इह पमाइयं जेण।
सो भिन्नपोयसंजत्तिओ व्व भमिही भवसमुद्दे॥४९७॥
गहियं जेहि चरित्तं, जलं व तिसिएहि गिम्हपहिएहिं।
कयसोग्गइपत्थयणा, ते मरणंते न सोयंति॥४९८॥
को जाणइ पुणरुत्तं, होही कइया वि धम्मसामग्गी ?।
रंक व्व धणं कुणह महव्वयाण इण्हिं पि पत्ताणं॥४९९॥
अलमित्थ वित्थरेणं, कुरु धम्मं जेण वंछियसुहाइं।
पावेसि पुराहिवनंदणो व्व धूया व नरवइणो॥५००॥
इय भावणाहि सम्मं, णाणी जिणवयणबद्धमइलक्खो।
जलणो व्व पवणसहिओ, समूलजालं दहइ कम्मं॥५०१॥
नाणे आउत्ताणं, नाणीणं नाणजोगजुत्ताणं।
को निज्जरं तुलेज्जा, चरणम्मि परक्कमंताणं ?॥५०२॥

नाणेणं चिय नज्जइ, करणिज्जं तह य वज्जणिज्जं च।
नाणी जाणइ काउं, कज्जमकज्जं च वज्जेउं ॥५०३॥
जसकित्तिकरं नाणं, गुणसयसंपायगं जए नाणं।
आणा वि जिणाणेसा, पढमं नाणं तओ चरणं॥५०४॥
ते पुज्जा तियलोए, सव्वत्थ वि जाण निम्मलं नाणं।
पुज्जाण वि पुज्जयरा, नाणी य चरित्तजुत्ता य॥५०५॥
भद्दं बहुस्सुयाणं, बहुजणसंदेहपुच्छणिज्जाणं।
उज्जोइयभुवणाणं, झीणम्मि वि केवलमयंके॥५०६॥
जेसिं च फुरइ नाणं, ममत्तनेहाणुबंधभावेहिं।
वाहिज्जंति न कहमवि, मणम्मि एवं विभावेंता॥५०७॥
जरमरणसमं न भयं, न दुहं नरगाइजम्मओ अन्नं।
तो जम्ममरणजरमूलकारणं छिंदसु ममत्तं॥५०८॥
जावइयं किं पि दुहं, सारीरं माणसं च संसारे।
पत्तं अणंतसो विहवाइममत्तदोसेणं॥५०९॥
कुणसि ममत्तं धणसयणविहवपमुहेसुऽणंतदुक्खेसु।
सिढिलेसि आयरं पुण, अणंतसोक्खम्मि मोक्खम्मि॥५१०॥
संसारो दुहहेऊ, दुक्खफलो दुसहदुक्खरूवो य।
नेहनियलेहि बद्धा, न चयंति तहा वि तं जीवा॥५११॥
जह न तरइ आरुहिउं, पंके खुत्तो करी थलं कह वि।
तह नेहपंकखुत्तो, जीवो नारुहइ धम्मथलं॥५१२॥
छिज्जं सोसं मलणं, बंधं निप्पीलणं च लोयम्मि।
जीवा तिला य पेच्छह, पावंति सिणेहसंबद्धा॥५१३॥
दूरुज्झियमज्जाया, धम्मविरुद्धं च जणविरुद्धं च।
किमकज्जं जं जीवा, न कुणंति सिणेहपडिबद्धा ?॥५१४॥
थेवो वि जाव नेहो, जीवाणं ताव निव्वुई कत्तो ?।
नेहक्खयम्मि पावइ, पेच्छ पईवो वि निव्वाणं॥५१५॥
इय धीराण ममत्तं, नेहो य नियत्तए सुयाईसु।
रोगाइआवईसु य, इय भावंताण न विमोहो॥५१६॥

नरतिरिएसु गयाइं, पलिओवमसागराइंऽणंताइं।
किं पुण सुहावसाणं, तुच्छमिणं माणसं दुक्खं ?॥५१७॥
सकयाइं च दुहाइं, सहसु उइन्नाइं नियसमयम्मि।
न हु जीवोऽवि अजीवो, कयपुव्वो वेयणाईहिं॥५१८॥
तिव्वा रोगायंका, सहिया जह चक्किणा चउत्थेणं।
तह जीव ! ते तुमं पि हु, सहसु सुहं लहसि जमणंतं॥५१९॥
जे केइ जए ठाणा, उईरणाकारणं कसायाणं।
ते सयमवि वज्जंता, सुहिणो धीरा चरंति महिं॥५२०॥
हियनिस्सेयसकरणं, कल्लाणसुहावहं भवतरंडं।
सेवंति गुरुं धन्ना, इच्छंता नाणचरणाइं॥५२१॥
मुहकडुयाइं अंते, सुहाइं गुरुभासियाइं सीसेहिं।
सहियव्वाइं सया वि हु, आयहियं मग्गमाणेहिं॥५२२॥
इय भाविऊण विणयं, कुणंति इह परभवे य सुहजणयं।
जेण कएणऽन्नो वि हु, भूसिज्जइ गुणगुणो सयलो॥५२३॥
एवं कए य पुव्वुत्तझाणजलणेण कम्मवणगहणं।
दहिऊण जंति सिद्धिं, अजरं अमरं अणंतसुहं॥५२४॥
हेमंतमयणचंदणदणुसूररिणाइवन्ननामेहिं।
सिरिअभयसूरिसीसेहि, रइयं भवभावणं एयं॥५२५॥
जो पढइ सुत्तओ सुणइ अत्थओ भावए य अणुसमयं।
सो भवनिव्वेयगओ, पडिवज्जइ परमपयमग्गं॥५२६॥
न य बाहिज्जइ हरिसेहि नेय विसमावईविसाएहिं।
भावियचित्तो एयाए चिट्ठए अमयसित्तो व्व॥५२७॥
उवयारो य इमीए, संसारासुइकिमीण जंतूणं।
जायइ न अहव सव्वण्णुणो वि को तेसु अवयासो ?॥५२८॥
तो अणभिनिविट्ठाणं, अत्थीणं किं पि भावियमईणं।
जंतूण पगरणमिणं, जायइ भवजलहिबोहित्थं॥५२९॥
इगतीसाहियपंचहि, सएहिं गाहाविचित्तरयणेहिं।
सुत्ताणुगया वररयणमालिया निम्मिया एसा॥५३०॥
भुवणम्मि जाव वियरइ, जिणधम्मो ताव भव्वजीवाणं।
भवभावणवररयणावलीइ कीरउ अलंकारो॥५३१॥

परिशिष्ट २

मूलगाथार्धाकारादिक्रमः

अंगारसूरिपमुहा, लहंति करहत्तणं बहुसो।	२०१ उ.
अंगुलअसंखभागो, तेसि सरीरं तहिं हवइ पढमं।	९३ पू.
अंतब्भवंति ताओ, एयासु वि ताओ पुण एवं।	३१५ उ.
अंताइ दोन्नि इहइं, पत्तेयं पंच पंच वामाओ।	४०९ पू.
अंतो चउरंसाइं, उप्पलकन्नियनिभा हेट्ठा।	३२८ उ.
अंतोमुहुत्तमज्झे, संपुन्नो जायए एसो।	३५१ उ.
अंतोमुहुत्तमेत्तेण जायए तं पि हु महल्लं।	९३ उ.
अंबाईणऽसुराणं, एत्तो साहेमि वावारं।	१०२ उ.
अंबे अंबरिसी चेव सामे य सबले त्ति य।	९७ पू.
अइकढिणवज्जकुड्डा, होंति समंतेण तेसु नरएसु।	९० पू.
अइकरुणं कंदंता, पप्पडपिट्ठं व कीरंति।	१५६ उ.
अइदुसहं दुक्खमिणं, पसियह मा कुणह एत्ताहे।	१२३ उ.
अइबलिणो वि कसाया, कसिणभुयंग व्व मंतेहिं।	४४६ उ.
अइरत्तो वि य तासिं, मारसि भत्तारपमुहे य।	१३५ उ.
अइलोभेण विणस्सइ, मच्छो व्व जहा गलं गिलिउं।	४३७ उ.
अइविस्सरं रसंतो, जोणीजंताओ कह वि णिप्फिडइ।	२७३ पू.
अकयं को परिभुंजइ ?, सकयं नासेज्ज कस्स किर कम्मं ?।	१७१ पू.
अगणिवरिसं कुणंते, मेहे वेउव्वियम्मि नेरइया।	१५५ पू.
अगणी खोट्टणचूरणजलाइसत्थेहिं दुत्थियसरीरो।	१८१ पू.
अच्छिनिमीलणमेत्तं, नत्थि सुहं दुक्खमेव अणुबद्धं।	१६७ पू.
अच्छी खुड्डंति सिरं, हणंति चुंटंति मंसाइं।	१५४ उ.
अच्छीओ दो पलाइ, सिरं च भणियं चउकवालं।	४०७ उ.
अज्ज घरे नत्थि घयं, तेल्लं लोणं वा इंधणं वत्थं।	३०२ पू.
अज्ज वि य सरागाणं, मोहविमूढाण कम्मवसगाणं।	३९६ पू.
अट्टवसट्टोवगमेण देहघरसयणचिंताहिं।	२४८ उ.
अट्ठसयं पडिमाणं, सिद्धाययणे तहेव सगहाओ।	३५७ पू.

अट्ठारस पिट्ठिकरंडयस्स संधीओ होंति देहम्मि।	४०६ पू.
अणवरयभवमहापहपयट्टपहिएहिं धम्मसंबलयं।	४८४ पू.
अणवेक्खियसामत्था, भरम्मि वसहाइणो जुत्ता।	१९२ उ.
अणुणो गुरुणो लहुणो, दिस्समदिस्सा य जायंति।	३८१ उ.
अणुभुंजंतु जहिच्छं, समुवणयं नियययपुन्नेहिं।	३५४ उ.
अणुसोयइ अन्नजणं, अन्नभवंतरगयं च बालजणो।	६० पू.
अत्थेण नंदराया, न रक्खिओ गोहणेण कुइअन्नो।	५३ पू.
अद्धाढयं भणंती, पत्थं मत्थुलयवत्थुस्स।	४१८ उ.
अद्धुट्ठपलं हिययं, बत्तीसं दसणअट्ठिखंडाइं।	४०८ पू.
अद्धुट्ठा कोडीओ, समं पुणो केसमंसूहिं।	२५९ उ.
अनिउत्ता उण भंजंति मत्तकरिणो व्व सीलवणं।	४४८ उ.
अन्नं इमं कुडुंबं, अन्ना लच्छी सरीरमवि अन्नं।	७० पू.
अन्नन्नसुहसमागमचिंतासयदुत्थिओ सयं कीस ?।	४९१ पू.
अन्नस्स कलत्ताणि य, दट्ठूण वियंभइ विसाओ।	३८४ उ.
अन्नाइ वि कुंटलविंटलाइं भूओवघायजणगाइ।	५० पू.
अन्नाणोवहयाणं, देवाण दुहम्मि का संका ?।	३९६ उ.
अन्ने अवरोप्परकलहभावओ तह य कोवकरणेणं।	१७६ पू.
अन्ने उण संजुत्ता, रत्तुप्पलपत्तकोमलतलेहिं।	२८७ पू.
अन्ने उण सव्वंगं, गसिया जररक्खसीइ जायंति।	२९७ पू.
अन्ने वि हु खंतिपरा, सीलरया दाणविणयदयकलिया।	३४८ पू.
अन्नो मच्छरदुहिओ, नियडीए विडंबिओ अन्नो।	३८८ उ.
अन्नो लुद्धो गिद्धो, य मुच्छिओ रयणदारभवणेसु।	३८९ पू.
अन्नो वज्जग्गिचियासु खिप्पए विरसमारसंतो वि।	१०२ पू.
अन्नोऽन्नगसणताडणभारुव्वहणाइसंतविया।	१८९ उ.
अन्नोऽन्नगसणवावारनिरयअइकूरजलयरारद्धो।	२३२ पू.
अन्नोऽन्नदिसिं सव्वे, वयंति तह चेव संसारे।	१३ उ.
अप्फालिज्जइ अन्नो, वज्जसिलाकंटयसमूहे।	१०१ उ.
अब्बुया जायए पेसी, पेसीओ य घणं भवे।	२५५ उ.
अभिओगजणियपेसत्तणेण अइदुक्खिओ अन्नो।	३८९ उ.

अभिसेयसभाए अणुपयाहिणं पुव्वदारेणं।	३५९ उ.
अरिणो वि बंधुभावं, पावंति अणंतसो लोए।	४२९ उ.
अरिसाउ पंडुरोगा, वेगनिरोहो य ताणमुवघाए।	४१४ पू.
अलमित्थ वित्थरेणं, कुरु धम्मं जेण वंछियसुहाइं।	५०० पू.
अलिएहि वंचसि तया कूडक्कयमाइएहि मुद्धजणं।	१३१ पू.
अवरदिसाए जलहिस्स कोइ देवो खिवेज्ज किर समिलं।	४६९ पू.
अवराण गुदपविट्ठाण होइ सट्ठं सयं तह सिराणं।	४१३ पू.
अवराहेसु गुणेसु य, निमित्तमेत्तं परो होइ।	१६९ उ.
अवरोप्परं पि घायंति नारया पहरणाईहिं।	१६३ उ.
अवि जलहिमहाकल्लोलपेल्लिया सा लभेज्ज जुगछिड्डं।	४७० पू.
असि पत्तेधणू कुंभे वालू वेयरणि त्ति य।	९८ पू.
असुइमलपत्थछक्कं, कुलओ कुलओ य पित्तसिंभाणं।	४१९ पू.
असुइम्मि किमि व्व ठिओ, सि जीव ! गब्भम्मि निरयसमे।	२६९ उ.
असुई निच्चपइट्ठियपूयवसामंसरुहिरचिक्खिल्ला।	८६ पू.
असुईउ अणंतगुणे, असुहाइं खिवंति वयणम्मि।	१६१ उ.
असुहाणि वि जलकोद्दववत्थप्पमुहाणि सयलवत्थूणि।	४२३ पू.
अह अन्नदिणे पलियच्छलेण होऊण कण्णमूलम्मि।	३४ पू.
अह आभिओगियसुरा, साहाविय तह विउव्वियं चेव।	३६० पू.
अह सो उज्जोयंतो, तेएण दिसाओ पवररूवधरो।	३५२ पू.
अह सो विम्हियहियओ, चिंतइ दाणं तवं च सीलं वा।	३५५ पू.
अह सो सयणिज्जाओ, उट्ठइ परिहेइ देवदूसजुयं।	३५८ पू.
अहवा गावीओ वणम्मि एगओ गोवसन्निहाणम्मि।	७९ पू.
अहवा जह सुमिणयपावियम्मि रज्जाइइट्ठवत्थुम्मि।	१५ पू.
अहवा लोगसभावं, भावेज्ज भवंतरम्मि मरिऊण।	४२८ पू.
अहवा वि खाह पियह य, दिट्ठो सो केण परलोओ ?।	१२६ उ.
अहियाहारे मुक्के, रोगा इव आउरजणस्स।	४४५ उ.
आगंतुं अभिणंदइ, जयविजएणं कयंजलिओ।	३५३ उ.
आजम्मवाहिजरदुत्थवज्जिया निरुवमाइं सोक्खाइं।	३७९ पू.
आणं विलुंपमाणे, अणायरे सयलपरियरजणम्मि।	३९१ पू.

आणा वि जिणाणेसा, पढमं नाणं तओ चरणं।	५०४ उ.
आयरइ ताइं जेहि, य दुहिओ इह परभवे होइ।	४३४ उ.
आरंभपरिग्गहवज्जियाण निव्वहइ अम्ह न कुडुंबं।	१३९ पू.
आरंभेहि य अघलो, नरयगईए उदाहरणा।	१७७ उ.
आरंभेहि य तूससि, रूससि किं एत्थ दुक्खेहिं ?।	१३८ उ.
आराइएहि विंधंति मोग्गराईहिं तह निसुंभंति।	१०३ पू.
आराकसाइघाएहिं ताडिया तडतड त्ति फुट्टंति।	१९२ पू.
आरोवंति तहिं पिहु, तत्ताए लोहनावाए।	११७ उ.
आलस्समोहऽवन्ना, थंभा कोहा पमायकिविणत्ता।	४७३ पू.
आसत्तमल्लदामा, कणयच्छविदेवदूसनेवत्था।	३७८ पू.
आसन्ने परमपए, पावेयव्वम्मि सयलकल्लाणे।	४६६ पू.
आसाए विनडिएहि, हा ! दुलओ हारिओ जम्मो।	४९४ उ.
आसि इहं ताणं पि हु, विवागमेयं पयासंति।	१५८ उ.
आहेडयचेट्ठाओ, संभारेउं बहुप्पयाराओ।	१५० पू.
इंदसमा देविड्ढी, देवाणुपिएहिं पाविया एसा।	३५४ पू.
इअ रिद्धिसंजुयाण वि, अमराणं नियसमिद्धिमासज्ज।	३८३ पू.
इगतीसाहियपंचहि, सएहिं गाहाविचित्तरयणेहिं।	५३० पू.
इच्चाइ पुव्वभवदुक्कयाइं सुमराविउं निरयपाला।	१४६ पू.
इच्चाइ भणसि तइया, वायालत्तेण परितुट्ठो।	१२७ उ.
इच्चाइ महाचिंताजरगहिया निच्चमेव य दरिद्दा।	३०८ पू.
इच्छंता वि हु न मरंति कह वि हु ते नारयवराया।	१२२ उ.
इच्छंतो रिद्धीओ, धम्मफलाओ वि कुणसि पावाइं।	४८२ पू.
इट्ठकुडुंबस्स कए, करइ नाणाविहाइं पावाइं।	६४ पू.
इट्ठेहि य संजोगो, असासयं जीवियव्वं च।	२४ उ.
इण्हिं तु तत्ततंबयढिउल्लियाणं पलाएसि।	१३६ उ.
इण्हिं पुण पोक्कारसि, अइदुसहं दुक्खमेयंति।	१३० उ.
इण्हिं भवदुहदलणम्मि जीव ! उज्जमसु जिणधम्मे।	४०३ उ.
इय अन्नत्तं परिचिंतिऊण घरघरणिसयणपडिबंधं।	८१ पू.
इय असमंजसचेट्ठियअन्नाणऽविवेयकुलहरं गमियं।	२८० पू.

इय उवउत्तो पेच्छइ, पुव्वभवं तो इमं विचिंतेइ।	३५६ पू.
इय एक्को च्चिय अप्पा, जाणिज्जसु सासओ तिहुयणे वि।	६९ पू.
इय एवमाइउत्तमगुणरयणाहरणभूसियंगाणं।	४६४ पू.
इय कम्मपासबद्धा, विविहट्ठाणेहिं आगया जीवा।	८० पू.
इय किं सुइत्तणं अट्ठिमंसमलरुहिरसंघाए ?।	४२० उ.
इय कोइ पावकारी, बारस संवच्छराइं गब्भम्मि।	२७० पू.
इय खणपरियत्तंते, पोग्गलनिवहे तमेव इह वत्थुं।	४२४ पू.
इय गुणनिहिणो होउं, पढमेच्चिय जोव्वणारंभे।	२९५ उ.
इय चउपासो बद्धो, गब्भे संवसइ दुक्खिओ जीवो।	२६७ पू.
इय चिंताए बहुवेयणाहिं खविऊण असुहकम्माइं।	१७५ पू.
इय जं जं संसारे, रमणिज्जं जाणिऊण तमणिच्चं।	२५ पू.
इय जंपंता वावल्लभल्लिसेल्लेहिं खग्गकुंतेहिं।	१०० पू.
इय जइ नियहत्थारोवियस्स तस्सेव पावविडविस्स।	१४५ पू.
इय झूरिऊण बहुयं, कोइ सुरो अह महिड्ढियसुरस्स।	३८६ पू.
इय तिरियमसंखेसुं, दीवसमुद्देसु उड्ढमहलोए।	२४३ पू.
इय धीराण ममत्तं, नेहो य नियत्तए सुयाईसु।	५१६ पू.
इय नाऊण असरणं, अप्पाणं गयउराहिवसुओ व्व।	५४ पू.
इय भणिउं तस्सेव य, मंसरसं गिण्हिउं देंति।	१४८ उ.
इय भणियं जस्स कए, आणसु तं दुहविभागत्थं।	१३९ उ.
इय भावणाहि सम्मं, णाणी जिणवयणबद्धमइलक्खो।	५०१ पू.
इय भाविऊण विणयं, कुणंति इह परभवे य सुहजणयं।	५२३ पू.
इय भिन्नसहावत्ते, का मुच्छा तुज्झ विहवसयणेसु ?।	७४ पू.
इय भुत्तं विसयसुहं, दुहं च तप्पच्चयं अनंतगुणं।	४०३ पू.
इय महया हरिसेणं, अहिसित्तो तो समुट्ठेउं।	३७० उ.
इय विहवणयपराण वि, तारुण्णं पि हु विडंबणट्ठाणं।	२९८ पू.
इय विहवीण दरिद्दाण वा वि तरुणत्तणे वि किं सोक्खं ?।	३०९ पू.
इय सत्त सिरसयाइं, नाभिप्पभवाइं पुरिसस्स।	४१६ उ.
इय सुहिणो सुरलोए, कयसुकया सुरवरा समुप्पन्ना।	३७५ पू.
इह तत्ततेलतंबयतऊणि किं पियसि न ? हयास !।	१४१ उ.

ईसाइ दुही अन्नो, अन्नो वेरियणकोवसंतत्तो।	३८८ पू.
उक्कत्तिऊण देहाउ ताण मंसाइं चडफडंताण।	१४७ पू.
उक्कोया मह घरिणी, समागया पाहुणा बहू अज्ज।	३०४ पू.
उक्कोसं नवलक्खा, जीवा जायंति एगगब्भम्मि।	२६२ पू.
उक्कोसेण नवण्हं, सयाण जायइ सुओ एक्को।	२६२ उ.
उक्कोसेणं चिट्ठइ, असुइप्पभवे असुइयम्मि।	२७० उ.
उक्कोसेणं वियणं, अणुभुंजइ जाव छम्मासं।	३८७ उ.
उच्छल्लंति समुद्दा, वि कामरूवाइं कुव्वंति।	३८० उ.
उज्जोइयभुवणाणं, झीणम्मि वि केवलमयंके।	५०६ उ.
उज्झं मुंचइ पोक्करइ, तहा वि वाहिज्जए करहो।	१९८ उ.
उद्धुयमुयंगदुंदुहिरवेण सुरयणसहस्सपरिवारो।	३७१ पू.
उन्नयपीणपयोहरनीलुप्पलनयणचंदवयणाइं।	३८४ पू.
उप्पज्जंति धणप्पियवणिउव्वेगिंदिएसु बहुं।	१८५ उ.
उप्पण्णाण य देवेसु ताण आरब्भ जम्मकालाओ।	३४९ पू.
उप्पण्णो तिरिएसुं. महिसतुरंगाइजाईसु।	६३ उ.
उप्पत्तिकमो भन्नइ, जह भणिओ जिणवरिंदेहिं।	३४९ उ.
उप्पन्नस्स पिउस्स वि, भवपरियत्तीइ सूयरत्तेण।	२२२ पू.
उप्पाडिऊण संदंसएण दसणे य जीहं च।	१६० उ.
उभयंतरम्मि वसिओ, नपुंसओ जायए जीवो।	२७५ उ.
उभयतडमट्टियं तह, जलाइं गिण्हंति सयलाणं।	३६३ उ.
उम्मग्गदेसणाए, सया वि केलीकिलत्तेण।	१८७ उ.
उयरे उंटकरंकं, पट्ठीए भरो गलम्मि कूवो य।	१९८ पू.
उरगा इव उग्गविसा, गहिया मंतोसहीहिं विणा।	४३९ उ.
उल्लंबिऊण उप्पिं, अहोमुहे हेट्ठ जलियजलणम्मि।	१५२ पू.
उल्लसइ भमइ कुक्कुयइ कीलइ जंपइ बहुं असंबद्धं।	२७९ पू.
उल्लूरणउम्मूलणदहणेहि य दुक्खिया तरुणो।	१८२ उ.
उवघाए सिरि वियणं, कुणंति अंधत्तणं च तहा।	४१२ उ.
उवयारो य इमीए, संसारासुइकिमीण जंतूणं।	५२८ पू.
उवरिट्ठियं कुडुंबं, तं पि सकज्जेक्कतल्लिच्छं।	५१ उ.

उवलद्धो जिणधम्मो, न य अणुचिन्नो पमायदोसेणं।	४७७ पू.
उववायसभा वररयणानिम्मिया जम्मठाणममराण।	३५० पू.
उवहसणिज्जा य जणे, होंति अहंकारिणो जीवा।	४३५ उ.
ऊरणयछगलगाई, निराउहा नाहवज्जिया दीणा।	२०६ पू.
एए य निरयपाला, धावंति समंतओ य कलयलंता।	९९ पू.
एएहि कारणेहिं, लद्धूण सुदुल्लहं पि मणुयत्तं।	४७४ पू.
एको च्चिय पुण भारं, वहेइ ताडिज्जए कसाईहिं।	६३ पू.
एक्कस्स जम्ममरणे, परभवगमणं च एक्कस्स।	५५ उ.
एक्कारस इत्थीए, नव सोयाइं तु होंति पुरिसस्स।	४२० पू.
एक्केक्को य निगोदो, अणंतजीवो मुणेयव्वो।	१८३ उ.
एक्को कम्माइं समज्जिणेइ भुंजइ फलं पि तस्सेक्को।	५५ पू.
एक्को पावइ जम्मं, वाहिं वुड्ढत्तणं च मरणं च।	६८ पू.
एक्को भवंतरेसुं, वच्चइ को कस्स किर बीओ ?।	६८ उ.
एक्को वच्चइ जीवो, मोत्तुं विहवं च देहं च।	६७ उ.
एगगुरुणो सगासे, तवमणुचिन्नं मए इमेणावि।	३८५ पू.
एगयओ सहवासो, पीई पणओ वि य अणिच्चो।	२३ उ.
एगिंदियविगलिंदियपंचिं(चें)दियभेयओ तहिं जीवा।	१७९ पू.
एगोसासम्मि मओ, सतरस वाराउऽणंतखुत्तो वि।	१८४ पू.
एत्थ य चउगइजलहिम्मि परिब्भमंतेहिं सयलजीवेहिं।	३९९ पू.
एत्थ य विजयनरिंदो, चिलायपुत्तो य तक्खणं चेव।	४५० पू.
एत्थ य हरिणत्ते पुप्फचूलकुमरेण जह सभज्जेण।	२१९ पू.
एमाइ कुणसि कूडुत्तराइं इण्हिं किमुव्वयसि ?।	१७४ उ.
एयस्स पुण सरूवं, पुव्विं पि हु वन्नियं समासेणं।	३१० पू.
एवं कए य पुव्वुत्तझाणजलणेण कम्मवणगहणं।	५२४ पू.
एवं च दुव्वियड्ढत्तगव्विओ वयसि सिक्खविओ।	१३७ उ.
एवं परमाहम्मियपाएसु पुणो पुणो वि लग्गंति।	१२४ पू.
एवं संखेवेणं, निरयगई वन्निया तओ जीवा।	१७८ पू.
एसो मह पुव्ववेरि, त्ति नियमणे अलियमवि विगप्पेउं।	१६३ पू.
ओयं तु उवट्टंभस्स कारणं तस्सरूवं तु।	४०५ उ.

ओयाहाराईहि य, कुणइ सरीरं समग्गं पि।	२६० उ.
कंदंताण सदुक्खं, को णु विसेसो असरणत्ते ?।	३० उ.
कइया वि अंबखुज्जो, जणणीचेट्ठाणुसारेण।	२६६ उ.
कइया वि हु उत्ताणो, कइया वि हु होइ एगपासेण।	२६६ पू.
कइवयदिणलद्धेहिं, तहेव रज्जाइएहिं तूसंति।	१६ पू.
कड्ढंति अंतवसमंसफिप्फिसे छेदिउं बहुसो।	१०६ उ.
कणगावलि-रयणावलि-मुत्तावलि-सीहकीलियप्पमुहो।	४५१ पू.
कणयसिलायलवच्छा, पुरगोउरपरिहभुयदंडा।	२८९ उ.
कण्णोट्ठनासकरचरणऊरूमाईणि छिंदंति।	११३ उ.
कत्थइ रज्जं कत्थ वि, य दोन्नि जा सत्त रज्जूओ।	४२६ उ.
कप्पंति कप्पणीहिं, अंबरिसी तत्थ नेरइए।	१०४ उ.
कप्पंति खंडखंडं, उवरुद्दा निरयवासीणं।	१०८ उ.
कमपत्तकेवलाणं, जायइ तं चेव पच्चक्खं।	३ उ.
कम्ममलेण न लिप्पइ, सो संवरियासवदुवारो।	४४३ उ.
कम्मस्स आसवं संवरं च निज्जरणमुत्तमे य गुणे।	१० पू.
कम्मासवदाराइं, रुंभसु जइ सिवसुहं महसि।	४४४ उ.
कम्मेयरभूमिसमुब्भवाइभेएणऽणेगहा मणुया।	२५१ पू.
कयअभिसेया पूएह सामि ! किच्चाणिमं पढमं।	३५७ उ.
कयवज्जतुंडबहुविहविहंगरूवेहिं तिक्खचंचूहिं।	१५४ पू.
कयसोग्गइपत्थयणा, ते मरणंते न सोयंति।	४९८ उ.
करचरणसिरंकूरा, पंचमए पंच जायंति।	२५७ उ.
करवत्तेहि य फाडंति निद्दयं मज्झमज्झेणं।	११८ उ.
कलसेहि ण्हवंति सुरा, केई गायंति तत्थ परितुट्ठा।	३६९ पू.
कलहकरी मह भज्जा, असंवुडो परियणो पहू विसमो।	३०५ पू.
कलियाइं रयणनिम्मियमहंतपासायपंतीहिं।	३४३ उ.
कलिहाइ रयणरासीहि दिप्पमाणाइ सोमकंतीहि।	३३२ पू.
कवलमगिण्हंतो आरियाहिं कह कह न विद्धो सि ?।	२२६ उ.
कवलेसि कालकूडं, मूढो चिरजीवियत्थी वि।	४८२ उ.
कसिणा वि कुणइ केसा, मालइकुसुमेहिं अविसेसा।	३७ उ.

काउं कुडुंबकज्जे, समुद्दवणिओ व्व विविहपावाइं।	१९७ पू.
काऊण इहऽन्नाणि वि, कुणिमाहाराइ पावाइं।	९१ उ.
काऊण केइ मणुया, होंति अतो तेण ते भणिमो।	२५० उ.
काऊण भडित्तं खंडंसोऽवि विकत्तंति सत्थेहिं।	१५२ उ.
काऊण भडित्तं भुंजिओऽसि तेहिं चिय तहिं पि।	२३१ उ.
कारेसि अग्गिहोमं, विज्जं मंतं च संतिं च।	४९ उ.
कालमणंतं एगिंदिएसु संखेज्जयं पुणियरेसु।	२५० पू.
कालमसंखं पि गमंति पमुइया रयणभवणेसु।	३८२ उ.
कालेज्जयं तु समए, पणवीस पलाइं निद्दिट्ठं।	४०८ उ.
कालेण अणंतेणं, अणंतबलचक्किवासुदेवा वि।	२१ पू.
किं अणुहवंति सोक्खं ?, कोसंबीनयरिविप्पो व्व।	३०८ उ.
किं एत्थ मज्झ किच्चं, पढमं ? ता परियणो भणइ।	३५६ उ.
किं पुण सुहावसाणं, तुच्छमिणं माणसं दुक्खं ?।	५१७ उ.
किं पुव्वभवे विहियं, मए इमा जेण सुररिद्धी ?।	३५५ उ.
किं वावि होज्जिमेहिं, भवंतरे तुह परित्ताणं ?।	७४ उ.
किं सयणेसु ममत्तं ?, को य पओसो परजणम्मि ?।	७५ उ.
किमकज्जं जं जीवा, न कुणंति सिणेहपडिबद्धा ?।	५१४ उ.
किह विसयभोलियाणं, निव्वुइपुरसंगमो ताणं ?।	४८८ उ.
कीरइ वेयावच्चं, सारं मन्नामि तं चेव।	३९८ उ.
कुंददलधवलदसणा, विहगाहिवचंचुसरलसमनासा।	२९१ पू.
कुंभीओ नारएँ उक्कलंततेल्लाइसु तलंति।	११४ उ.
कुंभेसु पयणगेसु य, सुंठेसु य कंदुलोहिकुंभीसु।	११४ पू.
कुट्टंति कुहाडेहिं, ताण तणुं खयरकट्ठं व।	१५३ उ.
कुण धम्मं जेण सुहं, सोच्चियं चिंतेइ तुह सव्वं।	४९१ उ.
कुणसि असरणो तह वि हु, डंकिज्जसि जमभुयंगेण।	५० उ.
कुणसि ममत्तं धणसयणविहवपमुहेसुऽणंतदुक्खेसु।	५१० पू.
कुपहबहुयत्तणेणं, विसयसुहाणं च लोहेणं।	४७५ उ.
कुव्वंति तहऽन्नाओ, पणवीसं सिंभधरणीओ।	४१५ उ.
कूडक्कय अलिएणं, परपरिवाएण पिसुणयाए य।	१८८ पू.

कूडक्कयकरणेणं, अणंतसो नियडिनडियचित्तेहिं। २४९ पू.
कूडक्कयपरवंचणवीससियवहा य जाण कज्जम्मि। ६२ पू.
केवलदुहनिम्मविए, पडिओ संसारसायरे जीवो। ४३१ पू.
को कस्स जए सयणो ?, को कस्स परजणो एत्थ ?। ५८ उ.
को कस्स दुहं गिण्हइ ?, मयं च को कं नियत्तेइ ?। ५९ उ.
को कायसुणयभक्खे, किमिकुलवासे य वाहिखित्ते य। ४२१ पू.
को केण समं जायइ ?, को केण समं परं भवं वयइ ?। ५९ पू.
को जाणइ पुणरुत्तं, होही कइया वि धम्मसामग्गी ?। ४९९ पू.
को ताण अणाहाणं, रन्ने तिरियाण वाहिविहुराणं। २४६ पू.
को निज्जरं तुलेज्जा, चरणम्मि परक्कमंताणं ?। ५०२ उ.
को सरणं परिचिंतसु, एक्कं मोत्तूण जिणधम्मं। ४३ उ.
को होज्ज सरीरम्मि वि, सुइवाओ मुणियतत्ताणं ?। ४०४ उ.
कोडीओ सत्त बावत्तरीए लक्खेहिं अहियाओ। ३२७ उ.
कोसंबिपुरीराया, न रक्खिओ तह वि रोगाणं। ३१ उ.
कोहम्मि सूरविप्पो, मयम्मि आहरणमुज्झियकुमारो। ४३८ पू.
खणदिट्ठनट्ठरूवं, तह जाणसु विहवमाईयं। १७ उ.
खणमेगं हरिसिज्जंति, पाणिणो पुण विसीयंती। १५ उ.
खद्धाइं जं अणज्जेहिं पसुभवे किं न तं सरसि ?। २०२ उ.
खरचरणचवेडाहि य, चंचुपहारेहिं निहणमुवणेंतो। २३६ पू.
खरस्सरे महाघोसे पनरस परमाहम्मिया। ९८ उ.
खावंति मंसखंडाणि नारए तत्थ महकाला। ११० उ.
खित्ताईणि वि एवं, दुलहाइं वण्णियाइं समयम्मि। ४७१ पू.
खित्तो गोत्तीइ व पंजरट्ठिओ हंत कीरत्ते। २३९ उ.
खिवइ करं जलम्मि वि, पक्खिवइ मुहम्मि कसिणभुयगं पि। २७८ पू.
खिवइ सुरो तो खिप्पं, वच्चइ विलयं अपत्तो वि। ८८ उ.
खेत्ताणुभावजणिया, इय तिविहा वेयणा नरए। १६४ उ.
खेलखरंटियवयणो, मुत्तपुरीसाणुलित्तसव्वंगो। २७७ पू.
खोल्लगभवगहणाऊ, एएसु निगोयजीवेसु। १८४ उ.
गंडयललिहंतमहंतकुंडला कंठनिहियवणमाला। ३७६ पू.

गंतुं ववसायसभाए वायए रयणपोत्थयं तत्तो।	३७२ पू.
गंतूण चुल्लहिमवंतसिहरिपमुहेसु कुलगिरिंदेसु।	३६४ पू.
गंतूण सुहम्मसभं, तत्तो अच्चइ जिणिंदसगहाओ।	३७४ पू.
गंधव्वपुरवराइं, तो तुह रिद्धी वि होज्ज थिरा।	१९ उ.
गंभीरखाइयापरिगयाइं किंकरगणेहिं गुत्ताइं।	३३० पू.
गब्भगओ वसइ जिओ, अद्धमहोरत्तमन्नं च।	२६१ उ.
गब्भदुहाइं दट्ठुं, जाईसरणेण नायसुरजम्मो।	२७२ पू.
गब्भाउ वि काऊणं, संगामाईणि गरुयपावाइं।	२६३ पू.
गब्भे बालत्तणयम्मि जोव्वणे तह य वुड्ढभावम्मि।	२५२ पू.
गरुयं पि हु वहइ भरं, करहो नियकम्मदोसेण।	२०० उ.
गलए विद्धो सत्थेण छिंदिउं भुंजिउं भुत्तो।	२३३ उ.
गलयं छेत्तूणं कत्तियाइ उल्लंबिऊण पाणेहिं।	२०३ पू.
गहिऊण सवणमुच्छालिऊण वामाओ दाहिणगयम्मि।	२२१ पू.
गहिओ खरनहरबिडालियाए आयड्ढिऊण कंठम्मि।	२४१ पू.
गहियं जेहि चरित्तं, जलं व तिसिएहि गिम्हपहिएहिं।	४९८ पू.
गिण्हंति वट्टवेयड्ढसेलसिहरेसु चउसु एमेव।	३६५ पू.
गिण्हंति सलिलमट्टियमंतरनइसलिलमेव उवणेंति।	३६६ पू.
गिण्हंतेण अवण्णं, मूढेणं नासिओ अप्पा।	४९५ उ.
गिम्हम्मि मरुत्थलवालुयासु जलणोसिणासु खुप्पंतो।	२०० पू.
गिम्हे कंताराइसु, तिसिओ माइण्हियाइ हीरंतो।	२१७ पू.
गुणकारयाइ धणियं, धिइरज्जुनियंतियाइं तुह जीव !।	४४७ पू.
गुरुदेवाणुवहासो, विहिया आसायणा वयं भग्गं।	१४४ पू.
गुरुयाणं पि हु बलमाणखंडणं कुणइ वुड्ढत्ते।	३९ उ.
गोला होंति असंखा, होंति निगोया असंखया गोले।	१८३ पू.
गोवंति पलियवलिगंडकूवे नियजम्ममाईणि।	४० उ.
घररज्जकप्पणाहि य, बाला कीलंति तुट्ठमणा।	१२ उ.
घररज्जविहवसयणाइएसु रमिऊण पंच दियहाइं।	१४ पू.
घेत्तु तुह चम्ममंसं, अणंतसो विक्किकयं तत्थ।	२०३ उ.
घेत्तूण जंति खीरोयहिम्मि तह पुक्खरोयजलहिम्मि।	३६१ पू.

चउदसरज्जू उड्ढायओ इमो वित्थरेण पुण लोगो।	४२६ पू.
चउपासमिलिअवणदवमहंतजालावलीहिं डज्झंता।	१४९ पू.
चउसुं पि अवत्थासुं, इय मणुएसुं विचिंतयंताणं।	३१४ पू.
चक्कहरो वि गसिज्जइ, ससि व्व जमराहुणा विवसो।	४६ उ.
चडिऊण सुरा तेसिं, भरेण भंजंति अंगाइं।	१५७ उ.
चरचरचरस्स तो फालिऊण खाएसि परमंसं।	१२९ उ.
चरिउं जह संझाए, अन्नन्नघरेसु वच्चंति।	७९ उ.
चिंतसु ताण सरूवं, निउणं चउसु वि अवत्थासु।	२५२ उ.
चिट्ठंति निरयवासे, नेरइया अहव किं बहुणा ?।	१६६ उ.
चिट्ठइ घरम्मि कोणे, पडिउं मंचम्मि कासंतो।	३१२ उ.
चित्तयमइंदकमनिसियनहरखरपहरविहुरियंगस्स।	२१४ पू.
चित्ते वि न वसइ इमं, थेवंतरमेव जरसेन्नं।	३३ उ.
चिल्लंतो विलवंतो, खद्धो सि तहिं तयं सरसु।	२४१ उ.
चोरो व्व चारयगिहे, खिप्पइ जीवो अणप्पवसो।	२५३ उ.
छउमत्थसंजमेणं, देसचरित्तेणऽकामनिज्जरया।	३४६ पू.
छक्खंडवसुहसामी, नीसेसनरिंदपणयपयकमलो।	४६ पू.
छट्ठम्मि पित्तसोणियमुवचिणेइ सत्तमम्मि पुण मासे।	२५८ पू.
छिंदंति असी असिमाइएहि निच्चं पि निरयाणं।	१११ उ.
छिंदंति असीहिं तिसूलसूलसुइसत्तिकुंततुमरेसु।	१०७ पू.
छिज्जं सोसं मलणं, बंधं निप्पीलणं च लोयम्मि।	५१३ पू.
छुहियं पिवासिसं वा, वाहिग्घत्थं च अत्तयं कहिउं।	२७६ पू.
छेअणसोसणभंजणकंडणदढदलणचलणमलणेहिं।	१८२ पू.
छेत्तूण निसियसत्थेण खंडसो उक्कलंततेल्लम्मि।	२३० पू.
छेत्तूण सीहपुच्छागिईणि तह कागणिप्पमाणाणि।	११० पू.
छोल्लिज्जंतं तह संकडाउ जंताओ वंससलियं व।	९६ पू.
जं अणुहवइ किलेसं, तं आसवहेउयं सव्वं।	४३१ उ.
जं पंचदिणाणुवरिं, न तुमं न धणं न ते सयणा।	२० उ.
जं पुण न हुंति सरणं, धणधन्नाईणि किं चोज्जं ?।	३५ उ.
जंतसयसोहिएहिं, पायारेहिं व गूढाइं।	३२९ उ.

जंतूण पगरणमिणं, जायइ भवजलहिबोहित्थं।	५२९ उ.
जंबूतामलिपमुहा, कमेण एत्थं उदाहरणा।	३४७ उ.
जइ अमरगिरिसमाणं, हिमपिंडं को वि उसिणनरएसु।	८८ पू.
जइ धम्मामयपाणं, मुहाए पावेसि साहुमूलम्मि।	४९० पू.
जइ पियसि ओसहाइं, बंधसि बाहासु पत्थरसयाइं।	४९ पू.
जइ पुण होइ न पुत्तो, अहवा जाओ वि होइ दुस्सीलो।	२८६ पू.
जइ मच्चुमुहगयाणं, एयाण वि होइ किं पि न हु सरणं।	४८ पू.
जइया पुण पावाइं, करेसि तुट्ठो तया भणसि।	१२५ उ.
जणएण पासएहिं, बद्धो खद्धो य जणणीए।	२४२ उ.
जणणी वि हवइ धूया, धूया वि हु गेहिणी होइ।	४२८ उ.
जणणीए अंगाइं, पीडेइ चउत्थयम्मि मासम्मि।	२५७ पू.
जम्मं पि ताण थुणिमो, हिमं व विप्फुरियझाणजलणम्मि।	४६१ पू.
जरइंदयालिणीए, का वि हयासाइ असरिसा सत्ती।	३७ पू.
जरकाससाससोसाइपरिगयं पेच्छिऊण घरसामिं।	२७ पू.
जरभीया य वराया, सेवंति रसायणाइकिरियाओ।	४० पू.
जरमरणवल्लिविच्छित्तिकारए जयसु जिणधम्मे।	५४ उ.
जरमरणसमं न भयं, न दुहं नरगाइजम्मओ अन्नं।	५०८ पू.
जररक्खसी बलीण वि, भंजइ पिट्ठिं पि सुसिलिट्ठं।	३८ उ.
जलणो व्व पवणसहिओ, समूलजालं दहइ कम्मं।	५०१ उ.
जलभरसंपूरियगुरुतडंगभज्जंतपिट्ठंता।	१९४ उ.
जलहिं पविसेमि महिं, तरेमि धाउं धमेमि अहवा वि।	३०६ पू.
जवचणयचरणगिद्धो, विद्धो हिययम्मि सूलाहिं।	२१५ उ.
जसकित्तिकरं नाणं, गुणसयसंपायगं जए नाणं।	५०४ पू.
जस्स बहिं बहुयजणो, लद्धो न तए वि जो बहुं कालं।	४७६ पू.
जस्स य कुसुमोग्गमुच्चिय, सुरनररिद्धी फलं तु सिद्धिसुहं।	४८० पू.
जह कागिणीइ हेउं, कोडिं रयणाण हारए कोई।	४९३ पू.
जह जह दढप्पइन्नो, वेरग्गओ तवं कुणइ जीवो।	४५२ पू.
जह जह दोसोवरमो, जह जह विसएसु होइ वेरग्गं।	४४९ पू.
जह जह वंचइ लोयं, माइल्लो कूडबहुपवंचेहिं।	४३६ पू.

जह तस्स सुकोसलमुणिवरस्स लोयम्मि कट्ठमहो।	४३० उ.
जह तुह दुहं कुरंगत्तणम्मि तं जीव ! किं भणिमो ?।	२१४ उ.
जह न तरइ आरुहिउं, पंके खुत्तो करी थलं कह वि।	५१२ पू.
जह मम्मणवणिओ इव, संतेऽवि धणे दुही होइ।	२८४ उ.
जह वसिऊणं देसियकुडीए एक्काइ विविहपंथियणो।	७७ पू.
जह वा महल्लरुक्खे, पओससमए विहंगमकुलाइं।	७८ पू.
जह होंति सोयणिज्जा, निवविक्कमरायतणुओ व्व।	२९६ उ.
जाओ न जत्थ जीवो, चुलसीईजोणिलक्खेसु।	४०० उ.
जाण बलेण पवत्तइ, वाऊ मुत्तं पुरीसं च।	४१३ उ.
जायं मयं च सहिओ, अणंतसो दुक्खसंघाओ।	३९९ उ.
जायंति जए कस्स वि, अन्नत्थ वि जेणिमं भणियं।	५२ उ.
जायंति रायभुवणाइएसु कमसो य सिज्झंति।	१७५ उ.
जायइ न अहव सव्वण्णुणो वि को तेसु अवयासो ?।	५२८ उ.
जायमाणस्स जं दुक्खं मरमाणस्स जंतुणो।	२७४ पू.
जाया व अज्ज तउणी, कल्ले किह होहिइ कुडुंबं ?।	३०२ उ.
जायाजणणिप्पमुहं, पासगयं झूरइ कुडुंबं।	२७ उ.
जारिसं जायए दुक्खं गब्भे अट्ठगुणं तओ।	२६८ उ.
जाले बद्धो सत्थेण छिंदिउं हुयवहम्मि परिमुक्को।	२२९ पू.
जावइयं किं पि दुहं, सारीरं माणसं च संसारे।	५०९ पू.
जिणदत्तसावगस्स व, पराभवं कुणइ अइदुसहं।	३१३ उ.
जिणदेसियं चरित्तं, सहावसुद्धेण भावेणं।	४५८ उ.
जिणधम्मं कुव्वंतो, जं मन्नसि दुक्करं अणुट्ठाणं।	४८१ पू.
जिणधम्मरिद्धिरहिओ, रंक्को च्चिय नूण चक्कवट्टी वि।	४८५ पू.
जिणधम्मसत्थवाहो, न सहाओ जाण भवमहारन्ने।	४८८ पू.
जिणधम्मुवहासेणं, कामासत्तीइ हिययसढयाए।	१८७ पू.
जिणभवणेण पवित्तीकयाइं मणनयणसुहयाइं।	३३९ उ.
जिणमयमसद्दहंता, दंभपरा परधणेक्कलुद्धमणा।	२०१ पू.
जिणसासणं जिणिंदा, महरिसिणो नाणचरणधणा।	३२३ उ.
जिणसासणम्मि बोहिं, च दुल्लहं चिंतए मइमं।	१० उ.

जिणसासणसुगइपहो, पुन्नेहिं मए समणुपत्तो।	४६५ उ.
जिन्नं घरं च हट्टं, झरइ जलं गलइ सव्वं पि।	३०४ उ.
जियसत्तु व्व पवज्जसु, सरणं जिणवीरपयकमलं।	४२ उ.
जीयं देहो लच्छी, सुरलोयम्मि वि अणिच्चाइं।	११ उ.
जीवंतस्स वि उक्कित्तिउं छविं छिंदिऊण मंसाइं।	२०२ पू.
जीवंतो वि हु उवरिं, दाउं दहणस्स दीणहियओ य।	२३१ पू.
जीवइ अज्ज वि सत्तू, मओ य इट्ठो पहू य मह रुट्ठो।	३०७ पू.
जीवा तिला य पेच्छह, पावंति सिणेहसंबद्धा।	५१३ उ.
जीवेणं बालत्तं, पावसयाइं कुणंतेण।	२८० उ.
जीवो जिणिंदभणियं, पडिवज्जइ भावओ धम्मं।	४६६ उ.
जीवो निच्चसहावो, सेसाणि उ भंगुराणि वत्थूणि।	७२ पू.
जीवो भवंतरगई, थक्कंति इहेव सेसाइं।	७१ उ.
जूहवइत्ते पज्जलियवणदावे निरवलंबचरणस्स।	२२८ पू.
जे उण दारिद्दहया, अनीइमंताण ताणं तु।	२९८ उ.
जे केइ जए ठाणा, उईरणाकारणं कसायाणं।	५२० पू.
जे कोडिसिलं वामेक्ककरयलेणुक्खिवंति तूलं व।	४७ पू.
जे पत्ता लीलाए, कसायमयरालयस्स परतीरं।	४६२ पू.
जेण कएणऽन्नो वि हु, भूसिज्जइ गुणगुणो सयलो।	५२३ उ.
जेण चिय जिणधम्मेण, गमिओ रंको वि रज्जसंपत्तिं।	४८७ पू.
जेसिं च अइसएणं, गिद्धी सद्दाइएसु विसएसु।	१५८ पू.
जेसिं च फुरइ नाणं, ममत्तनेहाणुबंधभावेहिं।	५०७ पू.
जेहि न गहियं ते पाविहिंति दीणत्तणं पुरओ।	४८४ उ.
जो पढइ सुत्तओ सुणइ अत्थओ भावए य अणुसमयं।	५२६ पू.
जो सम्मं भूयाइं, पेच्छइ भूएसु अप्पभूओ य।	४४३ पू.
जोइसिएहिं वेमाणिएहिं जुत्तं समासेण।	३२६ उ.
झिज्जइ दंती नाडयनियंतिओ सुक्खरुक्खम्मि।	२२३ उ.
झीणो सरिउं सहपिययमाए रमियाइं सालिछेत्तेसु।	२३९ पू.
ठाणट्ठाणारंभियगेयज्झुणिदिन्नसवणसोक्खाइं।	३३६ पू.
ठाणे ठाणम्मि समज्जिऊण धणसयणसंघाए।	७६ उ.

डज्झंतदिव्वकुंदुरुतुरुक्ककिण्हगुरुमघमघंताइं।	३३४ पू.
डिंभाइ रुयंति तहा, हद्धी किं देमि घरिणीए ?।	३०० उ.
णत्थि जए सव्वन्नू, अहवा अहमेव एत्थ सव्वविऊ।	१२६ पू.
णत्थि व पुण्णं पावं, भूयऽब्भहिओ य दीसइ न जीवो।	१२७ पू.
णमिऊण णमिरसुरवरमणिमउडफुरंतकिरणकब्बुरिअं।	१ पू.
तं ओसहं व परिणामसुंदरं मुणसु सुहहेउं।	४८१ उ.
तं चिय जिणधम्मतरुं, सिंचसु सुहभावसलिलेहिं।	४८० उ.
तं तह उप्पण्णं पासिऊण धावंति हट्ठतुट्ठमणा।	९५ पू.
तं पि हु न कुणइ धम्मं, अहह कहं सो न मूढप्पा ?।	४८६ उ.
तं रिद्धिं पुरओ पुण, दारिद्दभरं नियंताणं।	३९१ उ.
तइया खणेसि खत्तं, घायसि वीसंभियं मुससि लोयं।	१३२ पू.
तइया परजुवईणं, चोरियरमियाइं मुणसि सुहियाइं।	१३५ पू.
तइया भोगसमत्था, होइ चउत्थीए पुण बलं विउलं।	३१८ पू.
तडयडरवफुट्टंते, चणय व्व कयंबवालुयानियरे।	११५ पू.
तत्ततउमाइयाइं, खिवंति सवणेसु तह य दिट्ठीए।	१५९ पू.
तत्तो कसिणसरीरा, बीभच्छा असुइणो सडियदेहा।	१६५ पू.
तत्तो पाएहिं सिरेण वा वि सम्मं विणिग्गमो तस्स।	२७१ पू.
तत्तो भीमभुयंगमपिवीलियाईणि तह य दव्वाणि।	१६१ पू.
तत्तो य निरयपाला, भणंति रे अज्ज दुसहं दुक्खं।	१२५ पू.
तत्तो वज्जेण सिरम्मि ताडिओ विलवमाणओ दीणो।	३८७ पू.
तत्थ मणिच्छियआहारविसयवत्थाइसुहियाणं।	३९३ उ.
तत्थ य निरयगईए, सरूवमेवं विभावेज्जा।	८२ उ.
तत्थ य सम्मादिट्ठी, पायं चिंतंति वेयणाऽभिहया।	१६८ पू.
तत्थ वि पडंतपव्वयसिलासमूहेण दलियसव्वंगा।	१५६ पू.
तत्थ वि य दुव्विणीयं, किलेसलंभं पियं मुणंताणं।	३९३ पू.
तत्थुववज्जइ देवो, कोमलवरदेवदूसअंतरिए।	३५१ पू.
तत्थेव य सच्छंदं, मुद्दियलयमंडवेसु हिंडंतो।	२४२ पू.
तप्पढमयाऍ जीवो, आहारइ तत्थ उप्पन्नो।	२५४ उ.
तम्मि वि जस्स अवन्ना, सो भन्नइ किं कुलीणो त्ति ?।	४८७ उ.

तम्हा घरपरियणसयणसंगयं सयलदुक्खसंजणयं।	७ पू.
तम्हा देवगईए, वि जं तित्थयराणं समवसरणाई।	३९८ पू.
तम्हा मणुयगईए, वि सारं पेच्छामि एत्तियं चेव।	३२३ पू.
तरुणत्तणम्मि पत्तस्स धावए दविणमेलणपिवासा।	२८२ पू.
तलिऊण तुट्ठहियएहि हंत भुत्तो तहिं चेव।	२३० उ.
तवणिज्जमयक्खरऽमरकिच्चनयमग्गपायडणं।	३७२ उ.
तवतिक्खखग्गदंडेण सूडियं जेहि मोहबलं।	४५४ उ.
तवहुयवहम्मि खिविऊण जेहि कणगं व सोहिओ अप्पा।	४५६ पू.
तसिओ गसिओ मुक्को, लुक्को ढुक्को य गिलिओ य।	२३२ उ.
तस्स वि जेण न अन्नो, सरणं नरए पडंतस्स।	४८५ उ.
तस्स सहावं चिंतेज्ज धम्मज्झाणत्थमुवउत्तो।	४२७ उ.
तस्सद्धे अमिलाणा, सव्वाउयवीसभागो उ।	३२२ उ.
तह चेव संठियाइं, संखाईयाइं रयणमइयाइं।	३४० पू.
तह जीव ! ते तुमं पि हु, सहसु सुहं लहसि जमणंतं।	५१९ उ.
तह तह असुहं कम्मं, झिज्जइ सीयं व सूरहयं।	४५२ उ.
तह तह विन्नायव्वं, आसन्नं से य परमपयं।	४४९ उ.
तह तह संचिणइ मलं, बंधइ भवसायरं घोरं।	४३६ उ.
तह तुच्छविसयगिद्धा, जीवा हारंति सिद्धिसुहं।	४९३ उ.
तह नेहपंकखुत्तो, जीवो नारुहइ धम्मथलं।	५१२ उ.
तह पित्तधारिणीओ, पणवीसं दस य सुक्कधरणीओ।	४१६ पू.
तह फालिया वि उक्कत्तिया वि तलिया वि छिन्नभिन्ना वि।	१२१ पू.
तह रज्जं तह विहवो, तह चउरंगं बलं तहा सयणा।	३१ पू.
तह विहुरिज्जंति खणेण कुट्ठक्खयपमुहभीमरोगेहिं।	२९६ पू.
ता कीडयमेत्तेसुं, का गणणा इयरलोएसु ?।	४८ उ.
ता दविणेण किणेउं, विसयविसं जीव ! किं पियसि ?।	४९० उ.
ता होज्ज तिहुयणम्मि वि, कस्स दुहं ? कस्स व न सोक्खं।	४९२ उ.
ताइं पि हु(पडि) लद्धूणं, पमाइयं जेण(हिं) जिणधम्मे।	४७१ उ.
ताइं पुण भवणाइं, बाहिं वट्टाइं होंति सयलाइं।	३२८ पू.
ताओ य भावणाओ, बारस एयाओ अणुकमसो।	८ उ.

ताण निमित्तं पावाइ जेण विहियाइ विविहाइं।	६५ उ.
ताण विचिंतसु जइ अत्थि किं पि परमत्थओ सोक्खं।	२५१ उ.
ताण सिवरयणदीवंगमाण भद्दं मुणिंदाणं।	४६२ उ.
ताणं चिय वयणे पक्खिवंति जलणम्मि भुंजेउं।	१४७ उ.
तायारमपेच्छंतो, नियकम्मविडंबिओ जीवो।	४७२ उ.
तारुण्णभरे मयणो, जाण सरीरम्मि वि विलीणो।	४६१ उ.
तित्थयरा वि हु कीरंति कित्तिसेसा कयंतेण।	४४ उ.
तिरियं णिग्गच्छंतो, विणिवायं पावए जीवो।	२७१ उ.
तिरियगमाण सिराणं, सट्ठसयं होइ अवराणं।	४१४ उ.
तिरियमसंखेज्जाइं, जोइसियाणं विमाणाइं॥३४॥	३४१ उ.
तिरियाणऽइभारारोवणाइं सुमराविऊण खंधेसुं।	१५७ पू.
तिव्वा रोगायंका, सहिया जह चक्किणा चउत्थेणं।	५१९ पू.
तीसपणवीसपनरसदसलक्खा तिन्नि एग पंचूणं।	८४ पू.
तीसूणाइं इत्थीण वीसहीणाइं होंति संढस्स।	४१७ पू.
तीसे मज्झे मणिपेढियाए रयणमयसयणिज्जं।	३५० उ.
तुच्छजले बुड्डमुहाइं दो वि समयं विवन्नाइं।	२१८ उ.
ते अइमुत्तयकुरुदत्तपमुहमुणिणो नमंसामि।	४५६ उ.
ते णं नरयावासा, अंतो वट्टा बहिं तु चउरंसा।	८५ पू.
ते पुज्जा तियलोए, सव्वत्थ वि जाण निम्मलं नाणं।	५०५ पू.
ते सयमवि वज्जंता, सुहिणो धीरा चरंति महिं।	५२० उ.
तेण दुक्खेण संतत्तो न सरइ जाइमप्पणो।	२७४ उ.
तेणावि पुरिसयारेण विणडिओ मुणसि तणसमं भुवणं।	१३३ पू.
तेणेव पगइभद्दो, विणयपरो विगयमच्छरो सदओ।	३२५ पू.
तेयम्मि हीयमाणे, जायंते तह विवज्जासे।	३९० उ.
तेवीसाहिय सगनउइसहस्स चुलसीइसयसहस्साइं।	३४२ पू.
तो अणभिनिविट्ठाणं, अत्थीणं किं पि भावियमईणं।	५२९ पू.
तो गंतुं सट्ठाणं, ठविउं सीहासणम्मि ते देवं।	३६८ पू.
तो जइ अत्थि भयं ते, इमाइ घोराइ जरपिसाईए।	४२ पू.
तो जम्ममरणजरमूलकारणं छिंदसु ममत्तं।	५०८ उ.

तो तं चिय परिसिंचसु, निच्चं सद्धम्मसलिलेहिं। ४८९ उ.
तो तह झिज्झइ अंगे, जह कहिउं केवली तरइ। २८६ उ.
तो पवणचलिततरुनिवडिएहिं असिमाइएहिं किर तेसिं। ११३ पू.
तो मिलइ कह वि अत्थे, जइ तो मुज्झइ तयं पि पालंतो। २८३ पू.
तो मुत्तूण दुगुंछं, उम्मायकरं कयंबविप्प व्व। ४२५ पू.
तो सयमवि अन्नेण व, भग्गे एयम्मि अहव एमेव। १३ पू.
तो होसि पराहुत्तो, भुंजसि रयणीई पुण मिट्ठं। १४० उ.
थक्कंति महुनिवस्स व, जणकोडीओ विसेसाओ। ६९ उ.
थरहरइ जंघजुयलं, झिज्झइ दिट्ठी पणस्सइ सुइ वि। ३११ पू.
थेवो वि जाव नेहो, जीवाणं ताव निव्वुई कत्तो ?। ५१५ पू.
दंतेहि अंगुलीओ, गिण्हंति भणंति दीणाइं। १२४ उ.
दंसंति तत्थ छायाहिलासिणो जंति नेरइया। ११२ उ.
दट्ठूण कूडहरिणिं, फासिंदियभोलिओ तहिं गिद्धो। २१३ पू.
दड्ढा भुग्गा मुडिया, य तोडिया तह विलीणा य। १२१ उ.
दलइ बलं गलइ सुइं, पाडइ दसणे निरुंभए दिट्ठिं। ३८ पू.
दवहुयवहो व्व संसारविडविमूलाइं निद्दहइ। ४५३ उ.
दसदिसिविणिग्गयामलरविसमहियतेयदुरवलोयाइं। ३३८ पू.
दसमीएँ सुयइ वियलो, दीणो भिन्नस्सरो खीणो। ३२० उ.
दसवरिसपमाणाओ, पत्तेयमिमाओ तत्थ बालस्स। ३१७ पू.
दसविहभवणवईणं, भवणाणं होंति सव्वसंखाए। ३२७ पू.
दहिऊण जंति सिद्धिं, अजरं अमरं अणंतसुहं। ५२४ उ.
दाउं नाणपईवं, तवेण अवणेसु कम्ममलं। ४५५ उ.
दाणिग्गहणं मग्गंति विहविणो कत्थ वच्चामि ?। ३०७ उ.
दारपडिदारतोरणचंदनकलसेहिं भूसियाइं च। ३३१ पू.
दासोऽहं भिच्चोऽहं, पणओऽहं ताण साहुसुहडाणं। ४५४ पू.
दाहिणकुच्छीवसिओ, पुत्तो वामाए पुण हवइ धूया। २७५ पू.
दिट्ठंता इत्थं पि हु, कमेण विबुहेहिं नायव्वा। ४४२ उ.
दिन्नो बलीए तह देवयाण विरसाइं बुब्बुयंतो वि। २०४ पू.
दिप्पंतरयणभासुरनिविट्ठगोउरकवाडाइं। ३३० उ.

दीणा सव्वनिहीणा, नपुंसगा सरणवज्जिया खीणा।	१६६ पू.
दीसइ न कोऽवि बीओ, जो अंसं गिण्हइ दुहस्स।	६६ उ.
दुक्करमेएहि कयं, जेहि समत्थेहि जोव्वणत्थेहिं।	४६० पू.
दुक्खं उप्पायंतो, उप्पन्नदुहो य भमिओ सि।	२३५ उ.
दुण्हं पि निव्विसेसा, असरणया विलवमाणाणं।	२९ उ.
दुन्नयधणाण निच्चं, दुहाइं को वन्निउं तरइ ?।	२९९ उ.
दुन्नि अहोरत्तसए, संपुण्णे सत्तसत्तरी चेव।	२६१ पू.
दुप्पत्थिओ अमित्तं, अप्पा सुप्पत्थिओ हवइ मित्तं।	१७२ पू.
दुलओ पुणरवि धम्मो, तुमं पमायाउरो सुहेसी य।	४७८ पू.
दुलहो च्चिय जिणधम्मो, पत्ते मणुयत्तणाइभावे वि।	४७५ पू.
दुसहं च नरयदुक्खं, किं होहिसि ? तं न याणामो।	४७८ उ.
दुहकोडिकुहरं चिय, वुड्ढत्तं नूण सव्वेसिं।	३०९ उ.
दुहमणुभूयं तह सुणसु जीव ! कहियं महरिसीहिं।	२१९ उ.
दूरुज्झियमज्जाया, धम्मविरुद्धं च जणविरुद्धं च।	५१४ पू.
देंति न मह ढोयं पि हु, अत्तसमिद्धीइ गव्विया सयणा।	३०१ पू.
देवगइं चिय वोच्छं, एत्तो भवणवइवंतरसुरेहिं।	३२६ पू.
देसो अधारणिज्जो, एसो वच्चामि अन्नत्थ।	३०५ उ.
देहं च बज्झवत्थुं, च कुणह उवयारयं धम्मे।	४२५ उ.
देहम्मि मच्चुविहुरे, सुसाणठाणे य पडिबंधो ?।	४२१ उ.
देहोवक्खरपरिभोयभोयणत्तेण भुत्ताइं।	४०१ उ.
दोसु वि गिण्हंति जलाइं तह य वरपुंडरीयाइं।	३६१ उ.
धणदेवसेट्ठिवसहो, कंबलसबला य एत्थुदाहरणं।	१९३ पू.
धणधन्नरयणसयणाइया य सरणं न मरणकालम्मि।	५२ पू.
धणसयणपरियणाइं, कम्मस्स फलं च हेउं च।	७३ उ.
धणसयणबलुम्मत्तो, निरत्थयं अप्प ! गव्विओ भमसि।	२० पू.
धन्ना कलत्तनियलाइ भंजिउं पवरसत्तसंजुत्ता।	४५७ पू.
धन्ना घरचारयबंधणाओ मुक्का चरंति निस्संगा।	४५८ पू.
धन्ना जिणवयणाइं, सुणंति धन्ना कुणंति निसुयाइं।	४५९ पू.
धन्ना पारद्धं ववसिऊण मुणिणो गया सिद्धिं।	४५९ उ.

धन्नेण तिलयसेट्ठी, पुत्तेहिं न ताइओ सगरो। ५३ उ.
धमियकयअग्गिवन्नो, मेरुसमो जइ पडेज्ज अयगोलो। ८९ पू.
धम्मं अत्थं कामं, तिन्नि वि कुद्धो जणो परिच्चयइ। ४३४ पू.
धम्मं कुणसु त्ति कहंतियव्व निवडेइ जरधाडी। ३४ उ.
धम्मच्छलेण केहिं, वि अन्नाणंधेहिं मंसगिद्धेहिं। २०५ पू.
धम्मफलमणुहवंतो, वि बुद्धिजसरूवरिद्धिमाईयं। ४८६ पू.
धम्मो न कओ साउं, न जेमियं नेय परिहियं सण्हं। ४९४ पू.
धयचिंधवेजयंतीपडायमालाउलाइं रम्माइं। ३४४ पू.
धरिऊण खुरे कड्ढंति पलवमाणं इमे देवा। ९६ उ.
धाडंति अंबरयले, मुंचंति य नारए अंबा। १०३ उ.
धारिज्जइ एंतो जलनिही वि कल्लोलभिन्नकुलसेलो। १७० पू.
धावइ निरत्थयं पि हु, निहणंतो भूयसंघायं। २७९ उ.
धीरपुरिसाण नमिमो, तियलोयनमंसणिज्जाणं। ४६४ उ.
धूमप्पभाइ किंचि वि, जाव निसग्गेण अइ उसिणा। ८६ उ.
धूलिभुरुंडियदेहो, किं सुहमणुहवइ किर बालो ?। २७७ उ.
न मुणंति मूढहियया, जिणवयणरसायणं च मोत्तूणं। ४१ पू.
न य बाहिज्जइ हरिसेहि नेय विसमावईविसाएहिं। ५२७ पू.
न य सोयइ अप्पाणं, किलिस्समाणं भवे एक्कं। ६० उ.
न लहइ सुइं हियकरिं, संसारुत्तारणिं जीवो। ४७४ उ.
न विरिंचइ पुण दुक्खं, सरणं ताणं च न हवइ खणं पि। २८ पू.
न हु अन्नजम्मनिम्मियसुहासुहो देव्वपरिणामो। १७० उ.
न हु जीवोऽवि अजीवो, कयपुव्वो वेयणाईहिं। ५१८ उ.
नंदणवणम्मि गोसीसचंदणं सुमणदाम सोमणसे। ३६७ पू.
नइपुलिणवालुयाए, जह विरइयअलियकरितुरंगेहिं। १२ पू.
नत्थि घरे मह दव्वं, विलसइ लोओ पयट्टइ छणो त्ति। ३०० पू.
नत्थि सुहं मोत्तूणं, केवलमभिमाणसंजणियं। ३१४ उ.
नयराइ वंतराणं, हवंति पुव्वुत्तरूवाइं। ३४० उ.
नयरारक्खियभावे, य बंधवहहणणजायणाईहिं। १४३ पू.
नरए नेरइयाणं, अहोनिसिं पच्चमाणाणं। १६७ उ.

नरतिरिएसु गयाइं, पलिओवमसागराइंऽणंताइं।	५१७ पू.
नरयतिरियाइएसुं, तस्स वि दुक्खाइं अणुहवंतस्स।	६६ पू.
नव चेव य धमणीओ, नवनउइं लक्ख रोमकूवाणं।	२५९ पू.
नव ण्हारूण सयाइ, नव धमणीओ य देहम्मि।	४१७ उ.
नवनवविलाससंपत्तिसुत्थियं जोव्वणं वहंतस्स।	३३ पू.
नवमी नमइ सरीरं, वसइ य देहे अकामओ जीवो।	३२० पू.
नवलक्खाण वि मज्झे, जायइ एगस्स दुण्ह व समत्ती।	२६४ पू.
नाणपवणेण सहिओ, सीलुज्जलिओ तवोमओ अग्गी।	४५३ पू.
नाणस्स केवलीणं, धम्मायरियस्स संघसाहूणं।	४९५ पू.
नाणाविहपावाइं, काउं किं कंदसि इयाणिं ?।	१४३ उ.
नाणासत्तीइ तुलंति मंदरं कंपयति महिवीढं।	३८० पू.
नाणी जाणइ काउं, कज्जमकज्जं च वज्जेउं।	५०३ उ.
नाणे आउत्ताणं, नाणीणं नाणजोगजुत्ताणं।	५०२ पू.
नाणेणं चिय नज्जइ, करणिज्जं तह य वज्जणिज्जं च।	५०३ पू.
नारयतिरियनरामरगईहिं चउहा भवो विणिद्दिट्ठो।	८२ पू.
नाव व्व जलहिमज्झे, जलनिवहं विविहछिड्डेहिं।	४४१ उ.
नासाएँ समं उट्ठं, बंधेउं सेल्लियं च खिविऊण।	१९९ पू.
निग्गयजीहा पगलंतलोयणा दीहरच्छियग्गीवा।	१९५ पू.
निग्गहिएहि कसाएहिं आसवा मूलओ निरुब्भंति।	४४५ पू.
निच्चं पमुइयसुरगणसंताडियदुंदुहिरवाइं।	३३७ उ.
निच्चंधयारतमसा, नीसेसदुहायरा सव्वे।	८७ उ.
निच्चम्मि उज्जमेज्जसु, धम्मे च्चिय बलिनरिंदो व्व।	२५ उ.
निच्चाइं न कस्सइ न, वि य कोइ परिरक्खिओ तेहि।	२२ उ.
निद्दयकसपहरफुडंतजंघवसणाहि गलियरुहिरोहा।	१९४ पू.
निद्दयपारिद्धियनिसियसेल्लनिब्भिन्नखिन्नदेहेण।	२०९ पू.
निप्फन्नप्पाओ पुण, जायइ सो अट्ठम्मि मासम्मि।	२६० पू.
नियमणोरहपायवफलाइं जइ जीव ! वंछसि सुहाइं।	४८९ पू.
नियया इंदियाइं, वल्लिनिउत्ता तुरंग व्व।	४४७ उ.
निरयम्मि दारुणाओ, एक्को च्चिय सहइ वियणाओ।	६१ उ.

निरयावाससुरालयअसंखदीवोदहीहिं कलियस्स।	४२७ पू.
निवडंतसीहनहरस्स तत्थ किं तुह दुहं कहिमो ?।	२२५ उ.
निवडंती य न एसा, रक्खिज्जइ चक्किणो वि सेन्नेण।	३५ पू.
निवडंतो वि हु कोइ वि, पढमं खिप्पइ महंतसूलाए।	१०१ पू.
निहए य तह निसन्ने, ओहयचित्ते विचित्तखंडेहिं।	१०४ पू.
निहओ निरुद्धसद्दो, गलयं वलिऊण जन्नेसु।	२०५ उ.
निहणं गओ सि बहुसो, वि जीव ! परकोउयकएण।	२३८ उ.
निहणिज्जंतो य चिरं, ठिओ सि ओलावयाईसु।	२३६ उ.
नीरं पि पियणतावणघोलणसोसाइकयदुक्खं।	१८० उ.
नीहरमाणं विंधंति तह य छिंदंति निक्करुणा।	१०० उ.
नीहरियअंतमाला, भिन्नकवाला लुयंगा य।	१६५ उ.
नेरइए चेव परोप्परं पि परसूहिं तच्छयंति दढं।	११८ पू.
नेहक्खयम्मि पावइ, पेच्छ पईवो वि निव्वाणं।	५१५ उ.
नेहनियलेहि बद्धा, न चयंति तहा वि तं जीवा।	५११ उ.
पंच य नरगावासा, चुलसीइलक्खाइं सव्वासु।	८४ उ.
पंचमियाए पन्ना, इंदियहाणी उ छट्ठीए।	३१८ उ.
पंचिंदियतिरिया वि हु, सीयायवतिव्वछुहपिवासाहिं।	१८९ पू.
पंडगवणम्मि गंधा, तुवराईणि य विमीसंति।	३६७ उ.
पउमदलदीहनयणा, अणंगधणुकुडिलभूलेहा।	२९१ उ.
पउमवरवेइयाइं, नाणासंठाणकलियाइं।	३४४ उ.
पक्खिभवेसु गसंतो, गसिज्जमाणो य सेसपक्खीहिं।	२३५ पू.
पच्छा अवसो उक्कत्तिऊण कह कह न खद्धो सि ?।	२१० उ.
पज्जंते उण झीणम्मि आउए निव्वडंततणुकंपे।	३९० पू.
पज्जलियजलणजालासु उवरि उल्लंबिऊण जीवंतो।	२२० पू.
पडिओ अन्नाणंधो, बद्धो खद्धो निरुद्धो य।	२३७ उ.
पडिकुंजरकढिणचिहुट्टदसणक्खयगलियपूयरुहिरोहो।	२२७ पू.
पडिकुक्कुडनहरपहारफुट्टनयणो विभिन्नसव्वंगो।	२३८ पू.
पडिवज्जिऊण चरणं, जं च इहं केइ पाणिणो धन्ना।	३२४ पू.
पढमं अणिच्चभावं, असरणयं एगयं च अन्नत्तं।	९ पू.

पढमदसा बीया उ, जाणेज्जसु कीलमाणस्स। ३१७ उ.
पणपन्नाइ परेणं, महिला गब्भं न धारए उयरे। ३२१ पू.
पणमामि ताण पयपंकयाइं धणखंदपमुहसाहूणं। ४६३ पू.
पणसत्तरीइ परओ, पाएण पुमं भवेऽबीओ। ३२१ उ.
पत्तं अणंतसो विहवाइममत्तदोसेणं। ५०९ उ.
पत्तधणुनिरयपाला, असिपत्तवणं विउव्वियं काउं। ११२ पू.
पत्तेयं चिय मणिरयणघडियअट्ठसयपडिमकलिएणं। ३३९ पू.
पत्तेयं पत्तेयं, कम्मफलं नियमणुहवंताणं। ५८ पू.
पत्तो वि हु पडिपुन्नो, रयणनिही हारिओ तेहिं। ४७९ उ.
पत्थोसहाइनिरओ, त्ति केवलं नियइ नयणेहिं। २८५ उ.
पब्भारमुम्मुही सायणी य दसमी य कालदसा। ३१६ उ.
पभणंति तओ दीणा, मा मा मारेह सामि ! पहु ! नाह !। १२३ पू.
पयणुकसाया भुवणो, व्व भद्दया जंति सुरलोयं। ३४८ उ.
परओ निसग्गओ च्चिय, दुसहमहासीयवेयणाकलिया। ८७ पू.
परकीय च्चिय भज्जा, जुज्जइ निययाइ माइभगिणीओ। १३७ पू.
परजुवइरमणपरदव्वहरणवहवेरकलहनिरयाणं। २९९ पू.
परदव्वाण विणासे, य कुणसि पोक्करसि पुण इण्हिं। १३३ उ.
परधणलुद्धो बहुदेसगामनगराइं भंजेसि। १३२ उ.
परमतिमिसंधयारे, अमेज्झकोत्थलयमज्झे व। २६७ उ.
परमत्थओ य तेसिं, सरूवमेवं विभावेज्जा। १७९ उ.
परमाहम्मियजणियाउ एवमाई य वियणाओ। १६२ उ.
पररिद्धिं अहियं पेच्छिऊण झिज्जंति अंगाइं। ३८३ उ.
परिणामिज्जइ सीएसु सो वि हिमपिंडरूवेण। ८९ उ.
परिसक्किरकिमिजालो, गओ सि तत्थेव पंचत्तं। २२७ उ.
पलवंते खरसद्दं, खरस्सरा निरयपाल त्ति। ११९ उ.
पवणो व्व गयणमग्गे, अलक्खिओ भमइ भववणे जीवो। ७६ पू.
पसुघाएणं नरगाइएसु आहिंडिऊण पसुजम्मे। २०७ पू.
पसुणो व्व नारए वहभएण भीए पलायमाणे य। १२० पू.
पहरंति चवेडाहिं, चित्तयवयवग्घसीहरूवेहिं। १५३ पू.

पाएण होंति तिरिया, तिरियगई तेणऽओ वोच्छं।	१७८ उ.
पाडंति वज्जमयवागुरासु पिट्टंति लोहलउडेहिं।	१५१ पू.
पाणितलाइसु ससिसूरचक्कसंखाइलक्खणोवेया।	२९४ पू.
पाणिवहेणं भीमो, कुणिमाहारेण कुंजरनरिंदो।	१७७ पू.
पायतलमुवगयाणं, जंघाबलकारिणीणीणुवग्घाए।	४१२ पू.
पावं कयमिण्हिं ते, ण्हाया धोया तडम्मि ठिया।	६२ उ.
पावंति जए अजसं, उम्मायं अप्पणो गुणब्भंसं।	४३५ पू.
पावंति तिरियभावं, भमंति तत्तो भवमणंतं।	१७६ उ.
पावंति भव्वजीवा, नट्ठं व विवेयवररयणं।	४ उ.
पावपमायवसेहिं, न संचिओ जेहिं जिणधम्मो।	४९६ उ.
पावभरेणक्कंता, नीरे अयगोलउ व्व गयसरणा।	९२ पू.
पावाइं बहुविहाइ, करेइ सुयसयणपरियणणिमित्तं।	६१ पू.
पावेसि पुराहिवनंदणो व्व धूया व नरवइणो।	५०० उ.
पावेसु रमइ लोओ, आउरवेज्जो व्व अहिएसु।	४३३ उ.
पावोदएण पुणरवि, मिलंति तह चेव पारयरसो व्व।	१२२ पू.
पासायसालसमलंकियाइं जइ नियसि कत्थइ थिराइं।	१९ पू.
पासेसु जलियजलणेसु कूडजंतेसु आमिसलवेसु।	२३७ पू.
पाहुणयभोयणेसु य, कओ सि तो पोसिउं बहुसो।	२०४ उ.
पिंडेसि असंतुट्ठो, बहुपावपरिग्गहं तया मूढो।	१३८ पू.
पिट्ठं घट्ठं किमिजालसंगयं परिगयं च मच्छीहिं।	१९० पू.
पिट्ठिइमंसक्खाई, रायसुओ बोहिओ मुणिणा।	२२२ उ.
पित्तवसमंससोणियसुक्कट्ठिपुरीसमुत्तमज्झम्मि।	२६९ पू.
पियपुत्तस्स वि जणणी, खायइ मंसाइं भवपरावत्ते।	४३० पू.
पियपुत्तो वि हु मच्छत्तणं पि जाओ सुमित्तगहवइणा।	२३४ पू.
पियसि सुरं गायंतो, वक्खाणंतो भुयाहिं नच्चंतो।	१४१ पू.
पीडिज्जइ सो तत्तो, घडियालयसंकडे अमायंतो।	९४ पू.
पीलिज्जंतो हत्थि, व्व घाणए विरसमारसइ।	९४ उ.
पुक्खरिणीसयसोहिय, उववणउज्जाणरम्मदेसेसु।	३३५ पू.
पुज्जाण वि पुज्जयरा, नाणी य चरित्तजुत्ता य।	५०५ उ.

पुढवी फोडणसंचिणणहलमलणखणणाइदुत्थिया निच्चं।	१८० पू.
पुणरवि वियणाउ उईरयंति विविहप्पयारेहिं।	१४६ उ.
पुत्ताइसु पडिबद्धा, अन्नाणपमायसंगया जीवा।	१८५ पू.
पुत्तो जणओ जणओ, वि नियसुओ बंधुणो वि होंति रिऊ।	४२९ पू.
पुरओ उण काणं कुज्जियं च असुइं च बीभत्थं।	३९२ उ.
पुरओ गब्भे य ठिइं, दट्ठुं दुट्ठाइ रासहीए वा।	३९५ पू.
पुरओ परघरदासत्तणेण विण्णायउयरभरणाणं।	३९४ पू.
पुव्वदिसाए उ जुगं, तो दुलहो ताण संजोगो।	४६९ उ.
पुहईऍं अइक्कंता, कोऽसि तुमं ? को य तुह विहवो ?।	२१ उ.
पूओवगरणहत्थो, नंदापोक्खरिणिविहियजलसोओ।	३७३ पू.
पेच्छइ न उच्छरंतं, जराबलं जोव्वणदुमग्गिं।	३२ उ.
पेसिं पंचसयगुणं, कुणइ सिराणं च सत्तसए।	२५८ उ.
पेसुन्नाईणि करेसि हरिसिओ पलवसि इयाणिं।	१३१ उ.
पोयंति चियासु दहंति निद्दयं नारए रुद्दा।	१०७ उ.
फलिहरयणामयाइं, होंति कविट्ठद्धसंठियाइं च।	३४१ पू.
बंधंति पासएहिं, खिवंति तह वज्जकूडेसु।	१५० उ.
बंधइ कम्मं जीवो, भुंजेइ फलं तु सेसयं तु पुणो।	७३ पू.
बंधणताडणडंभणदुहाइं तिरिएसुऽणंताइं।	२४७ उ.
बडिसग्गनिसियआमिसलवलुद्धो रसणपरवसो मच्छो।	२३३ पू.
बत्तीसपत्तबद्धाउ विविहनाडयविहीउ पेच्छंता।	३८२ पू.
बद्धो पासे कूडेसु निवडिओ वागुरासु संमूढो।	२१० पू.
बलरूवरिद्धिजोव्वणपहुत्तणं सुभगया अरोयत्तं।	२४ पू.
बलसारपुहइवालो, निव्विन्नो भवनिवासस्स।	२८१ उ.
बहुपुन्नंकुरनियरंकियं व सिरिवीरपयकमलं।	१ उ.
बहुपुन्नपावणिज्जाइं पुन्नजणसेवियाइं च।	३३८ उ.
बहुसत्तिजुओ सुरकोडिपरिवुडो पविपयंडभुयदंडो।	४५ पू.
बहुसयणाण अणाहाण वा वि निरुवायवाहिविहुराणं।	२९ पू.
बहुसुरहिदव्वमीसियसुयंधगोसीसरसनिसित्ताइं।	३३३ पू.
बारस पंसुलियकरंडया इहं तह छ पंसुलिए।	४०६ उ.

बालतवोकम्मेण य, जीवा वच्चंति दियलोयं।	३४६ उ.
बालत्तणम्मि न तरइ, गमइ रुयंतो च्चिय वराओ।	२७६ उ.
बालस्स वि तिव्वाइं, दुहाइं दट्ठूण नियययतणयस्स।	२८१ पू.
बाला किड्डा मंदा, बला य पन्ना य हाइणि पवंचा।	३१६ पू.
बाहुबलकारिणीओ, उवघाए कुच्छिउयरवियणाओ।	४१५ पू.
बिडिसेण गले गहिओ, मुणिणा मोयाविओ कह वि।	२३४ उ.
बीयं सुक्कं तह सोणियं च ठाणं तु जणणिगब्भम्मि।	४०५ पू.
बीयट्ठाणमुवट्ठंभहेयवो चिंतिउं सरूवं च।	४०४ पू.
बीहेइ राइतक्करअंसहराईण निच्चं पि।	२८३ उ.
भंजंति अंगुवंगाणि ऊरू बाहू सिराणि करचरणे।	१०८ पू.
भग्गं इंदियसेन्नं, धिइपायारं विलग्गेहिं।	४६० उ.
भज्जं रयणाणि व अवहिऊण मूढो पलाएइ।	३८६ उ.
भज्जइ अंगं वाएण होइ सिंभो वि अइपउरो।	३११ उ.
भणसि तया अम्हाणं, भक्खमियं निम्मियं विहिणा।	१२८ उ.
भद्दं बहुस्सुयाणं, बहुजणसंदेहपुच्छणिज्जाणं।	५०६ पू.
भमिओ सहयारवणेसु पिययमापरिगएण सच्छंदं।	२४० पू.
भयसोगा अन्नाणा, वक्खेव कुऊहला रमणा।	४७३ उ.
भरवहणखुहपिवासाहि दुक्खिया मुक्कनियजीवा।	१९३ उ.
भरहाहिवछत्तसिरा, कज्जलघणकसिणमिउकेसा।	२९२ उ.
भरिउं पिपीलियाईण सीवियं जइ मुहं तुहऽम्हेहिं।	१४० पू.
भवचक्कम्मि भमंतो, एक्को च्चिय सहइ दुक्खाइं।	६४ उ.
भवणाइ उववणाइं, सयणासणजाणवाहणाईणि।	२२ पू.
भवदुहनिव्विण्णाण, वि जायइ जंतूण कइया वि।	६ उ.
भवभमणपरिस्संतो, जिणधम्ममहातरुम्मि वीसमिओ।	४८३ पू.
भवभावणनिस्सेणिं, मोत्तुं च न सिद्धिमंदिरारुहणं।	६ पू.
भवभावणवररयणावलीइ कीरउ अलंकारो।	५३१ उ.
भवभावणा य एसा, पढिज्जए बारसण्ह मज्झम्मि।	८ पू.
भवरन्नम्मि अणंते, कुमग्गसयभोलिएण कहकह वि।	४६५ पू.
भावियचित्तो एयाए चिट्ठए अमयसित्तो व्व।	५२७ उ.

भिन्नत्ते भावाणं, उवयारऽवयारभावसंदेहे।	७५ पू.
भिसिणीबिसाइं सल्लइदलाइं सरिऊण जुन्नघासस्स।	२२६ पू.
भुंजंति नारए तह, वालुयनामा निरयपाला।	११५ उ.
भुंजंति निग्घिणेहिं, दिज्जंति बलीसु य न वग्घा।	२०६ उ.
भुंजंति समं सुरसुंदरीहिं अविचलियतारुन्ना।	३७९ उ.
भुंजइ अभोज्जपेज्जं, बालो अन्नाणदोसेण।	२७८ उ.
भुंजसि फलाइं रे दुट्ठ ! अम्ह ता एत्थ को दोसो ?।	१४५ उ.
भुत्तो य अणज्जेहिं, जं मच्छभवे तयं सरसु।	२२९ उ.
भुत्तोऽसि भुंजिउं सूयरत्तणे किह न तं सरसि ?।	२२० उ.
भुयगाइडंकियाण य, कुणइ तिगिच्छं व मंतं वा ?।	२४६ उ.
भुवणम्मि जाव वियरइ, जिणधम्मो ताव भव्वजीवाणं।	५३१ पू.
भुवणे वि नत्थि सरणं, एक्कं जिणसासणं मोत्तुं।	२६ उ.
भोत्तूण चक्किरिद्धिं, वसिउं छक्खंडवसुहमज्झम्मि।	६७ पू.
मंगलतूररवेहिं, पढंततूरबंदिवंदेहिं।	३५८ उ.
मंसरसम्मि य गिद्धो, जइया मारेसि निग्घिणो जीवे।	१२८ पू.
मइलम्मि जीवभवणे, विइन्ननिब्भिच्चसंजमकवाडे।	४५५ पू.
मज्झम्मि बंधवाणं, सकरुणसद्देण पलवमाणाणं।	५७ पू.
मणवयणकायजोगा, सुनियत्ता ते वि गुणकरा होंति।	४४८ पू.
मणिमयकलसाईयं, भिंगाराई य उवगरणं।	३६० उ.
मणिवलयकणयकंकणविचित्तआहरणभूसियकरग्गा।	३७७ पू.
मणुयत्तखित्तमाईहि विविहहेऊहिं लब्भए सो य।	४६७ पू.
मणुयत्तणं तु दुलहं, पुणो वि जीवाणऽउन्नाणं।	४७० उ.
मणुयाउयं निबंधइ, जह धरणीधरो सुनंदो य।	३२५ उ.
मणुयाण दस दसाओ, जाओ समयम्मि पुण पसिद्धाओ।	३१५ पू.
मत्तो तत्थेव य नियपमायओ निहयरुक्खगयसिंगो।	२१६ पू.
मन्नामि सुइं पवरं, जं जिणधम्ममम्मि उवयरइ।	४२४ उ.
मयरहरो व्व जलेहिं, तह वि हु दुप्पूरओ इमो अप्पा।	४०२ पू.
मरइ कुरंगो फुट्टंतलोयणो अहव थेवजले।	२१७ उ.
महघोसं कुणमाणा, रुंभंति तहिं महाघोसा।	१२० उ.

महुविप्पो व्व हणिज्जइ, अणंतसो जन्नमाईसु।	२०७ उ.
मा जीव ! तम्मि वि तुमं, पमायवणहुयवहं देसु।	४८३ उ.
मा हरसु परधणाइं, ति चोइओ भणसि धिट्ठयाए य।	१३४ पू.
माऊॅय अप्पणोऽवि य, वेयणमउलं जणेमाणो।	२७३ उ.
मागहवरदामपभासतित्थतोयाइं मट्टियं च तओ।	३६२ पू.
माणुस्सखेत्त जाई, कुलरूवारोग्ग आउयं बुद्धी।	४६८ पू.
मायाइ वणियदुहिया, लोभम्मि य लोभनंदो त्ति।	४३८ उ.
मायापिईहिं सहवड्ढिएहिं मित्तेहिं पुत्तदारेहिं।	२३ पू.
मायावाहसमारद्धगोरिगेयज्झुणीसु मुज्झंतो।	२१२ पू.
मारेउं महिसत्ते, भुंजइ तेण वि कुडुंबेण।	१९७ उ.
मीरासु सुंठिएसुं, कंडूसु य पयणगेसु कुंभीसु।	१०९ पू.
मुत्तस्स सोणियस्स य, पत्तेयं आढयं वसाए उ।	४१८ पू.
मुत्ताहलमालं पिव, रएमि भवभावणं विमलं।	२ उ.
मुद्दारयणंकियसयलअंगुली रयणकडिसुत्ता।	३७७ उ.
मुद्धजणवंचणेणं, कूडतुलाकूडमाणकरणेण।	२४८ पू.
मुहकडुयाइं अंते, सुहाइं गुरुभासियाइं सीसेहिं।	५२२ पू.
मूढा य महारंभं, अइघोरपरिग्गहं पणिंदिवहं।	९१ पू.
मेहकुमारस्स व दुहमणंतसो तुह समुप्पन्नं।	२२८ उ.
मोत्तुं अट्टज्झाणं, भावेज्ज सया भवसरूवं।	७ उ.
मोत्तुं कम्माइ तुमं, मा रूससु जीव ! जं भणियं।	१६८ उ.
मोत्तुं जिणिंदधम्मं, न भवंतरगामिओ अन्नो।	७० उ.
मोत्तुं विहवं सयणं, च मच्चुणा हीरए एक्को।	५७ उ.
मोत्तूण नियसहाए, धणो व्व धम्मम्मि उज्जमसु।	८१ उ.
मोहनिवनिबिडबद्धो, कत्तो वि हु कड्ढिउं असुइगब्भे।	२५३ पू.
मोहसुहडाहिमाणो, लीलाए नियत्तिओ जेहिं।	४६३ उ.
रंक व्व धणं कुणह महव्वयाण इण्हिं पि पत्ताणं।	४९९ उ.
रइरमणंदोलयसरिससवण अद्धिंदुपडिमभालयला।	२९२ पू.
रत्तारत्तवईणं, महानईणं तओऽवराणं पि।	३६३ पू.
रन्ने दवग्गिजालावलीहिं सव्वंगसंपलित्ताणं।	२०८ पू.

रमणीण सज्जणाण य, हसणिज्जा सोअणिज्जा य। २९७ उ.
रमणीयणहसणिज्जं, एइ असरणस्स वुड्ढत्तं। ३६ उ.
रमियाइं तत्थ रमणिज्जकप्पतरुगहणदेसेसु। ३९४ उ.
रयणकणयाइवरिसं, अन्ने कुव्वंति सीहनायाइं। ३७० पू.
रयणप्पभाइयाओ, एयाओ तीइ सत्त पुढवीओ। ८३ पू.
रयणमयपुत्तियाओ, व सुवन्नकंतीओ तत्थ भज्जाओ। ३९२ पू.
रयणविणिम्मियपुत्तलियखंभसयणासणेहिं च। ३३१ उ.
रयणुक्कडमउडसिरा, चूडामणिमंडियसिरग्गा। ३७५ उ.
रसहरणिनामधिज्जाण जाणऽणुग्गहविघाएसु। ४१० उ.
रागद्दोसकसाया, पंच पसिद्धाइं इंदियाइं च। ४३२ पू.
रागद्दोसाण धिरत्थु जाण विरसं फलं मुणंतो वि। ४३३ पू.
रायनिओए कुंढत्तणेण लंचाइगहणाइं। १४२ उ.
रायसुयसेट्ठितणओ गंधमहुप्पियमहिंदा य। ४४० उ.
रुंभंति ते वि तवपसमझाणसन्नाणचरणकरणेहिं। ४४६ पू.
रुद्दोवरुद्दकाले य महाकाले त्ति आवरे। ९७ उ.
रुप्पकणयाइ वत्थुं, जह दीसइ इंदयालविज्जाए। १७ पू.
रे रे गिण्हह गिण्हह, एयं दुट्ठं ति जंपंता। ९५ उ.
रे रे तुरियं मारह, छिंदह भिंदह इमं पावं। ९९ उ.
रे रे तुह पुव्वभवे, संतुट्ठी आसि मंसरसएहिं। १४८ पू.
रोगबहुलं कुडुंबं, ओसहमोल्लाइयं नत्थि। ३०३ उ.
रोगाइआवईसु य, इय भावंताण न विमोहो। ५१६ उ.
रोयजरामच्चुमुहागयाण बलिचक्किकेसवाणं पि। २६ पू.
लज्जूए अ खिविज्जइ, करहो विरसं रसंतोऽवि। १९९ उ.
लद्धं पि धणं भोत्तुं, न पावए वाहिविहुरिओ अन्नो। २८५ पू.
लद्धम्मि जीव ! तम्मि वि, जिणधम्मे किं पमाएसि ?। ४७६ उ.
लद्धम्मि वि जिणधम्मे, जेहिं पमाओ कओ सुहेसीहिं। ४७९ पू.
लद्धुं पि दुलहधम्मं, सुहेसिणा इह पमाइयं जेण। ४९७ पू.
ललियंग-धणायर-वज्जसार-वणिउत्त-सुंदरप्पमुहा। ४४२ पू.
लायन्नरूवनिहिणो, दंसणसंजणियजणमणाणंदा। २९५ पू.

लावयतित्तिरअंडयरसवसमाईणि पियसि अइगिद्धो।	१३० पू.
लुद्धो फासम्मि करेणुयाए वारीए निवडिओ दीणो।	२२३ पू.
लोओ य गामकूडत्तणाइभावेसु संतविओ।	१४४ उ.
लोभेणऽवहरियमणो, हारइ कज्जं समायरइ पावं।	४३७ पू.
लोयम्मि अणाएज्जो, हसणिज्जो होइ सोयणिज्जो य।	३१२ पू.
लोलंति घुलंति लुढंति जंति निहणं पि छुहवसगा।	१८६ उ.
लोहीसु य पलवंते, पयंति काला उ नेरइए।	१०९ उ.
वइविवरविहियझंपो, गत्तासूलाइ निवडिओ संतो।	२१५ पू.
वक्खारगिरीसु वणम्मि भद्दसालम्मि तुवराइं।	३६६ उ.
वच्चंति अहो जीवा, निरए घडियालयाणंतो।	९२ उ.
वच्चंति कहिं पि वि नियकम्मपलयानिलुक्खित्ता।	१४ उ.
वच्चंति के वि नरयं, अन्ने उण जंति सुरलोयं।	२६३ उ.
वच्चइ पभायसमए, अन्नन्नदिसासु सव्वो वि।	७७ उ.
वज्जंतवेणुवीणामुइंगरवजणियहरिसाइं।	३३६ उ.
वज्जरिसहसंघयणा, समचउरंसा य संठाणा।	२९४ उ.
वड्ढंते उण अत्थे, इच्छा वि कह वि तह दूरं।	२८४ पू.
वड्ढइ घरे कुमारी, बालो तणओ विढप्पइ न अत्थे।	३०३ पू.
वत्थाहारविलेवणतंबोलाईणि पवरदव्वाणि।	४२२ पू.
वन्नियभवणसमिद्धीओऽणंतगुणरिद्धिसमुदयजुयाइं।	३४५ पू.
वरकुसुमदामचंदणचच्चियपउमप्पिहाणेहिं।	३६८ उ.
वरगंधवट्टिभूयाइं सयलकामत्थकलियाइं।	३३४ उ.
वरवइरवलियमज्झा, उन्नयकुच्छी सिलिट्ठमीणुयरा।	२८९ पू.
वरवसहुन्नयखंधा, चउरंगुलकंबुगीवकलिया य।	२९० पू.
वरसुरहिगंधकयतणुविलेवणा सुरहिनिम्माया।	३७८ उ.
वलिपलियदुरवलोयं, गलंतनयणं घुलंतमुहलालं।	३६ पू.
वसणच्छेयं नासाइविंधणं पुच्छकन्नकप्परणं।	२४७ पू.
वसपूयरुहिरकेसट्ठिवाहिणिं कलयलंतजउसोत्तं।	११६ पू.
वसमंसजलणमुम्मुरपमुहाणि विलेवणाणि उवणेंति।	१६० पू.
वसहतुरगाइणो खिज्जिऊण सुइरं विवज्जंति।	१९१ उ.

वसिउं एगकुडुंबे, अन्नन्नगईसु वच्चंति।	८० उ.
वसिऊण जंति सूरोदयम्मि ससमीहियदिसासु।	७८ उ.
वाऊ वीयणपिट्टणऊसिणाणिलसत्थकयदुत्थो।	१८१ उ.
वायंति दुंदुहीओ, पढंति बंदि व्व पुण अन्ने।	३६९ उ.
वारिज्जंतो वि हु गुरुयणेण तइया करेसि पावाइं।	१७३ पू.
वारीओ व्व गयवरा, घरवासाओ विणिक्खंता।	४५७ उ.
वाससयाउयमेयं, परेण जा होइ पुव्वकोडीओ।	३२२ पू.
वासारत्ते तरुभूमिनिस्सिया रण्णजलपवाहेहिं।	२४५ पू.
वाहिज्जंता महिसा, पेच्छसु दीणं पलोयंति।	१९५ उ.
वाहिज्जंति तहा वि हु, रासहवसहाइणो अवसा।	१९० उ.
वाहिज्जंति न कहमवि, मणम्मि एवं विभावेंता।	५०७ उ.
वाहिज्जंते महिसत्तणम्मि जह खुड्डओ विवसो।	१९६ उ.
वाहेऊण सुबहुयं, बद्धा कीलेसु छुहपिवासाहिं।	१९१ पू.
विंझरमियाइ सरिउं, झिज्जंतो निबिडसंकलाबद्धो।	२२४ पू.
विगएहि तेहि वि पुणो, जीवा दीणत्तणमुवेंति।	१६ उ.
विगलिंदिएसु जीवा, वच्चंति पियंगुवणिओ व्व।	१८८ उ.
विगलिंदिया अवत्तं, रसंति सुन्नं भमंति चिट्ठंति।	१८६ पू.
विजएसु जाइं मागहवरदामपभासतित्थाइं।	३६५ उ.
विज्जं मंतं साहेमि देवयं वा वि अच्चेमि।	३०६ उ.
विज्झवइ जमसमीरो, ते वि पईवव्वऽसुररिउणो।	४७ उ.
विद्धो बाणेण उरम्मि घुम्मिउं निहणमणुपत्तो।	२१३ उ.
विद्धो सिरम्मि सियअंकुसेण वसिओ सि गयजम्मे।	२२४ उ.
विन्नाया भावाणं, जीवो देहाइयं जडं वत्थुं।	७१ पू.
वियणाओॅ तस्स देहे, नवरं वड्ढंति अहियाओ।	२८ उ.
वियरालवज्जकंटयभीममहासिंबलीसु य खिवंति।	११९ पू.
विविहा तिरिया दुक्खं, च बहुविहं केत्तियं भणिमो ?।	२४३ उ.
विसयामिसम्मि गिद्धो, भवे भवे वच्चइ न तत्तिं।	४०२ उ.
विहवाइ बज्झहेउब्भवं च निरहेउओ जीवो।	७२ उ.
विहवाइवत्थुनिवहे, किं मुज्झसि जीव ! जाणंतो ?।	१८ उ.

विहवीण दरिद्दाण य, सकम्मसंजणियरोयतवियाणं।	३० पू.
विहियपमाया केवलसुहेसिणो चिन्नपरधणा विगुणा।	१९६ पू.
वुज्झंति असंखा तह, मरंति सीएण विज्झडिया।	२४५ उ.
वुड्ढत्तम्मि य भज्जा, पुत्ता धूया वधूयणो वा वि।	३१३ पू.
वेमाणियदेवाणं, होंति विमाणाइं सयलाइं।	३४२ उ.
वेयरणिं नाम नइं, अइखारुसिणं विउव्वेउं।	११६ उ.
वेयरणिनरयपाला, तत्थ पवाहंति नारए दुहिए।	११७ पू.
वेयविहिया न दोसं, जणेइ हिंस त्ति अहव जंपेसि।	१२९ पू.
वोच्छामि पुणो किंचि वि, ठाणस्स असुन्नयाहेउं।	३१० उ.
संकडमुहाइं घडियालयाइं किर तेसु भणियाइं।	९० उ.
संकुइयवली पुण अट्ठमीए जुवईण य अणिट्ठो।	३१९ उ.
संखेज्जवित्थराइं, होंति असंखेज्जवित्थराइं च।	३४३ पू.
संझब्भरायसुरचावविब्भमे घडणविहडणसरूवे।	१८ पू.
संतावुव्वेयविघायहेउरूवाणि दंसंति।	१५९ उ.
संपज्जंति सुहाइं, जइ धम्मविवज्जियाण वि नराणं।	४९२ पू.
संपुन्नससहरमुहा, पाउसगज्जंतमेहसमघोसा।	२९३ पू.
संवरियासवदारत्तणम्मि जाणेज्ज दिट्ठंता।	४५० उ.
संवेअमुवगयाणं, भावंताणं भवण्णवसरूवं।	३ पू.
संसारभावणाचालणीइ सोहिज्जमाणभवमग्गे।	४ पू.
संसारमसुहयं चिय, विविहं लोगस्सहावं च।	९ उ.
संसारसरूवं चिय, परिभावन्तेहिं मुक्कसंगेहिं।	५ पू.
संसारो दुहहेऊ, दुक्खफलो दुसहदुक्खरूवो य।	५११ पू.
सकयमणुभुंजमाणे, कीस जणो दुम्मणो होइ ?।	१७१ उ.
सकयाइं च दुहाइं, सहसु उइन्नाइं नियसमयम्मि।	५१८ पू.
सकलत्तामरनिव्विवरविहियकीलाससहस्साइं।	३३५ उ.
सक्कारवसेण सुहाइ होंति कत्थइ खणद्धेणं।	४२३ उ.
सच्छंदयारिणो काणणेसु कीलंति सह कलत्तेहिं।	३८१ पू.
सट्ठसयं अन्नाण वि, सिराणऽहोगामिणीण तहा।	४११ उ.
सट्ठसयं तु सिराणं, नाभिप्पभवाण सिरमुवगयाणं।	४१० पू.

सट्ठसयं संधीणं, मम्माण सयं तु सत्तहियं।	४०९ उ.
सत्तमियाइ दसाए, कासइ निट्ठुहइ चिक्कणं खेलं।	३१९ पू.
सत्तमियाओ अन्ना, अट्ठमिया नत्थि निरयपुढवि त्ति।	१७४ पू.
सत्ताहं कललं होइ, सत्ताहं होइ अब्बुयं।	२५५ पू.
सद्दूलहणू बिंबीफलाहरा ससिसमकवोला।	२९० उ.
सबला नेरइयाणं, उयराओ तह य हिययमज्झाओ।	१०६ पू.
समए य अइदुलंभं, भणियं मणुयत्तणाईयं।	४६७ उ.
समयक्खेत्ते भरहाइगंगसिंधूण सरियाणं।	३६२ उ.
समुवट्ठियम्मि मरणे, ससंभमे परियणम्मि धावंते।	४३ पू.
सम्मद्दिट्ठीण वि गब्भवासपमुहं दुहं धुवं चेव।	३९७ पू.
सयणपराभवसुन्नत्तवाउसिंभाइयं जरासेन्नं।	३९ पू.
सयणाइवित्थरो मह, एत्तियमेत्तो त्ति हरिसियमणेण।	६५ पू.
सयणाणं मज्झगओ, रोगाभिहओ किलिस्सइ इहेगो।	५६ पू.
सयणोऽवि य से रोगं, न विरिंचइ नेय अवणेइ।	५६ उ.
सयमवि य पहरविहुरेण सरसु जह जूरियं हियए।	२११ उ.
सयमेव किणियदुक्खो, रूससि रे जीव ! कस्सिण्हिं ?।	१७३ उ.
सयलतिलोयपहूणो, उवायविहीजाणगा अणंतबला।	४४ पू.
सरपहरवियारियउयरगलियगब्भं पलोइउं हरिणिं।	२११ पू.
सरिऊण पंजरगओ, बहुं विसन्नो विवन्नो य।	२४० उ.
सवणावहिओ अन्नाणमोहिओ पाविओ निहणं।	२१२ उ.
सवणोवग्गह सद्धा, संजमो य लोयम्मि दुलहाइं।	४६८ उ.
सविलासजोव्वणभरे, वट्टंतो मुणइ तणसमं भुवणं।	३२ पू.
सव्वत्थ विइन्नदसद्धवन्नकुसुमोवयाराइं।	३३२ उ.
सव्वप्पणा अणिच्चो, नरलोओ ताव चिट्ठउ असारो।	११ पू.
सव्वरयणामयाइं, अट्टालयभूसिएहिं तुंगेहिं।	३२९ पू.
सव्वस्स वि परकीयं, सहोयरं कस्सइ न दव्वं।	१३४ उ.
सव्वाइं तुवरओसहिसिद्धत्थयगंधमल्लाइं।	३६४ उ.
सव्वाओ समंतेण, अहो अहो वित्थरंतीओ।	८३ उ.
सव्वाणि सव्वलोए, अणंतखुत्तो वि रूविदव्वाइं।	४०१ पू.

सव्वो पुव्वकयाणं, कम्माणं पावए फलविवागं।	१६९ पू.
सहियव्वाइं सया वि हु, आयहियं मग्गमाणेहिं।	५२२ उ.
सा उप्पज्जइ अरई, सुराण जं मुणइ सव्वन्नू।	३९५ उ.
सा का वि जीई न गणइ देवं धम्मं गुरुं तत्तं।	२८२ उ.
साडणपाडणतोत्तयविंधण तह रज्जुतलपहारेहिं।	१०५ पू.
सामा नेरइयाणं, कुणंति तिव्वाओ वियणाओ।	१०५ उ.
सामाणियसुरपमुहो, तत्तो सव्वो वि परियणो तस्स।	३५३ पू.
सावत्थीवणिएहिं, व तिरियाउं बज्झए एवं।	२४९ उ.
साहंति सिद्धिसोक्खं, देवगईए व वच्चंति।	३२४ उ.
सिंचइ उरत्थलं तुह, अंसुपहवाहेण किं पि रुयमाणं।	५१ पू.
सिढिलेसि आयरं पुण, अणंतसोक्खम्मि मोक्खम्मि।	५१० उ.
सिद्धंतसिंधुसंगयसुजुत्तिसुत्तीण संगहेऊणं।	२ पू.
सिद्धाययणे पूयइ, वंदइ भत्तीए जिणबिंबे।	३७३ उ.
सिरिअभयसूरिसीसेहि, रइयं भवभावणं एयं।	५२५ उ.
सिरितिलयइब्भतणओ, अभिग्गहं कुणइ गब्भत्थो।	२७२ उ.
सिरिनेमिजिणाईहिं, वि तह विहिअं धीरपुरिसेहिं।	५ उ.
सीओसिणाइ वियणा, भणिया अन्ना वि दसविहा समए।	१६४ पू.
सीहासणे तहिं चिय, अत्थाणे विसइ इंदो व्व।	३७४ उ.
सुइ चक्खुघाणजीहाणऽणुग्गहो होइ तह विघाओ य।	४११ पू.
सुक्कं पिउणो माऊए सोणियं तदुभयं पि संसट्ठं।	२५४ पू.
सुक्कस्स अद्धकुलओ, दुट्ठं हीणाहियं होज्जा।	४१९ उ.
सुणमाणाण वि सुहयाइं सेवमाणाण किं भणिमो ?।	३४५ उ.
सुणयम्मि तओ तत्थ वि, विद्धो सेल्लेण निहण गओ।	२२१ उ.
सुत्तविउद्ध व्व खणेण उट्ठिओ नियइ पासाइं।	३५२ उ.
सुत्ताणुगया वररयणमालिया निम्मिया एसा।	५३० उ.
सुबहुं वेल्लंतो जं, मओऽसि तं किं न संभरसि ?।	२१६ उ.
सुमराविज्जंति सुरेहिं नारया पुव्वदवदाणं।	१४९ उ.
सुयमाणीए माऊइ सुयइ जागरइ जागरंतीए।	२६५ पू.
सुरकयपव्वयगुहमणुसरंति निज्जलियसव्वंगा।	१५५ उ.

सुसिलिट्ठगूढगुप्फा, एणीजंघा गइंदहत्थोरू।	२८८ पू.
सुहदुक्खकारणाओ, अप्पा मित्तं अमित्तं वा।	१७२ उ.
सुहियाइ हवइ सुहिओ, दुहियाए दुक्खिओ गब्भो।	२६५ उ.
सूईहिं अग्गिवन्नाहिं भिज्जमाणस्स जंतुणो।	२६८ पू.
सूलग्गे दाऊणं, भुंजंति जलंतजलणम्मि।	१५१ उ.
सूलारोवणनेत्तावहारकरचरणछेयमाईणि।	१४२ पू.
सेयवियानरनाहो, सेट्ठी य धणंजओ विसालाए।	३४७ पू.
सेवंति गुरुं धन्ना, इच्छंता नाणचरणाइं।	५२१ उ.
सेसा पुण एमेव य, विलयं वच्चंति तत्थेव।	२६४ उ.
सेसा वि हु धणिणो परिहवंति न हु देंति अवयासं।	३०१ उ.
सेसोवाएहिं निवारिया वि हु दुक्कइ पुणो वि जरा।	४१ उ.
सो झूरइ मच्चुजरावाहिमहापावसेन्नपडिरुद्धो।	४७२ पू.
सो नत्थि पएसो तिहुयणम्मि तिलतुसतिभागमेत्तोऽवि।	४०० पू.
सो भवनिव्वेयगओ, पडिवज्जइ परमपयमग्गं।	५२६ उ.
सो भिन्नपोयसंजत्तिओ व्व भमिही भवसमुद्दे।	४९७ उ.
सोऽलंकारसभाए, गंतुं गिण्हइ अलंकारे।	३७१ उ.
सोऊण सीहनायं, पुव्विं पि विमुक्कजीवियासस्स।	२२५ पू.
सोणनहसयललक्खणलक्खियकुम्मुन्नयपएहिं।	२८७ उ.
सोमा ससि व्व सूरा, व सप्पहा कणयमिव रुइरा।	२९३ उ.
सोयंति ते वराया, पच्छा समुवट्ठियम्मि मरणम्मि।	४९६ पू.
सोयपमुहाण ताण य दिट्ठंता पंचिमे जहासंखं।	४४० पू.
सोवंति वज्जकंटयसेज्जाए अगणिपुत्तियाहिं समं।	१६२ पू.
सोहग्गेण य नडिओ, कूडविलासे य कुणसि ताहिं समं।	१३६ पू.
हत्थे पाए ऊरू, बाहु सिरा तह य अंगुवंगाणि।	१११ पू.
हद्धी मज्झ पमाओ, फलिओ एयस्स अपमाओ।	३८५ उ.
हरयम्मि समागच्छइ, करेइ जलमज्जणं तओ विसइ।	३५९ पू.
हरिकडियला पयाहिणसुरसलिलावत्तनाभीया।	२८८ उ.
हरिचंदणबहलथबक्कदिन्नपंचंगुलितलाइं।	३३३ उ.
हरिणत्तणम्मि रे ! सरसु जीव ! जं विसहियं दुक्खं।	२०९ उ.

हरिणाण ताण तह दुक्खियाण को होइ किर सरणं ?।	२०८ उ.
हरिणो व्व हीरइ हरी, कयंतहरिणाहरियसत्तो।	४५ उ.
हरिणो हरिणीऍ कए, न पियइ हरिणी वि हरिणकज्जेण।	२१८ पू.
हरिसुत्तालपणच्चिरमणिवलयविहूसियऽच्छरसयाइं।	३३७ पू.
हा जीव ! अप्पवेरिअ !, सुबहुं पुरओ विसूरिहिसि।	४७७ उ.
हारविराइयवच्छा, अंगयकेऊरकयसोहा।	३७६ उ.
हिंडंति भवमणंतं, च केइ गोसालयसरिच्छा।	३९७ उ.
हिंसाइ इंदियाइं, कसायजोगा य भुवणवेरीणि।	४४४ पू.
हिंसालियपमुहेहिं, य आसवदारेहिं कम्ममासवइ।	४४१ पू.
हिंसालियाइयाणि य, आसवदाराइं कम्मस्स।	४३२ उ.
हिमपरिणएसु सरिसरवरेसु सीयलसमीरसुढियंगा।	२४४ पू.
हियनिस्सेयसकरणं, कल्लाणसुहावहं भवतरंडं।	५२१ पू.
हिययं फुडिऊण मया, बहवे दीसंति जं तिरिया।	२४४ उ.
हेट्ठा खुरुप्पसंठाणसंठिया परमदुग्गंधा।	८५ उ.
हेमंतमयणचंदणदणुसूररिणाइवन्ननामेहिं।	५२५ पू.
होंति खणेण वि असुईणि देहसंबंधपत्ताणि।	४२२ उ.
होंति पमत्तस्स विणासगाणि पंचिंदियाणि पुरिसस्स।	४३९ पू.
होइ कडाहे सत्तंगुलाइं जीहा पलाइं पुण चउरो।	४०७ पू.
होइ घणा तइए उण, माऊए दोहलं जणइ।	२५६ उ.
होइ तवो निज्जरणं, चिरसंचियपावकम्माणं।	४५१ उ.
होइ पलं करिसूणं, पढमे मासम्मि बीयए पेसी।	२५६ पू.

परिशिष्ट ३

उद्धरणस्थलसङ्केतः

उद्धरणगाथा	गाथा	मूल संदर्भ
अंधा बहिरा दुंटा	३४७	हेम.मल.वृत्ति
असुरा नाग सुवन्ना	३२७	बृहत्सङ्ग्रहणी-१९
आणयपाणयकप्पे	३४२	त्रैलोक्यदीपिका-३१०-१५८
इअ पावकारिणो	३४७	हेम.मल.वृत्ति
इक्कुच्चिअ सो नरए	७०	हेम.मल.वृत्ति
एकारसोत्तर हिट्ठमए	३४२	
चत्तारि पत्था आढयं	४१९	
छउमत्थसंजमेणं	३४७	हेम.मल.वृत्ति
जह अग्गीए लवो वि हु	४४०	हेम.मल.वृत्ति
ता इण्हिं पि हु मग्गं	३४७	हेम.मल.वृत्ति
तेरेक्कारस नव सत्त	८३	बृहत्सङ्ग्रहणी-२१९
दो अ सईओ पसई	४१९	
धणधणवइ सोहम्मे	५	हेम.मल.वृत्ति
नरएसु महारंभेण	३४७	हेम.मल.वृत्ति
नाणं पयासगं सोहगो	४५५	विशेषावश्यकभाष्य-११६९
निच्चं हरइ धणाइं	३४७	हेम.मल.वृत्ति
नेरइआ णं भंते!	१६४	भगवतीशतक-७ उद्देश-१० सूत्र १६२
पलं च कर्षचतुष्टयं	२५६	
बत्तीसट्ठावीसा बा र	३४२	बृहत्सङ्ग्रहणी-९२
मह पुत्ता मह लच्छी	१८५	हेम.मल.वृत्ति
मायासीलत्तेण	३४७	हेम.मल.वृत्ति
वंताइं धीरेहिं रज्जाइं	३४७	हेम.मल.वृत्ति
विद्धंसइ नारिजणं	३४७	हेम.मल.वृत्ति
संखो जसमइ भज्जा	५	हेम.मल.वृत्ति

परिशिष्ट ४

कथानिर्देश

कथा नाम	गाथा	कथा नाम	गाथा
बलिनरेन्द्रकथा	२५	जिनदत्तश्राविककथा	३१३
चन्द्रसेननृपकथा	३१	धरणीधरसुनन्दकथा	३२५
जितशत्रुनृपकथा	४२	श्वेताम्बिकाराजकथा	३४७
नन्दकथा	५३	धनञ्जयश्रेष्ठिकथा	३४७
कुविकर्णकथा	५३	जम्बुककथा	३४७
तिलकश्रेष्ठिकथा	५३	तामलिप्तश्रेष्ठिकथा	३४७
सगरचक्रिकथा	५३	भुवनव्यवहारिकथा	३४८
वसुदत्तकथा	५४	कदम्बविप्रकथा	४२५
मधुनृपतिकथा	७०	सुकोसलमुनिकथा	४३०
धनश्रेष्ठिकथा	८१	सुरविप्रकथा	४३९
भीमकथा	१७७	उज्झितकुमारकथा	४३९
कुञ्जरनृपकथा	१७७	वणिग्दुहितृकथा	४३९
अघलकथा	१७७	राजसुतकथा	४४०
धनप्रियवणिक्कथा	१८५	श्रेष्ठीसुतकथा	४४०
प्रियङ्गुवणिक्कथा	१८८	गन्धप्रियकथा	४४०
धनदेवश्रेष्ठिवृषभकथा	१९३	मधुप्रियकथा	४४०
क्षुल्लककथा	१९६	महेन्द्रराजकथा	४४०
समुद्रवणिक्कथा	१९७	ललिताङ्ग-गङ्गदत्तकथा	४४२
मधुविप्रकथा	२०७	धनाकरकथा	४४२
पुष्पचूलकुमारकथा	२१९	वज्रसारकथा	४४२
सूरराजकथा	२२२	श्रीपतिवणिक्कथा	४४२
सुमित्रगृहपतिकथा	२२४	सुनन्दसुन्दरकथा	४४२
वसुदत्तकथा	२४२	विजयनरेन्द्रकथा	४५०
श्रावस्तीवणिक्कथा	२४९	कुरुदत्तकथा	४५६
श्रीतिलकसुतकथा	२७२	धनुर्महर्षिकथा	४६३
बलसारकथा	२८१	स्कन्देत्यपरनामस्वामिकार्तिकेयकथा	४६३
नृपविक्रमकथा	२९६	पुराधिपनन्दनकथा	५००
सोमिलद्विजकथा	३०८	राजदुहिताख्यानकम्	५००

परिशिष्ट ५
विशेषनामकोश

(ग्रंथ)
आवश्यक ४२
धर्मरत्नवृत्ति १९३
वेद १३०, २०५
षडावश्यक ४३९
सूत्रकृदङ्ग १०२
(देव)
अग्गि (अग्नि) ३२७
अम्ब ९८,१००,१०२, १०३,१२०
अम्बर्षि ९८,१०३
असि ११०
असिपत्र ९८
असुर (असुर) ३२७
ईशानेन्द्र ३४७
उपरुद्र ९८, १०७
उवही (उदधि) ३२७
काल ९८, १०८
कुम्भि ९८, ११३
खरखर ११७
खरस्वर ९८
जम्बूदेवता १८५
थणिअ (स्तनित) ३२७
दिसि (दिक्) ३२७
दीव (द्वीप) ३२७
धनदेव १९३
धनु ९८
धरणेन्द्र ३४७
नाग (नाग) ३२७
पत्रधनु १११
पवण (पवन) ३२७
प्रज्ञप्ती १७७
बलीन्द्र ३४७
महाकाल ९८, १०९
महाघोष ९८
महाघोष ११९
रुद्र ९८, १०६
वालुका ९८
विज्जु (विद्युद्) ३२७
वैतरणी ९८, ११५
शबल ९८, १०५
शूलपाणि १९३
श्याम ९८, १०४
सुवन्न (सुवर्ण) ३२७
(देवलोक)
अच्युत ३४७
अवराईअ (अपराजित) ५
आरण ५
बलिचञ्चा ३४७
महाशुक्र ४४२
माहिंद (माहेन्द्र) ५
सर्वार्थसिद्धि ४६३
सोहम्म (सौधर्म) ५
सौधर्म ३४२, ४४२
(धान्यादिमान)
असती ४१९
आढक ४१९
कुलक ४१९
प्रस्थ ४१९
(नदी)
गङ्गा २१९, ३६०
नर्मदा २१९
यमुना ५००
रक्तवती ३६०
रक्ता ३६०
रोहिताशा ३६०
सिन्धु ३६०
सुवर्णकूला ३६०
(व्यक्ति)
नेमि ५
अकलङ्कदेव २५
अग्नि ४६३
अघल १७७
अङ्गारमर्दक १२७
अजितनाथ ५३
अणंगसिरी ५००
अतिमुक्तक ४५६
अन्निकापुत्र २१९
अभिचन्द्र ३४७
अमरकेतु ५००
अरिसिंह ३४७
अर्हद्दासी १९३
अश्वग्रीव ४७
अहमिन्द्र ३४७
इन्द्रकुमार ३४७
उज्झितकुमार ४३९
उदयसुन्दर ४३०
ऋषिस्कन्द ४६३
कदम्ब ४२५
कनकप्रभ ४३९

कमल ४३९
कमलिनी १७७
कम्बल १९३
काम्पिल्य ३४८
कार्तिकमुनि ४६३
कार्तिकेय ४६३
कालकुमार ३४७
काली ३४७
किन्नर २२२
कीर्ति १७७
कीर्तिधर ४३०
कुञ्जर १७७
कुरुदत्त ४५६
कुवलयचन्द्र २५
कुविकर्ण ५३
कुशल ४४०
कृत्तिका ४६३
कृष्ण ४४२
कोकिल २२२
कौशाम्बी ३०८, ४४२
क्रौञ्च ४६३
गङ्गदत्त ४४२
गङ्गा ५३
गङ्गिला १९७
गन्धप्रिय ४४०
गन्धर्व २२२
गुणसागर ३४७
गोशालक ३९७
गौतम ४५६
गौरी २९६
चन्दन ४३९
चन्द्रलेखा ४५०
चन्द्रवदना ४४०
चन्द्रशेखर २८१
चन्द्रसेन ३१
चित्रमति १७७
चिलातीपुत्र ४५०
छगलिक १७७
जम्बुक ३४७
जम्बूदत्त १८५
जसमइ (यशोमती) ५
जितशत्रु ४२, ५३, ३४७
जिनदत्त ३१३
जिनदास १९३
जिह्वकुमार ५३
ज्वलनप्रभ ५३
तामलि ३४७
तिलक ५३
दत्त १७७
दुग्गअ ५००
देवदत्त १८८
देवप्रिय १९६
धण (धन) ५
धणवइ (धनवती) ५
धन ८१,१७७,४४२,४६३
धनञ्जय ३४७
धनञ्जय-देव २९६
धनदत्त ३४७
धनप्रिय १८५
धनवती १८५
धनसार ८१
धनाकर ४४२
धनु ४६३
धरण ३४७
धरणीधर ३२५
धरणेन्द्र ४४०
नन्द ५३, १७७
नन्दन ३४७

वरुण २४२, २४९
वसुदत्तः ५४
वसुदत्त २४२
वसुमती २४२
वालुकाप्रभा ८३
विक्कम ५००
विक्रम २९६
विजय ३४७, ४३०, ४५०, ४५६
विजया १७७
विमल८१, १७७, ३१३, ४४०
विश्वम्भरी ४४०
वीर ४५६, ४६३
वीरश्री ४६३
शम्बल १९३
शिव ४४२
शूर २२२
श्रीतनय ३४७
श्रीतिलक २७२
श्रीदत्त २७२
श्रीदाम १७७
श्रेणिक ४६३
श्वेताम्बिका ३४७
संख (शङ्ख) ५
सगर ५३
समुद्र १९७
सरस्वती १८८
सहदेवी ४३०
सागरदत्त ३४७
सागरमित्र ३४७
सिंह १७७, ३२५
सिन्धुर ३२५
सिरिदत्त २७२
सिरीयक १७७
सुंदर ५००
सुकोसल ४३०
सुकोसला ४३०
सुघोष ५३
सुदंसण ५००
सुदर्शना २५
सुनन्द ३२५, ४४२
सुन्दर १७७, ४४२
सुमङ्गला ५४
सुमति १७७, ५००
सुमित्र ५३, २३४
सुयशा ३४७, ४३९
सुरसुन्दर १८८
सुलस ४४२, ५००
सुलोचन ३१
सुवर्णकेतु २८१
सूर ३१, ४३९
सोम २४९
सोमचन्द्र ४२
सोमशर्मा ४२५
सोमिल ३०८
सोहग्गसुंदरी ५००
स्कन्द ४६३
हरितिलक २९६

(स्थल)

अचलपुर ५३
अयलपुर ५००
अयोध्या ५३, २२२, ४३०
अवन्तिवर्धनपुर ४४२
अश्वपुर ५००
अष्टापद ५३
उज्जयिनी ४४२, ४५०
उत्तरकुरु २५२
ऋषभपुर २२२, २५२, ३६०
ऐरावत ३६०
कक्किन्ध ४६३
काकन्दी ४६३, ४२५
काञ्चनपुर २४२
काम्पिल्यपुर १७७
कार्तिकपुर ४६३
कुणाला ३४७
कुरुदेश ५४, ७०
कुल्लागप्रदेश २७२
कुशस्थल ३४८
कुशस्थलपुर ३४७
कुशार्तदेश १८५
कुसुमपुर ४३९
कौशाम्बी ३१
क्षुल्लकहिमवत् ३६०
गजपुर ३१, ५४
गन्धिलावतीविजय २५
गिरिपुर ४४२
गौड ५३
चन्द्रपुरी २५
छगलपुर १७७
तमःप्रभा ८३
ताम्रलिप्ती १९७
देवकुरु २५२
देशपुर ८१
धनालग्राम १७७
धरणितिलय ५००
धान्यसञ्चयपुर ४४२
धूमप्रभा ८३, ८६, ८७
नन्दन ३६०
नन्दिपुर ४३९
नागपुर ४३०, ४५६

पद्मखण्डपुर ४४०
पद्मसरग्राम २३४
पश्चिमविदेह २५
पाटलीपुर ५३, २९६
पाण्डुकवन ३६०
पुष्पभद्रपुर २१९
पोतनपुर १८८
पोलासपुर ४५६
प्रभास ३६०
प्रविशालानगरी ३४७
ब्रह्मलोक ४४२
ब्रह्मस्थलपुर ४४०
भद्दिलपुर ४४२
भद्रशालवन ३६०
भरत २९४, ३६०
मगध ५३, १७७, २७२, ४३९
मथुरा १९३, ३४७
मागध ३६०
मुग्रिल्ल(?)गिरि ४३०
मुद्गशैलनगर ३४७
रत्नपुर ४४२
रत्नप्रभा ८३
रत्नप्रभा ८३
रत्नवतीपुरी ५००
रत्नस्थल २९६
रम्यक २५२
राजगृह २०७
राजपुर ३१
रोहितकपुर ३४७, ४६३
रोहितपुर ४६३
ललितपुर २८१
वक्षस्कारगिरि ३६०
वरदाम ३६०
वसन्तपुर १९६, ४३९, ४४२
वाणारसी ७०
वाराणसी ४३९
विजयपुर २५, ४४०
विजयवर्धनपुर ४४२, ४५०
विदेह ४४२, ४६३
विशालापुरी ३४७
विश्वपुर ४४०
वीरपुर ३२५
वृत्तवैताढ्य ३६०
वैताढ्य २८१
शर्कराप्रभा ८३
शिखरि ३६०
शौर्यपुर १८५
श्रावस्ती २४९, ३१३
श्रीपुरनगर ३२५
सहस्रार ४३०
साकेतपुर २७२
सालिग्गाम ५००
सिंहपुर १७७
सिद्धार्थपुर ४४०
सोमनस ३६०
स्कन्दगिरि ४६३
हरिवर्ष २५२
हैमवत २५२, ३६०

परिशिष्ट ६

देशीशब्दसूचिः

भवभावनाप्रकरणगतदेशीशब्दसूचिः

शब्द	अर्थ	गाथा	शब्द	अर्थ	गाथा
ओलावय	श्येन	२३६	धिउल्लिया	पुत्तलिका	१३६
कुंटलविंटल	मन्त्रतन्त्र	५०	भुरंडिय	लिप्त	२७७
खद्ध	खादित	२०२	मीरा	दीर्घचुल्ली	१०९
खद्ध	खादित	२३७	लिच्छ	तत्पर	५१
घाणक	घाणक	९४	विज्झडिय	व्याप्त	२४५
थरहर (धातु)	कम्प	३११			

भवभावनाप्रकरणअवचूरिगतदेश्यादिशब्दसूचिः

असती (=मगधदेशे प्रसिद्धो मानविशेषः)	४१९	ढोलित	३०८
आढक (=मगधदेशे प्रसिद्धो मानविशेषः)	४१९	तलघट्टयति	१८८
उत्करडिका	४३९	तलार	१४2
उत्तारक	१८८,४४०	तल्लाविल्लिं	२८१५००
उल्लूरिक	१०९	दवरिकां	२१४
काकणी (=कपर्दिका)	११०	दिधउ	१७७
कार्पटिक	२९	दोरं	५००
कालिज्जय (=वक्षान्तर्गूढमांसविशेष)	४०८	पुट्टल	५००
कुतप	२००	पुत्तलका	१३६
गड्डरक	२०६	पुत्तलिका	१३६,१५८,४४०
गर्गरिका	२२२	प्रस्थ	४१९
चक्खुलण्डी	४४२	बब्बरकूले	४४०
चियरक	४०९	मीरा (=वज्राग्निभृद्दीर्घचुल्ली)	१०९
चिहुट्ट (=विस्तीर्ण)	२२७	विटङ्कक	३१३
चुल्लक	४७०	शङ्खाणिका	४०९
चुल्ली	१०९	श्यालक (=साला, पत्नी का भाई)	४३०
छगल	२०६	सूरण	१८३
टिक्किरीटङ्क	३१३	सेवाल	१८३
डुम्ब	४४०		

---

१. एषा सूचिः पू.आ.श्री.वि.मुक्ति-मुनिचन्द्रसू. सम्पादितप्रत्यानुसारेण निर्मिता।

मुखपृष्ठ परिचय

प्रकृति के प्रसिद्ध पांच मूल तत्त्व है । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश । भारत का प्रत्येक दर्शन या धर्म इन पांच में से किसी एक तत्त्व को केंद्र में रखकर विकसित हुआ है । जैन धर्म का केंद्रवर्ती तत्त्व अग्नि है । अग्नि तत्त्व ऊर्ध्वगामी, विशोधक, लघु और प्रकाशक है ।

श्रुतज्ञान अग्नि की तरह अज्ञान का विशोधक है और प्रकाशक है । अग्नि के इन दो गुणधर्मों को केंद्र में रखकर मुखपृष्ठ का पृष्ठभूमि (Theme) तैयार किया गया है ।

कृष्ण वर्ण अज्ञान और अशुद्धिका प्रतीक है । अग्नि का तेज अशुद्धियों को भस्म करते हुए शुद्ध ज्ञान की ओर अग्रसर करता है । विशुद्धि की यह प्रक्रिया श्रुतभवन की केंद्रवर्ती संकल्पना (Core Value) है ।

अग्नि प्राण है। अग्नि जीवन का प्रतीक है । जीवन की उत्पत्ति और निर्वाह अग्नि के कारण होता है । श्रुत के तेज से ही ज्ञानरूप कमल सदा विकसित रहता है और विश्व को सौंदर्य, शांति एवं सुगंध देता है । चित्र में सफेद वर्ण का कमल इसका प्रतीक है ।

श्रुतभवन में अप्रगट, अशुद्ध और अस्पष्ट शास्त्रों का शुद्धिकरण होता है । शुद्धिकरण के फलस्वरूप श्रुत तेज के आलोक में ज्ञानरूपी कमल का उदय होता है ।